अग्निपथ

●

लेखिका .

कमला जैन 'जीजी' एम० ए०

●

प्रकाशक :

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन

पीपलिया बाजार, ब्यावर

(राजस्थान)।

●

पृष्ठ तीन सौ बारह [३१२]

मूल्य . तीन रुपया [३]

●

प्रथम-प्रवेश :

८ अप्रैल, १९७१

महावीर जयन्ती

●

मुद्रण व्यवस्था :

श्रीचन्द सुराना

द्वारा रामनारायन मेडतवाल

श्री विष्णु प्रिंटिंग प्रेस,

राजाकीमण्डी, आगरा–२

समर्पण

जिनका भव्य व्यक्तित्व
मेरे उपन्यास का अन्तस्तल है,
उन
श्रुत-शील-सेवा की मूर्ति
स्नेह एवं अभय की देवी
साध्वी श्री उमरावकुंवर जी, अर्चना'
को

— कमला जैन 'जीजी'

दो शब्द……

जड तथा चैतन्य मे यदि कोई अन्तर है तो यही कि चैतन्य सदैव विकास-शील रहता है। अपने निरन्तर विकास की इस प्रक्रिया मे उसे प्रतिक्षण सघर्ष करना पडता है—अपने बाह्य वातावरण से भी और स्वय अपने आप से भी।

जीवन जड नही होता। वह चैतन्य है। इसलिये जीवन का दूसरा नाम सघर्ष है। विवेकशील प्राणी इस रहस्य को जानते है और इसीलिये वे जीवन के समर मे प्रत्येक परिस्थिति से जूझने के लिये सदैव कटिबद्ध रहते है। इसके विपरीत जो अज्ञानी जीवन को समरभूमि के स्थान पर सुमन-शैय्या मान लेते है, वे परास्त हो जाते है, जडता उनके जीवन को ग्रस लेती है।

भारतवर्ष महान देश है। महान आत्माओ की क्रीडाभूमि है। यहाँ प्राचीन काल से ऋषियो ने ऋचाओ का सृजन किया है, दार्शनिको ने जीवन-जगत के रहस्यो का उद्घाटन किया है, ज्ञानियो ने सत्य के सूर्य का साक्षात्कार किया है और तपस्वियो ने तप की अग्नि से कर्मो की निर्जरा की है। और यह क्रम कभी टूटा नही। अनन्तकाल से आज तक भारतवर्ष मे ऐसी कालजयी महानात्माओ का जन्म होता रहा है और हो रहा है।

साधु और असाधु—दो शब्द हैं। विचार करने की बात है कि यदि किसी देश मे समस्त आत्माएँ असाधु हो तो उस देश का क्या हो? उस ससार का

क्या हो ? धर्म धारण करता है। और उस धर्म को जो धारण करता है, वही साधु है, वही तपस्वी है, वही ऋषि है, वही महान है।

'अग्निपथ' एक कथा है—अगारो के पथ पर हँसती-मुस्कराती, विदेह बनकर चली चलने वाली एक ऐसी ही महान् आत्मा की, एक ऐसी ही तपस्विनी, विदुषी, परम साध्वी की। मुझे उनकी छाया मे, उनके चरणो के पीछे-पीछे एक-एक कदम रखते हुए आगे बढते जाने का सौभाग्य मिला है। वह सौभाग्य मुझे आज भी उपलब्ध है और उससे मुझे अपने जीवन की धन्यता की, जो अनिर्वचनीय अनुभूति होती है वह शब्दो मे कैसे प्रकट हो सकती है ?

और यह मार्ग तो सभी के लिये खुला है। ज्ञान और सत्य का यह सूर्य तो सभी को अपना प्रकाश मुक्त होकर प्रदान कर रहा है। प्रिय पाठक ! किसी दिन यदि गम्भीरता से विचार करेगे तो आपके सामने एक ऐसा अद्भुत मार्ग खुलता हुआ दीख पडेगा, जो आपको अपने जीवन की अनन्त ऊँचाइयो तक ले जा सकेगा।

मैंने कहा, कि जीवन एक सग्राम है। देश, काल, परिस्थिति से तथा अपने ही भीतर स्थित अनेक राग-द्वेषो, कषायो और दुर्भावनाओ से।

'अग्निपथ' जिस महान साध्वी के जीवन-सग्राम की कथा का एक अश है, उन्हे मैं प्रणाम करती हूँ।

मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन की मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ जिसने मुझे अपनी कृति को लिखने मे प्रेरणा दी तथा इसके प्रकाशन का भार भी अपने ऊपर लिया। आशा है, सहृदय पाठक भी मेरे उपन्यास मे रही हुई भूलो को क्षमा करते हुए अति-उदारतापूर्वक इसे ग्रहण करेगे।

—कमला जैन 'जीजी'

प्रकाशकीय

चरितोपन्यास 'अग्निपथ' अपने पाठको के कर कमलो मे पहुँचाते हुए हमे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है। बडे-बडे नीति ग्रन्थ जन मानस को जो चीज नही दे सकते वह एक लघुकथा प्रदान कर देती है। संस्था के सदस्य महानुभावो की यह इच्छा थी कि स्मृति प्रकाशन से कुछ ऐसा साहित्य भी प्रकाशित हो, जो जीवन निर्माण के साथ-साथ मनोरजन भी करता हो। सस्था का उद्देश्य जनकल्याणकारी साहित्य का प्रकाशन करना है, जो लोकोपयोगी भी हो। 'अग्निपथ' इन उद्देश्यो की पूर्ति करेगा। जहाँ यह मनोरजन की सामग्री प्रस्तुत करेगा, वहाँ यह जीवन को उन्नत बनाने का मार्ग भी प्रस्तुत करेगा।

'अग्निनथ' एक जैन साध्वी के जीवन चरित को लेकर लिखा गया उपन्यास है। इसमे आपको दृढ आत्मबल के दर्शन होगे, साथ ही सुन्दर पारिवारिक चित्र भी देखने को मिलेगे।

आज का युग अल्पश्रम से अधिक सुख प्राप्त करने का युग है। हर व्यक्ति इसी प्रयास मे लगा है। किन्तु भौतिक सुख से सतोष नही मिलता। आत्मिक सुख मिलने पर ही सतोष होता है। आत्मिक सुख के लिये उत्तम ग्रन्थो का पठन आवश्यक है। कथानक युक्त ग्रन्थ बरबस मन को आकर्षित

कर लेते है । 'अग्निपथ' भी पाठको का मन अपनी ओर खीचेगा तथा जीवन को प्रशस्त बनाने का मार्ग प्रस्तुत करेगा ।

इस पुस्तक के द्वारा स्मृति प्रकाशन कथासाहित्य के प्रकाशन के क्षेत्र मे पदार्पण कर रहा है ।

इसी भावना एवं कामना के साथ कि इसके पठन से आत्मोत्कर्ष हो, यह पुस्तक प्रेमी पाठको के समक्ष प्रस्तुत है ।

निवेदक

पीपलिया बाजार
ब्यावर

सुगनचन्द कोठारी
मत्री
मुनि श्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन
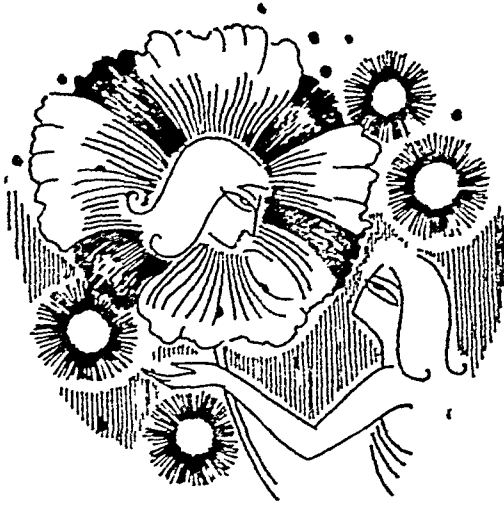
भूमिका

सडक ने एक दिन मील के पत्थर कहा—"तुम लोग मेरी अगल-वगल मे एक सिरे से दूसरे सिरे तक चौ।ारो की तरह क्यो खडे हो ? मेरी रक्षा के लिए, या मुझे अपने दायरे मे ही रखने के लिए ?"

मील का पत्थर सडक की भोल।ान पर हसा—"हम न तो तुम्हारी रक्षा के लिए हे, न वन्दी वनाने के लिए हम तो एक पैमाना मात्र है, आने-जाने वाले यात्रियो को मजिल का ज्ञान राते रहे, ताकि वे हार-थक कर वैठ न रहे ।"

'अग्निपथ' के पन्ने उलटते समय मुझे ऐसा ही कुछ अनुभव होने लगा । जीवन की लम्वी राह पर इस से कुछ पैमाने खडे किये गये है, मील के पत्थर लगाये गये है, जिन से यात्री को मजिल का ज्ञान भी होता रहे, उसकी गति का अनुमान भी होता । जीवन के हर मोड पर रुकने, विश्राम करने और आगे की यात्रा पर वढने के लिए नया साहस एव स्फूर्ति सजोने के लिए इसमे एक ऐसी सामग्री सकलित हुई है जो वर्तमान जीवन-दर्शन को नया वोध देने मे सक्षम है । मै उन्हे जीवन के सही पैमाने, अग्निपथ के प्रदीप कह सकता हूँ

कभी कहानिया, नाटक और उप शिक्षा के लिए, उपदेश देने के लिए या मनोरजन के लिए लिखी जाते, पर आज उनकी दिशा वदल गई है, उनका स्वर वदल गया है । आज कहानी, उपन्यास और कविता मे जीवन की समस्याओ का रेखाचित्र कर आता है । लेखक अपनी सूक्ष्म-दृष्टि से समाज की ज्वलन्त समस्या को परखता है, उन्हे उभार कर रखता है । वह शव्दहीन समस्याओ को र देता है, अरूप कथाओ को रूप-रङ्ग देकर सजाता है । पाठक अपने मूक मनोभावनाओ को मुखर होती देखता है और वह उस पर मुग्ध हो मैं मानता हूँ, अनुभव

करता हूँ, उपन्यास और कहानी को पढ़ते हुए अपनी अन्तर समस्याओ मे खो जाने वाला पाठक, पुस्तक खत्म करने के बाद एक अपूर्णता, एक अतृप्ति का अनुभव करता रह जाता है । प्रश्नो की एक लम्बी उधेडबुन उसके हृदय को मथने लगती है, समस्याएँ उसे अपने मे उलझा लेती है, वह उत्तर खोजता है, समाधान टटोलता है, तब तक कहानी खत्म हो जाती है । आँखे निराश होकर पुस्तक पर से उठकर कही शून्य मे कुछ टटोलती रह जाती है ।

वर्तमान कहानी, उपन्यास, नाटक और चित्रपट की सबसे बडी दयनीय स्थिति यही है कि वह समस्याओ को उलझाते हुए स्वय समस्या बन जाता है । वह समस्याओ को कुरेद-कुरेद कर उघाडता है, पर उन पर समाधान का परिवेश डालने मे स्वय को असमर्थ पाता है ।

'अग्निपथ' इस दिशा मे एक नया और स्वस्थ प्रयोग लगता है । जीवन की मूल समस्याएँ इसमे भी उभरी है पर उनके साथ समाधान भी आया है । हर समस्या अपने साथ समाधान लेकर आई है, हर प्रेरणा अपने साथ दृष्टि लेकर आई है । इसका सत्य-कथ्य सहज है, पर निरा सहज ही नही, उद्‌बोधक भी है । इस उपन्यास की सबसे बडी विशेषता मुझे यही लगी ।

'अग्निपथ' की शैली औपन्यासिक है, पर इसकी कथा वस्तु औपन्यासिक मात्र नही, वह एक जीया गया जीवन है, सत्य घटना है, एक तेजस्वी नारी के जीवन मे बीता हुआ सत्य है, लिए इसका महत्व उपन्यास से कुछ अधिक है, जीवन चरित्र से भी कुछ आगे चला गया है ।

एक जैन साध्वी की जीवन घटनाओ को लेकर उसे इतने सरस, स्वाभाविक और उन्मुक्त हृदय से प्रस्तुत करना—वास्तव मे एक नया प्रयोग है । सम्भवत लेखिका का यह प्रथम प्रयोग होगा, पर प्रथम जैसा लगता नही है । इसकी शैली, सहजता और समस्या को गहराई से स्पर्श कर उसे समाधान की ओर ले जाना वास्तव शैली और चिन्तन की प्रौढता के सूचक है । साध्वी चरित्र बहन कमलाजी' स्वय इस लेखन से आत्मतोष अनुभव करती है या नही, मै नही कह सकता, पर इसे पढते समय मुझे अत्यन्त आत्म-तोष मिला, और मै समझता हूँ पाठक भी ऐसा ही अनुभव करेगे ।

३०-३-७१ — श्रीचन्द सुराना 'सरस'
आगरा — सपादक—श्री अमर भारती

अनुक्रमणिका

● कमला जैन 'जीजी' एम० ए०

अ ग्नि प थ

१

हाथ क्यों बाँधे ?

मानव-जीवन एक महायात्रा है। किन्तु इस यात्रा का आदि और अन्त क्या है ? कोई भी तो जान नही सका इस सनातन रहस्य को। फिर भी मनुष्य को कही रुकना नही है, विराम नही लेना है और केवल चलते ही चले जाना है—आगे और आगे।

और कितना विचित्र है यह ससार ? कैसा अद्भुत, कैसी वहुरगी है यह लीला ? कल तक जहाँ सब कुछ था वहाँ आज कुछ भी नही, खुशियो से लवालव भरा हुआ सुख का सागर जहाँ लहराता था वहाँ आज हाहाकार करता हुआ मरुस्थल फैला है। कैसी आग, कैसी घुटन, कितनी पीडा होगी इस सूखी और जलती हुई रेत के विस्तार मे ? कौन इसे जाने ? कौन इसका हिसाव करे ?

फूल कितने सुन्दर होते है ? उनमे कैसी मधुर गध होती है ? उनकी पाखुरियाँ कितनी कोमल होती है ? जी चाहता है फूलो को गले से लगा लिया जाय।

किन्तु अगार ? दहकते हुए अगारो को छूने का मन किसका होता है ? किसमे वह शक्ति है कि जलते अगारो को अपने ओठो से लगाले ?

काल वली है। कर्म प्रवल है। खिले हुए फूलो पर जलता हुआ अगार गिरता है, तव सुख के स्वप्न जलकर राख हो जाते है। तव परीक्षा का

प्रारम्भ होता है—कडी परीक्षा, कठिन परीक्षा, महान मानव-जीवन की महायात्रा की एकमात्र पहली और अन्तिम परीक्षा।

विरले ही होते है जो इस परीक्षा का साहस के साथ सामना करते है। किन्तु जो पुरुषार्थी साहस के साथ इस परीक्षा को चुनौती दे वैठते है, वे विजयी होते है। ऐसे पुरुष-पु गवो से महाकाल भी थर्रा उठता है और उन्हे मार्ग देकर एक ओर हट जाता है। तव काल पर मनुष्य का विजय-घोष होता है और वे कालजयी आत्माएँ समस्त सृष्टि के लिये शाश्वत आलोक-स्तम्भ बन जाती है।

विचित्र है ससार! कल तक सभी कुछ होता है और आज कुछ भी नही रहता, शेष रहती है एक मुट्ठी भर राख। किन्तु कुछ लोग होते है, जो फूलो को गले लगाते हुए अगारो के पथ पर चलने के अभ्यासी होते है। ऐसे लोग उस राख की ढेरी मे से एक महान जीवन का निर्माण करते है। और विस्मित, विमुग्ध ससार उस पुनर्निर्माण की कथा कह उठता है—

"अरे ओ'' ·········!"

"कौन है ऊपर ?"

"वोलता क्यो नही ? ऊपर झरोखे मे कौन है ?

"क्यो क्या वात है ? हम है यहाँ, ऊपर कोई काम है ?" जवाव आया और एक अति सुन्दर, ग्यारह वर्ष की कन्या ने झरोखे की खिडकी मे से झाका।

"हम है" 'युवक ने मुँह विगाडते हुए कहा, "जरा इधर तो आओ नीचे।"

"अच्छा।" कहती हुई वालिका वडी शान से नीचे आकर कराहते हुए युवक के सामने निस्सकोच खडी हो गई। उसकी प्रत्येक गति से चपलता फूटी पडती थी।

युवक ने देखा यह तो वडी अल्हड-सी वालिका है जिसके हाथ थोडी देर पहले ही उसने हँसी-हँसी मे एक रस्सी के टुकडे से वाँध दिये थे। क्योकि वह रग से भरे हुए टव मे चूना उठा-उठा कर डाल रही थी। वह कन्या उसकी भाभी की वहन थी और भाभी के साथ ही आई थी। उसने वनावटी गुस्से से कहा—

"तुमने ऊपर से यह पत्थर क्यो फेका ?"

"मेरी मर्जी·······!"

"वाह री मर्जी तुम्हारी, मेरे घुटने मे लग गई न ! बताओ पत्थर क्यो फेका ?"

"तुमने मेरे हाथ क्यो बाधे ? मुझे क्यो छुआ ?"

युवक ने चकित होते हुए हैरानी से कहा—

"क्या हो गया छू दिया तो ? मै कोई हरिजन हूँ क्या ?"

हरिजन नही हो तो क्या हुआ, मेरी मा ने कहा है कि—किसी भी पुरुष को छूना नही चाहिये । अगर कोई लडकी किसी को छू ले तो ।"

"तो क्या ?" बालिका के मुँह की बात छीनते हुए युवक ने पूछा और बडी उत्सुकता से उस बालिका के चेहरे पर अपने नेत्र जमा दिये ।

"तो वह उसका पति हो जाता है । अब तुम्ही बताओ मैं किसी और से शादी कैसे कर सकती हूँ ?"

युवक उस ग्यारह वर्ष की लावण्यवती कन्या उमा की ओर बोखलाया-सा देखता रहा । बडी कठिनाई से उसके मुँह से शब्द निकले—

"तुम किसी और से शादी नही कर सकती ?"

"कैसे कर सकती हूँ, तुमने मुझे छू जो दिया । बार-बार क्यो उसी बात को पूछते हो, समझ मे नही आता क्या ?" बालिका ने गम्भीरता का नाटक करते हुए कहा किन्तु उसकी अल्हडता वैसी ही थी ।

युवक तो उस नन्ही-सी जान की यह गभीर बात सुनकर अभिभूत-सा खडा था । अपने-घुटने मे हो रहे दर्द को भी वह भूल गया । कुछ सोचकर उसने निश्चयपूर्ण स्वर मे कहा—

"अच्छा मुझसे तो हो सकती है न तुम्हारी शादी ?"

"हाँ, तुमसे तो हो सकती है ।" बालिका ने बडी समझदारी से बाँये-दाँये दोनो तरफ एक-एक बार सिर को घुमाते हुए कहा ।

"ठीक, तो मैं फिर तुमसे ही शादी कर लूँगा ।"

"मुझसे कर लोगे ? शादी ? और उस काली लडकी का क्या होगा जिससे तुम्हारी सगाई हुए दो साल हो चुके है ? हमारे गाव की ही तो लडकी है वह, क्यो जी ! पैसा देखकर ही सगाई कर ली क्या ? पैसा तो तुम भी कमा कर ला सकते थे ।"

युवक पागल-सा हुआ जा रहा था । सोच रहा था कि क्या इसके

मस्तिष्क मे पूर्व जन्म का कोई ज्ञान शेष है कि जिसके कारण इतनी-सी वच्ची इस तरह की वाते कह रही है ।

उसने धीरे से कहा "वह सम्वन्ध मैं तोड दूँगा ।"

"वाह ! क्या कहोगे ? यह कि तुम काली हो इसलिये मैं तुमसे शादी नही कर सकता ।" और यह कहते-कहते उमा खिला-खिलाकर हँस पडी ।

"मै उससे नही, अपने माता-पिता से कहूँगा कि वह लडकी मुझे पसद नही है ।"

"हाँ, यह ठीक है । तो अब मैं जाऊँ ? जीजी ढूँढ रही होगी मुझे । वडी देर हो गई ।" और वह चलने लगी ।

पर युवक ने उसका रास्ता रोकते हुए व्यग्रता मे पूछा—

'तुमने मुझे तो वचनवद्ध कर लिया पर अपनी वात भी तो कहो ।"

"मै ? मैं क्या कहूँ, मैंने तो तुम्हे अपना पति मान लिया न !"

"तुमने तो मान लिया, पर तुम्हारे माता-पिता नही मानेगे तव ?"

"उन्हे मानना पडेगा । मै कह दूँगी कि मैं जीजी के देवर जी से शादी करूँगी और किसी से नही ।"

युवक को मानो अव भी विश्वास नही हो रहा था । उसने हिम्मत करके हौले से उसका हाथ अपने हाथ मे लेने का प्रयत्न किया और कहा—

"उमा ! तुम अपनी वात पर दृढ रह सकोगी ? तुम्हारा वादा पक्का है ?"

"हाजी हाँ, पक्का ! विलकुल पक्का ! क्या तुम्हे विश्वास नही होता ?"

"होता है .... ।"

"तो वस, अव मुझे जाने दो ।" और उमा धीरे से अपना हाथ छुडाकर घर मे चली गई । इस वार युवक के छू देने पर उसने विरोध नही किया था ।

भावुक युवक वडी देर तक वहाँ खडा-खडा कुछ सोचता रहा और फिर वहा से चल दिया ।

२

माँ के बिना

उमा सिर्फ सात दिन की ही थी जब उसकी माता का देहान्त हो गया था। अपनी मासूम आँखो से वह माँ को पूरा देख भी नही पाई थी। पिता जगतनारायण अपनी सती साध्वी पत्नी को खोकर और सिर्फ सात दिन की दुधमुँही बच्ची की चिन्ता के कारण अर्धविक्षिप्त-से हो गए थे। किन्तु इस बडी भारी चिन्ता को उनकी भाभी ने दूर किया और उस बच्ची को माँ की तरह हृदय से लगाकर उसका पालन-पोषण करना शुरु किया। रुपये पैसे की कमी नही थी। जगतनारायण जी के यहाँ लाखो की जमीन जायदाद थी, बडा भारी कारोबार था। उस इलाके के राजा के वे दाहिने हाथ थे। बिना बन्दूक लिये और वर्दीधारी अर्दली के वे घर से बाहर नही निकलते थे। बडे ही तेज मिजाज के व्यक्ति थे। कहा जाता है कि एकबार अकाल के समय प्रजा की सहायता न करने के कारण वे राजा साहब को सिंहासन से पटक कर उनकी छाती पर चढ बैठे थे और तभी हटे थे जब उनसे सहायता का वचन ले लिया था। उसी समय उन्होने अपने पास का भी सब नकद रुपया और सोना प्रजाजनो मे बाँट दिया। परिणामस्वरूप घर मे बहुत लडाई-झगडा हुआ। भाई-भाभी के बुरा-भला कहने पर पत्नी को लेकर घर से बिना कुछ भी लिए निकल गये और ग्यारह वर्ष तक लौटकर नही आए।

इस प्रकार सात दिन में उमा ने मा को खोया और पिता से भी सदा दूर रही। किन्तु विधाता की लीला विचित्र होती है। इतना उतार-चढ़ाव सिर पर से गुजर जाने पर भी उसके प्रति बड़ी मा के लाड-प्यार में कोई कमी नहीं आई। एक धाय और दूसरी गाय इन दो माताओं का उसके लिये इन्तजाम करके वह असीम स्नेहपूर्वक उमा का पालन करती रही। उमा की एक बड़ी बहिन सदा ननिहाल में रहती थी। वह वहीं बड़ी हुई थी और उसका विवाह भी वहीं से हुआ था। उमा अत्यन्त बुद्धिमान और खुश मिजाज थी। मजाक करने में तो वह गाँव की सब कन्याओं को मात करती थी। छोटा गाँव था अतः सबके यहाँ उसका खूब आना-जाना था। रजवाड़े में भी वह प्रायः जाया करती थी। राजमाता उसे बहुत प्यार करती थी। उसके प्रफुल्ल व्यक्तित्व तथा सुन्दर स्वास्थ्य को देखकर कोई भी यह नहीं कह सकता था कि वह बिना माँ की लड़की होगी।

शैशव के दस वर्ष समाप्त होने और ग्यारहवें वर्ष में प्रवेश करने पर वह अपने सुन्दर स्वास्थ्य के कारण तेरह-चौदह वर्ष की दिखाई देती थी। पुराने विचारों के होने के कारण उसकी बड़ी माँ व पिताजी ने उसके लिये योग्य वर की तलाश आरम्भ कर दी थी। उसकी अपनी माँ तो थी नहीं, बड़ी मा के लिये, कितना भी हो आखिर वह एक पराई धरोहर ही थी, इसलिये योग्य वर ढूँढ-ढाँढ कर हाथ पीले करके वे निश्चिन्त हो जाना चाहते थे।

३
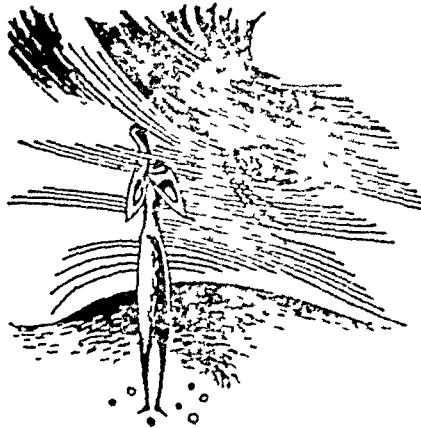
बात की धनी

रामनारायण जी भोजन करने बैठ रहे थे। हाथ धोते हुए वे अपनी पत्नी से बोले—

"उमा कहाँ है? दिखाई नही दे रही है।"

"क्यो, खाना नही खाया जाएगा क्या उसके बिना?"

"वाह! खाना क्यो नही खाया जायगा, खूब खाया जाएगा, मैंने तो यो ही पूछ लिया—दिखाई नही दी इसलिये।"

"मैं जानती हूँ आपका यो ही पूछना! लाडली बेटी के बिना गले से कौर नीचे नही उतरता।" गुणवती ने कहा।

"लाड तुम करती हो ज्यादा या मैं?"

"मै? मैं कहाँ करती हूँ उसे लाड? कल ही तो मैंने उसे कितना डाँटा था।"

"हाँ डाँटा था, पर इसलिये कि वह भरपेट खाना नही खा रही थी।" और कहते कहते ही वे तथा गुणवती दोनो ही हँस पडे।

"अच्छा मजाक छोडो, और बताओ कि वे जन्म पत्रियाँ जो मगाई थी उनका क्या हुआ?" गुणवती ने बडी उत्सुकता से पूछा।

"जन्म पत्रियाँ मिलवाई थी। तीन जगह मिलती है। एक तो इन्दौर मे। वहाँ करदे क्या ?"

"नही, वह लडका साँवला और दुबला-सा है।"

"अच्छा रतलाम मे ? वह लडका तो सुन्दर है और स्वस्थ भी।"

"वहाँ भी इच्छा नही होती।"

"क्यो ?"

"उसकी माँ सौतेली है, सगी नही।"

"तो तुम क्या उमा की सगी माँ हो ? तुम अपनी बेटी को इतना प्यार करती हो तो उसकी माँ अपने बेटे को नही कर सकती ?" रामनारायण जी ने जरा परिहास करते हुए कहा। पर गुणवती गभीर हो आई थी, बोली—

"मेरी बात छोडो, मेरे क्या और कोई सतान है ? एक ही तो यह लडकी मिली है। इसे भी प्यार नही करूँगी ?"

"एक या अनेक सतान होने से फर्क नही पडता उमा की माँ ! प्यार तो किसी को अपना समझने से होता है। मै तुम्हारा बहुत कृतज्ञ हूँ।"

"तो तुम क्या उसके सगे बाप हो जो कृतज्ञता प्रदर्शित कर रहे हो ?" अबकी बार गुणवती ने भी हँसते हुए कहा और दोनो फिर एक बार खिल-खिला पडे। पर हँसते-हँसते ही एकदम गुणवती उदास हो गई। उसने पूछा—

"लाला जी का पता मिला, आजकल कहाँ है ?"

"हाँ पता तो है ही। इन्दौर मे है और किसी खान मे चौकीदारी करता है। मैंने पता लगाकर घर आने के विषय मे कहलाया तो दो टूक जवाब भेज दिया कि यदि मुझे लेने आए तो यहाँ से भी चला जाऊँगा। वैसे कभी आ जाऊँगा, जब मेरी इच्छा होगी। क्या बताऊँ, उस दिन मुझे न जाने क्या हो गया था जब मै बबुआ से लड पडा, सोना आदि दे देने के कारण।" रामनारायण बहुत ही उदास हो गए।

"तो तुम मुझे भेज दो।" गुणवती ने आजीजी करते हुए कहा, "मै मना कर ले आऊँगी उन्हे। कम से कम बिटिया की शादी मे तो आ जाएँ।"

"तुम कहाँ जाओगी, मैं ही कोशिश करूँगा।" कहते हुए रामनारायण उठ ही रहे थे कि उमा दौड कर आई और अपनी बडी माँ के गले से लिपट गई—

"माँ भूख लगी है ।"

"तू गई कहाँ थी पगली ! तेरे दादा तो तुझे कव से याद कर रहे है, क्या ससुराल चली गई थी ?"

"नही अभी तो रानी माँ के पास गई थी रजवाडे मे, पर ससुराल से भी तो अभी आई हूँ चार दिन हुए ।"

"क्या. . ... ?"

"कहा तो, माँ ।"

"क्या कहा ? पागल है । ससुराल तू अपनी गई थी या तेरी जीजी की ... .।"

"गई तो जीजी की ससुराल थी पर अव वह मेरी भी हो गई ।"

"तेरी हो गई ? सो कैसे ?" गुणवती को उमा की वात सुनकर विस्मय हो रहा था । सोच रही थी कि यह लडकी भी कैसी हँसी करती है ।

"माँ, वह जीजी के देवर है न .?"

'कौन सुभाष . .?"

"नही, उनसे वडे ।"

'चम्पकराम ? तो तू स्वय नाम क्यो नही लेती ?" अव गुणवती ने कुछ आशकित और चिन्तित होते हुए पूछा ।

"हाँ, उन्होने मुझे छू दिया ।"

"तो क्या हुआ छू दिया तो, पागल है । चल वैठ, मेरे साथ खाना खा ले ।"

"नही माँ, पूरी वात सुन लो ! मैं एक दिन चूना उठा उठा कर खूब वडे सारे रग के भरे हुए टव मे डाल रही थी तो उन्होने मेरे हाथ वाँध दिये ।

"फिर क्या हुआ ?" गुणवती ने जल्दी से टालने की गरज मे उससे पूछ लिया ।

"फिर मैने ऊपर झरोखे मे जाकर एक वडा सारा पत्थर उठाकर ऊपर से पटक दिया । वह उनके घुटने मे लगा । उन्होने नाराज होकर इसका कारण पूछा तो मैने कह दिया कि तुमने मुझे छू क्यो दिया ? अव तो मैं किसी

और से शादी कर ही नही सकती। मेरी माँ ने कहा है कि लडकी अपने पति के अलावा और किसी को भी नही छूती।"

"क्या कहा तूने .....क्या कहा ?" गुणवती ने आँखे फाडते हुए उसके दोनो हाथ पकड कर पूछा।

"यही तो ... कि मैं अब किसी और से शादी नही कर सकती। उन्होने कहा—अच्छा, मुझसे तो कर सकती हो ? मैने कहा—"हाँ। तब उन्होने कहा ठीक है, मैं तुमसे ही शादी करूँगा।"

"तू क्या पागल हो गई है उमा ! उनकी तो सगाई हो भी चुकी है दो वर्ष हुए।"

"पर उन्होने कहा था कि वे उस सगाई को तोड देगे। पक्का वायदा किया है।"

"किया है पक्का वायदा। यह क्या गुड्डे-गुडियो का खेल है ? तू ही ऐसी पुरखिन कैसे बन गई ?" गुणवती ने बहुत ही परेशान होते हुए कहा।

"कुछ भी हो माँ ! होगा तो यही तुम देख लेना। मै और कही भी शादी नही करूँगी। तुमने ही तो मुझे शिक्षा दी है। और मैंने उन्हे अपना पति मान लिया है। अगर ऐसा न हुआ तो .।"

"तो क्या होगा ?" गुणवती ने उसके मुँह की बात छीनते हुए क्रोध से कहा—

"तो क्या होगा, यह अभी तो मै ठीक-ठीक नही बता सकती, पर अच्छा नही होगा यह निश्चित है।"

गुणवती खाना-पीना भूल गई और पति के पास दौडी। जाकर उसने हाँफते-हाँफते सारी बात कह सुनाई। सुनकर रामनारायण बडे गभीर और परेशान हो गए। तुरन्त कुछ उत्तर नही दे सके। सोच-विचार कर पत्नी को शात करते हुए बोले—

"तुम घबराओ मत, मै अभी तो कही और उसकी शादी तय कर नही रहा हूँ। कुछ दिन चुपचाप देखता हूँ। अगर सुभाषिणी के देवर की सगाई टूट जाएगी और उनके यहाँ से कोई सदेश आएगा तो सोचूँगा। लडका अत्यन्त सुन्दर, स्वस्थ और समझदार है, करना भी पडे तो कोई दुख नही। पर हाँ, अपनी तरफ से ऐसी दुनिया से उलटी बात नही कहलवाऊँगा। नही तो चार व्यक्ति मुझे ही बुरा-भला कहेगे।"

"पर उमा की माँ ! बिटिया तुम्हारी, अपने बाप की तरह ही दृढ़ विचार की है। और फिर तुमने उसे दिन-रात जो शिक्षा दी है वह व्यर्थ नहीं जा सकती। हमारी उमा इतनी छोटी होने पर भी बहुत बड़ी है। बड़ी समझदार है। वह कोई काम ऐसा नहीं करेगी जिसके कारण तुम्हें दुख उठाना पड़े। तुम जाओ, खाना खाओ और उसे भी खिलाओ। वह भूखी होगी।"

"जाती हूँ........।" कहती हुई गुणवती न जाने मन में क्या-क्या सोचती हुई वहाँ से उठकर चल दी।

४

पिता और पुत्र

"वावूजी········ ···।"

"हॉ ।

"अव आपकी तवियत कैसी है ?"

"ठीक है वेटा, अव तो बिलकुल स्वस्थ हूँ, माधारण बुखार ही था । हॉ, जरा खॉसी ने परेशान कर दिया था ।"

"आपके दवा लेने का समय हो गया, दे दूँ ?" चम्पक ने उठने हुए कहा ।

"दे दो । पर दवा अव दी नही जाती, वन्द कर देना ।" कहते हुए उन्होने चम्पक की लाई हुई दवा ली और विस्तर पर लेट गये ।

चम्पक उनके पैरो के पाम ही बैठ गया और आहिस्ते-आहिस्ते पिता के पैर सहलाने लगा । कुछ क्षणो की नीरवता के वाद उसने धीरे से कहा—

"वावूजी ····।"

"हॉ, क्या वात है ?"

"कुछ कहना चाहते हो ? कहो न ।" उत्तर न पाकर वावू प्रतापनारायण ने कुछ आग्रह से पूछा । उन्हे अपने इस सुशाल तथा गुणवान वेटे पर बड़ा गर्व था । वडी तृप्तिमे उसकी ओर देखते हुए उन्होने फिर कहा—

"क्या बात है, बोलो, रुपये पैसे की जरूरत है ? न हो कुछ दिन घूम-घाम आओ, बहुत दिन से कही गए नही हो।"

"नही बाबूजी, वह बात नही है।"

"फिर ?" बडी उत्सुकता से अपने स्वस्थ पुत्र के सुन्दर चेहरे की ओर देखते हुए उन्होंने फिर पूछा।

"बात यह है कि...... ... मैं वह सगाई छोडना चाहता हूँ।"

"क्यो ? सगाई हुए तो दो वर्ष हो गए। पिताजी ने यह सम्बन्ध किया है; वे नाराज हो जायेंगे। और फिर ऐसे कामो मे बिना वजह कोई परिवर्तन किया जा सकता है ? जाओ खेलो, खाओ, खुश रहो। ऐसी बातें नहीं करते।"

"नही बाबूजी ! मै आपसे प्रार्थना करता हूँ.. ....।" चम्पक ने बडी ही आजीजी से कहा।

"पर बात क्या है ? सगाई हो चुकी है। बीस हजार का जेवर भी उनके यहाँ जा चुका है, ना करने से तूफान मच जाएगा। जेवर तो जाएगा ही मगर साथ ही साथ जबर्दस्त बुराई और हो जायेगी। घर मे सब मेरे खिलाफ हो जायेंगे। पिताजी, भाई साहब आदि सबको मै क्या कहूँगा ?" प्रताप-नारायण ने कुछ खिन्न होते हुए कहा।

"कुछ भी हो बाबूजी, वह लडकी मुझे शुरु से ही पसन्द नहीं है। आप सभी यह जानते है। मुझ पर दबाव डालकर ही यह सम्बन्ध किया गया था। पर अब मैंने निर्णय कर लिया है कि तनिक से लिहाज के कारण मैं जीवन भर के लिये दुखी होना नही चाहता।"

"तो तू ही अपने दादाजी से जाकर कह ऐसी बात। मेरी तो पिताजी से बात करने की हिम्मत नही। कौन उनकी बुरी-भली सुनेगा। और फिर, उस सगाई को छोड देगा तो करेगा कहाँ ? स्वयंवर रचाएगा क्या अपने लिये ?" अपने मौजी स्वभाव के कारण पुत्र से ही हँसी करते हुए प्रताप-नारायण बोले।

चम्पक हँस पडा और धीरे से बोला—

"नही, वह नई भाभी की बहिन है न ..?"

"कौन उमा ? जो अभी तीन-चार दिन हुए गई है। बहू की बहन ? वह तो बडी ही प्यारी बच्ची है। कितनी चपल, हँस मुख ! दस-बारह दिन मे

ही वह मुझसे बहुत हिलमिल गई थी। वही मुझे दवा दिया करती थी, रोज खाना खिलाती थी। सब तरह मेरी सेवा करती थी।" और प्रतापनारायण को याद आ गया कि कितनी ही बार उन्होंने उसे देखकर सोचा था—काश! यह मेरी बहू होती! कितनी सुन्दर है वह। चेहरा कैसा चमकता है उसका। चार-छः दिन ही वह यहा रही थी पर, पर जैसे घर भर को उसने मुग्ध कर लिया। उसके लिये कहने पर तो पिताजी अवश्य मान जायेंगे। वह उनकी भी तो लकडी छिपा दिया करती थी रोज और कहती थी— दादाजी मेरे सिर पर हाथ रख लो, मैं हूँ तुम्हारी—सहारे वाली लडकी। और हँसते हुए कहते थे—अरे, तू लडकी नही हे वरन् बहू की बहन है—छोटी बहू रानी। और वह शरमाकर भाग जाया करती थी। कितना आकर्षण है उस नन्ही-सी बच्ची मे! लगता है जैसे स्वर्ग से कोई देवी ही कन्या बनकर इस पृथ्वी पर आ गई हो।

प्रतापनारायण की विचारधारा चलती ही रहती अगर चम्पक उसे भंग न कर देता।

"तो बाबूजी · · ·· ····।"

"हाँ हाँ, जा तू, मै देख लूँगा।"

पिता से यह जवाब पाकर चम्पक आश्वस्त हो चल दिया। वह जानता था कि पिताजी एक बार किसी बात का निश्चय कर लेने पर उससे विमुख नही होते।

५
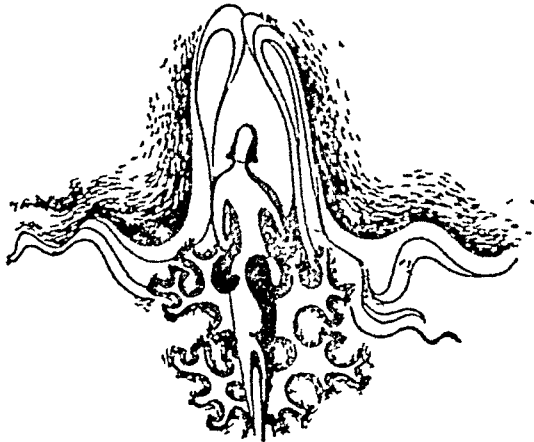
दुल्हन बदल गई

चम्पकराम का अनुमान सत्य था। उसके पिता ने चम्पक से हुई बातें अपने पिता तथा भाई से कही। दादाजी बहुत नाराज हुए। घर छोडकर चले जाने की धमकी भी दी। प्रतापनारायण को समझाया भी कि इससे हमारी शान मे भारी बट्टा लगेगा। दूसरे सगाई पर जो आभूषण आदि भेजे जा चुके है वे भी नही मिलेगे, लडकी वालो से झगडा हो जाएगा, आदि।

प्रतापनारायण ने सब कुछ सुना पर फिर भी दृढ शब्दो मे अपनी बात को दोहराया और कहा कि सगाई छोड देने मे ही कुशल है अन्यथा चम्पक कुछ कर बैठेगा तो लेने के देने पड जायेंगे। उससे कुल का नाम रोशन हो यह नही होगा, उलटी शान किरकिरी हो जायेगी।

अन्त मे बडी परेशानी और आशकाओ के बावजूद यही तय हुआ कि पिछली सगाई तोड दी जाय। हुआ भी वही। लडकी वालो ने जेवर तो नही दिया और ऊपर से अनेक प्रकार की धमकियाँ दी। बुरा-भला कहा, पर होनहार होकर रहा। चम्पक की सगाई वहाँ से छूटकर बडे भाई रमेश की ससुराल मे ही उमा से हो गई। वही उमा जिसकी सारी चपलता और अल्हडता के बावजूद भी सारा गाँव उसे खूब प्यार करता था।

विवाह की घडी आई। किन्तु उसी उमा को विवाह के अवसर पर आसू

वहाते देखकर सभी परेशान थे। प्रत्येक दस्तूर के समय उसकी आँखें बरस पडती। बरात आई, और उमा की सारी सहेलियाँ सुन्दर दूल्हे को देखने के लिये भाग गई। एक रमा बची जो उसकी सबसे प्रिय सखी थी।

रमा ने उसे खुश करने के लिये बहुत प्रयत्न किये और उसे ऊपर ले जाना चाहा। किन्तु वह टस से मस न हुई। बडी हैरानी से रमा बोली—

"उमा, तूने भी अपनी पसन्द से शादी की है न ?"

"हाँ।" मानो बडी गहराई से आवाज आई हो।

"तो फिर तू खुश क्यो नही है, आज तो बारात आई है।"

"खुश तो हूँ, बहन !"

"तो फिर चल, मैं तो छत पर वर राजा को देखने जा रही हूँ, तू भी चुपके से जालियो मे से देख लेना "

उमा ने कोई उत्तर नही दिया तो रमा उससे लिपट गई और बोली—

"क्या हुआ हे उमा तुझे ? मुझे भी नही बताएगी ?"

अब उमा फूट-फूट कर रो पडी और जब आवेग कुछ कम हुआ तो बोली—"रमा, मुझे बाबूजी की बहुत याद आ रही है। माँ तो सात दिन की छोडकर चल दी थी पर बाबूजी तो विद्यमान है। बचपन से ही उनका स्नेह नही मिला और आज भी वे नही है। कैसी अभागी हूँ मैं, तू ही बता क्या इस अवसर पर मै खुश रह सकती हूँ ? कोशिश तो बहुत करती हूँ मगर····।" उमा की शेष बात उसके मुँह मे ही रह गई और किसी के पुकारने की आवाज आई—

"रमा ! रमा ! उमा ! कहाँ हो तुम ?"

"क्या है धाय माँ ! इतना क्यो चिल्ला रही हो ?" रमा बोली। उमा की धाय माँ को उसकी सभी सखियाँ धाय माँ ही कहती थी।

"अरे बाबूजी आ गए। छोटे बाबूजी ·· ।"

"क्या कहा ? पिताजी ? पिताजी आ गए ?" उमा पागल की तरह उठी।

"हाँ। हाँ। वे आ रहे हैं, देखो !" लेकिन उमा तो दरवाजे के बाहर जा चुकी थी, कौन सुनता वहाँ ?

"बाबूजी, बाबूजी !" कहती हुई उमा विक्षिप्त की तरह अपने दस वर्ष मे बिछडे हुए पिता के पैरो के पास गिर पडी। जगतनारायण ने अपने काँपते

हुए हाथो से उसे उठा लिया और अपनी वेटी को हृदय से लगाकर उसके मस्तक पर हाथ फेरते रहे । पिता-पुत्री का यह अपूर्व मिलन देखकर सभी की आँखो मे आँसू आ गए, पर शीघ्र ही सव अपने-अपने को सभाल कर चल दिये । वारात दरवाजे पर आ चुकी थी ।

उमा का मन नाच उठा । उसकी सारी उदासी व दुख कपूर की तरह उड़ गया । उसके हृदय मे खुशी का सागर लहराने लगा । चम्पक का मधुर व्यक्तित्व पुन उसके कल्पना-लोक मे उभर आया और दवी हुई प्रफुल्लता से उसका सुन्दर चेहरा अनेक गुनी आभा से चमकने लगा ।

विवाह का आयोजन बडा शानदार रहा । दोनो ही पक्ष सम्पन्न थे अत किसी प्रकार के मनोमालिन्य की नौवत आ सके ऐसी सभावना ही नही थी । उमा के ससुर प्रतापनारायण अत्यन्त समझदार और दूरदर्शी थे । वर्षो से दूर रहने पर और विशेपकर विवाह के अवसर पर भी पिता के उपस्थित न होने से लडकी के मन की क्या अवस्था होगी, इसका उन्होने सहज ही अनुमान लगा लिया था । परिणामस्वरूप वे अपनी मोटर लेकर स्वय गए और अपने समधी जगतनारायणजी को मनाकर किसी प्रकार अपने साथ ले कर आए ।

भाई को तो जगतनारायणजी इन्कार कर चुके थे किन्तु प्रतापनारायणजी की वात को नही टाल सके और अपनी कन्या के विवाह पर उन्हे आकर सम्मिलित होना पडा । विवाह के समस्त अनुष्ठान उनके आ जाने से अनेक गुनी प्रसन्नतापूर्वक सम्पन्न हुए । भाई रामनारायण और भाभी गुणवती की खुशी का पार नही था । अजीव स्थिति थी उनकी । कभी तो उनकी आँखे भाई के आने की खुशी मे वरसती और कभी उमा के चले जाने के दुख से छलछला उठती ।

विदा होने से पहले रानी माँ ने उमा को गढ मे वुलाया और अनेक कीमती वस्तुएँ उपहार मे दी । रानी कल्याणी उसे सचमुच ही वहुत प्यार करती थी । विदाई का दृश्य अपूर्व था । सारे गाँव के स्त्री-पुरुप छल-छलाती आँखो से उसे विदा करने आये थे । सवका आशीर्वाद लेकर नेत्रो मे आँसू और हृदय मे मधुर अरमान लिये हुए उमा अपनी ससुराल आ गई । वहाँ जिसने भी उसे देखा, सराहा । सभी की प्रसन्नता अनिर्वचनीय थी ।

६

भोली वधू

विवाह के वाद एक दिन चम्पकराम की भाभी ने उनके पास आकर कहा—

"लाला जी।"

"जी।"

"जी से काम नही चलेगा, निकालिये अपना वटुआ! आज हमे मन चाहा इनाम मिलना चाहिये।"

"भैया वो है उधर, उन्हे जरा खुश कर देना, मन चाहा इनाम मिल जाएगा।" चम्पक ने भाभी सुभापिणी से मजाक करते हुए उत्तर दिया।

"रहने दीजिये अपने भैया को। उन्हे तो अपने कारोवार से ही फुरसत नही मिलती। मै तो आपसे माँग रही हूँ, मेरा अधिकार है।"

"पर मैं गरीव तुम्हे क्या दूँगा भाभी! तिजोरी की चावी तो उधर ही है भैया के पास, जरा ले आओ न जाकर, फिर देखना क्या इनाम देता हूँ तुमको।"

"कुछ नही चाहिये हमे, रहने दीजिये। इनाम माँगा तो लगे बाते वनाने।" सुभापिणी ने कृत्रिम क्रोध करते हुए मुँह फेर लिया।

"अच्छा, अच्छा। नाराज मत होओ भाभी! बन्दा हाजिर है, मैंने तो सिर्फ इसलिये अर्ज की थी कि कईदिन हो गए इस शादी की झझट मे भैया थक गए होगे जरा दो बोल बोलकर खैर जाने दीजिये, अभी आपकी इच्छा नही है तो। फरमाइये किस बात का इनाम दूँ ?"

"वाह कितना परिश्रम किया है आपकी शादी मे हमने, पहले तो उस सूर्पनखा से पीछा छुडवाया और फिर · ।"

"मेनका का पीछा किया।" चम्पक ने भाभी की बात काटते हुए कहा।

"मजाक नही लाला जी! सचमुच ही वह लडकी कुरूप तो है ही, उसके अलावा बडी मुँहफट और झगडालू भी है।"

"कौन तुम्हारी बहन उमा ?" चम्पक ने फिर भाभी की बात काटते हुए उसे चिढाया।

सुभाषिणी खिलखिला कर हँस पडी। हँसते हँसते बोली—"हाँ मेरी बहन ही तो, अभी जाकर देख लेना। मन के लड्डू फोडते रहे हो अब तक, अब आटे दाल का भाव मालूम होगा।"

"पता है, पता है, मुझे भी। यह देखो पत्थर पटककर घुटना फोड दिया था, निशान अब भी है।"

देवर-भाभी हँस पडे। भाभी ने कहा—

"अच्छा लाला जी, अब जाइये, बहुत देर हो गई, मन ही मन गालियाँ दे रहे होगे।"

'कौन भैया ?" चम्पक ने फिर बाजी उलटने की कोशिश की।

"आपके भैया नही, आप। मन मे सोच रहे होगे कि कितनी देर कर दी। प्रतीक्षा असह्य हो रही होगी। पर उमा तो सो गई है, बच्ची है न! मुझसे तो सात वर्ष छोटी है। घबरा गई इन सब झझटो के कारण। और अब अधिक परेशान मत करना अच्छा! मैं तो चलती हूँ अब।"

"अरे, अरे, ठहरो तो भाभी! एक काम है।"

"क्या ?"

"यह लो।" चम्पक ने अपनी जेब मे से दो अत्यन्त सुन्दर और एक सी मालाएँ निकाली और उनमे से एक अपनी भाभी को देकर बोला—

"यह माला एक आदमी गिरवी रख गया है, भैया की तिजोरी मे रखवा देना।"

गिरवी के वहाने देवर से इतना सुन्दर इनाम पाकर सुभाषिणी वहुत प्रसन्न हुई और मुस्कराते हुए वोली—

"और वह दूसरी माला ?"

"यह तो मैंने वनवाई है गिरवी रखने के लिये।"

सुभाषिणी ने हँसते हुए चुटकी ली—खोटी तो नही है ? आपका साहूकार वड़ा तेज है, खरे-खोटे की पहचान वडी जवर्दस्त है उसकी, घर पर अव जाइये, देर मत कीजिये, वह है उधर दरवाजा।" कहते हुए सुभाषिणी ने अपने देवर के कधे पकड करउसका मुँह कमरे की तरफ कर दिया। और स्वयं चल दी।

अपूर्व प्रसन्नता और उमग भरे हृदय से चम्पक अपने कमरे की ओर वढा। अनेक नवीन कल्पनाओ से उसका मन उद्वेलित हो रहा था। सोच रहा था कितनी परेशानियो के वाद वह उमा को पा सका है। इस अल्प अवस्था मे ही उसका तन और मन कितना सुन्दर है। सव कहते है वह अत्यन्त चपल और हँम मुख है, पर मुझे तो ऐसा नही लगा। लेकिन उसकी विचारधारा थोडा सा आगे वढते ही भग हो गई क्योकि सामने ही कमरे का दरवाजा था। उछलते हुए हृदय से उसने दरवाजा खोला। पर खोलते ही स्तव्ध रह गया। वहाँ कोई नही था। उसे याद आया कि भाभी ने तो कहा था वह थक जाने के कारण सो गई है। अचानक ही उसकी दृष्टि कमरे के अन्दर की छोटी सी कोठरी पर पडी। उसका दरवाजा अन्दर से वन्द था। वह समझ गया कि उमा उसके अन्दर है।

कोठरी मे एक छोटे से रोशनदान के अलावा हवा के प्रवेश का और कोई रास्ता नही था। अत. चम्पक यह सोच कर घवरा गया कि अन्दर वैठी हुई उमा का दम घुट रहा होगा। दौडकर वह कोठरी के समीप पहुँचा और दरवाजा खट-खटाते हुए पुकारा—

"उमा! दरवाजा खोलो।"

दरवाजा खोलो उमा! तवियत घवरा जाएगी, पागलपन मत करो। वाहर आओ देखो मै तुम्हारे लिये कितनी सुन्दर चीज लाया हूँ।"

कोई उत्तर न पा चम्पक निराश हो गया। पर कुछ विचार कर वोला—

'ठीक है जैसी तुम्हारी मर्जी, मै तो सोता हूं, वडे जोर से नीद आ रही है।" और वह जाकर विस्तर पर लेट गया। नीद न आने पर भी सो जाने

का वहाना करने लगा। उसका अनुमान था कि मुझे सोया हुआ जानने के वाद ही उमा वाहर निकलेगी। हुआ भी यही। करीव आधा घटे वाद दरवाजा धीरे से खुला।

चम्पक जाग ही रहा था। आहट पाकर वह चौकन्ना हो गया। अधखुली आँखो से देखता रहा, वोला कुछ नही। मन-ही-मन उमे वडी हँसी आई यह देखकर कि उमा ने पैरो की वजने वाली पैजनियाँ अपने दाहिने हाथ मे ले रखी है और वाएँ हाथ से जरीदार लँहगे को थाम लिया है। चम्पक की ओर देखती हुई उमा दवे पाँव आगे वढी और कमरे के दरवाजे को धीरे से खोला। आश्चर्य मे डूवा हुआ चम्पक सोच ही नही पाया कि वह क्या करे पर उमा के वाहर निकलते ही तुरन्त उठ कर खडा हो गया। और दरवाजे पर आकर देखने लगा।

अँधेरे मे उमा चुपचाप आगे वढ रही थी पर दम वारह कदम ही गई होगी कि उमका एक पैर किमी छोटे से गड्डे मे जा पडा। शायद ऊखल थी वह। चम्पक हेरान होकर आगे वढने वाला ही था कि उसकी दृष्टि फिर आगे की ओर चलती हुई उमा पर जा पडी। ऊखल मे से पैर निकाल कर वह रवाना हुई पर थोडा सा जाने ही एक वडी मी भट्टी मे जिसमे शादी से पहले मिठाइयाँ वनी थीं, गिर पडी।

चम्पक अव एक क्षण का भी विलवन करके दौडा और अपनी नव-विवाहिता रूपमी पत्नी को फूल की तरह गोद मे उठाकर कमरे मे ले आया। उमा ने कोई विरोध नही किया, वह मुस्करा रही थी। चम्पक ने गहरे स्नेह से उसके ललाट को चूम लिया और उसे पलग पर वैठा दिया वोला—

"वडी पगली हो तुम।"

"कौन कहता है?" उमा ने चट से प्रश्न किया।

"मैं कहता हूँ।"

"तुम तो झूठ वोलते हो।" उमा निस्संकोच वोली।

"वाह, झूठ कैमे, सच तो कहा है।"

"नही। मारा गाँव कहता है कि तेरह वर्ष की होने पर भी मैं अठारह साल की दिखती हूँ और अकल तो मुझ मे वीम वर्ष की लडकी के जितनी है।"

"हाँ यह तो मैं भी मानता हूँ उमा कि तुम वहुत ही होशियार और

समझदार हो। पर इतनी समझदार होकर भी तुम दवे पॉव भाग कहाँ रही थी, वताओ ?"

"जीजी के पास।"

"क्यो ?"

"नीद आ रही थी मुझे।"

"तो यही सो जाती, तुम्हारा ही तो है यह कमरा, मैंने मना किया था क्या सोने को ?"

"मना तो नही किया, पर हमे शरम आती हे।" उमा ने कुछ सॅकते-सॅकते कहा।

"चम्पक उसके भोलेपन पर मुस्करा दिया। वोला—

"अच्छा उमा ! तुम मुझे अपने गॉव की वातें सुनाओगी ? मे सुनूँगा।"

"सच ?" उमा का चेहरा चमक उठा। वह जल्दी जल्दी वोली—"किसकी वाते वताऊँ ? सहेली की, रानी माँ की, काली गाय, धाय माँ या अपने तोते की ! किसकी वाते सुनाऊँ ?"

चम्पक उसके उतावले पन पर हँस पडा। वोला—

"आज तो तुम अपनी रानी माँ के वारे मे वताओ। कल सहेली के वारे मे और परसो.... . ।"

"अरे, तो अव सुनोगे भी या आप, कल और परसो ही करते रहोगे, सुनो न जल्दी।"

"अरे वाप रे, गलती हो गई। एक वार माफ करदो अव नही वोलूँगा।" कहते हुए चम्पक का हृदय खुशी के मारे झूम उठा। उसने धीरे से अपनी वालिका वधू के कोमल और कमनीय हाथो को अपने हाथो मे ले लिया और वडी एकाग्रता से सुनने का नाटक किया।

उमा वडे उत्साह से गढ की और रानी माँ की वाते वता चली। वे उसे वहुत ही प्यार करती है। कभी कोई खास अवसर हो तो पहले ही उसे वुला लेती हैं। उनके यहाँ रोज जाना पडता है, नही तो वहुत नाराज होती है, वोलती नही, और उसे वडी मुश्किल से उनके गले मे वॉहे डालकर मनाना पडता है। प्रतिज्ञा भी करनी पडती है कि अव रोज आऊगी। गढ के झूले वडे शानदार है, वह खूव झूलती है। आदि ॰

चम्पक मुग्ध दृष्टि से उसकी ओर निहारता हुआ सब बाते सुनता रहा। पर जब उसने देखा कि उमा की पलके नीद के मारे बोझिल हो रही है तो धीरे से उसने उसे शैय्या पर लिटा दिया।

"उमा ने विरोध नही किया, बोली—

"बस अब कल सुन लेना, मुझे बहुत जोर से नीद आ रही है।"

"तो सो जाओ।"

"अच्छा।" कहकर वह पति के वक्ष मे निस्संकोच मुँह छिपाकर दो मिनट मे ही सो गई। और भूल गई कि अभी थोडी देर पहले ही तो उसने कहा था, "हमे शरम आती है।"

७

कैसा छकाया ?

"ए हरिया !"

"क्या है वहू जी ?"

"देख, आज एक काम करेगा ?" उमा वोली ।

"क्यो नही करूँगा, मै यहाँ हूँ किसलिये ? आप वताओ तो सही ! वारह माल का हूँ तो क्या हुआ, वडो-वडा के कान काटता हूँ ।"

"शावाश, अच्छा तो देख, ले ये कपडे पहन ले और मव जेवर भी ।" उमा मुस्कुराहट दवाती हुई वोली ।

वेचारा हरिया भौचक्का रह गया । सोचने लगा—यह भी कोइ काम है । उमने ववराकर कहा—

"नही नही, यह-क्या ? यह तो आपके कपडे और गहने है । मै लडका हूँ इन्हे कैमे पहनूँ ? ये मव आप पेटी मे रख दीजिये वहूजी ! कपडे तो मेरे ही ठीक है । कपडो का क्या, उमसे शान थोडे ही घटती-वढती है, अक्ल चाहिये सिर्फ ।"

वीच मे ही उसकी वात काटते हुए उमा ने कहा—"सुन तो तू । अपनी ही कहे जा रहा है ।" देख आज तेरे छोटे वावू तो यहाँ है नही, गाँव गए है ।"

"हाँ तो क्या हुआ ?" भोले हरिया ने पूछा ।

"तू यहो सो जा वावूजी के कमरे मे, मुझे डर लगता है । तू यहाँ सो जाना, मै इमके पास वाले कमरे मे सो जाऊँगी ।"

"हाँ तो इसमे कौन बडी बात है बहूजी ! मै तो रोज ही यही रहता हूँ, कही भी सो जाता हूँ। पर ये कपडे आप रख दो, मै क्या लडकी हूँ ?"

"नही रे ! देख, अगर तू ऐसे सोएगा तो बाबूजी कहेगे कौन है यहाँ, और तू ये कपडे पहन लेगा तो मै कह दूँगी कि मेरी सहेली है।"

"नही बहूजी ! आप कह देना कि हरिया है। मुझे यह सब अच्छा नही लगता।"

"देख पाँच रुपये दूँगी तुझे। एक दिन का तो काम ही है, तेरा क्या बिगडता है ?"

पाँच रुपये के नाम से गरीब हरिया के मुँह मे पानी आ गया। उसने सोचा—ओह ! पाँच रुपये मे कितनी सारी चीजे आ जायेगी। लड्डू, डोरी, पतग, अच्छे जूते और बचे हुए पैसो की वह चाट पकौडी खाएगा। आह—अभी सवेरा हो जाता तो कितना अच्छा रहता।

हरिया को चुप देखकर उमा समझ गई कि युक्ति काम कर गई। उसने कपडे दे दिये और वह जाकर पहन आया। कुछ गहने भी उसे उमा ने पहना दिये। रेशमी लहँगे ओढनी मे हरिया लडकी बना अपने आपको निरखता ही रहा। उमा ने कहा—

"अच्छा जा, रात काफी हो गई, तू जाकर छोटे बाबूजी के पलग पर ही आराम से सो जा।"

"नही नही, मै तो जमीन पर ही सोऊँगा।"

"वाह ! मेरी सहेली नीचे कैसे सोएगी ? कपडे नही खराब हो जाएँगे उसके ? तू है कैसा हरिया ?"

बुद्धू हरिया फिर क्या कहता ? सोचने लगा—आज वह कितने आनन्द से हाथ भर भीतर धँस जाने वाले पलँग पर सोएगा। सोचता-सोचता वह चला गया और सवेरा होते ही पाँच रुपये पाने और मनचाही चीजे खरीदने के स्वप्न देखने लगा।

उधर उमा खूब खुश होती हुई बगल वाले कमरे मे जाकर लेट गई। सोचने लगी--कैसा आनन्द आएगा जब श्रीमानजी कमरे मे घुसेगे। आहा, आहा, क्या कहेगे वह हरिया को देखकर। उस अनुपम दृश्य की कल्पना कर वह खुद ही ताली पीटकर हँसने लगी, खूब हँसी और फिर चुपचाप पति के आने की प्रतीक्षा करने लगी। उससे मजा किया कामो मे एक की वृद्धि और

हो गई। घर मे किसी से भी हँसी करने मे वह चूकती नही थी। पर फिर भी सब उससे खुश रहते थे और उसे प्यार करते थे। सबसे ज्यादा प्यार उसके ससुर का था।

यथासमय चम्पक गाँव से लौटा और कुछ देर नीचे बैठक मे पिता को अपने कार्य की जानकारी कराकर ऊपर अपने कमरे मे आया। उमा साम रोके हुए किवाडो की सध मे से सब देख रही थी चम्पक कमरे मे घुसते ही चौंका। सोचने लगा, शादी को एक वर्ष होने आया पर आज तक कभी भी उसने अपने आने से पहले उमा को पलग पर सोए हुए नही देखा। सदा जागती हुई या जमीन पर सोई हुई ही मिलती है। आज क्या कारण है ? वह आशकित हुआ कि कही उसकी तवियत खराब तो नही हो गई। वह एकदम पलग के पास गया और उस पर बैठकर उमा के हाथ को अपने हाथ मे लेने की कोशिश करते हुए बोला—

"उमा, क्या बात है आज...... ।"

पर बात उसके मुँह मे ही रह गई और जैसे बिजली का करट लग गया हो। वह चौंककर खडा हो गया गरीब हरिया को पलग पर से खीचकर उसने नीचे खडा कर दिया और तडाक से एक चाँटा उसके गाल पर लगाते हुए बोला—

"नालायक, तेरी यह हिम्मत ?" बेचारे हरिया की नीद उड भी नही पाई और पाँचो अगुलियो के निशान लिये वह रोता हुआ बाहर निकल गया।

उमा अब तक कमरे के दरवाजे से चिपकी खडी थी और हँसी पर काबू पाने का प्रयत्न कर रही थी। पर हरिया के गाल पर चाँटा पडते ही वह भी रसोई घर की ओर भागी तथा चम्पक के लिये खाना परोसने लगी।

चम्पक का दिमाग भन्ना गया था, पर कुछ ही देर मे उसका क्रोध असली न रहकर नकली बन गया। वह सोच रहा था कितनी शैतान है उमा। रोज कुछ न कुछ उपद्रव करती ही रहती है। आफत का परनला है पर नसीब कैसा लेकर आयी है कि कोई इससे नाराज भी तो नही होता। सबसे अधिक तो पिताजी ने इसे सिर पर चढा रखा है कुछ कहते ही शुरू कर देते है "मेरी बहूरानी लक्ष्मी है .. ।" मै जानता हूँ इस लक्ष्मी को ।" चम्पक सोचता ही रहता कुछ न कुछ, अगर समीप ही रखी टेबिल पर उमा के द्वारा थाली रखने की आवाज न आई होती।

कसा छकाया

“लो खाना खालो।” उमा ने दबी हुई मुस्कुराहट चेहरे पर लिये हुए कहा।

“भूख नही है।”

“क्यो नही है भूख ?”

“नही है बस, कोई जबर्दस्ती है क्या ? मुझे तुम्हारे ये वाहियात मजाक पसन्द नही हैं।”

“तो मैंने क्या किया ? बुरा तो किया आपने, इतनी जोर से क्यो मारा विचारे को ? मैंने तो उसे पाँच रुपये दिये थे, और सोच रही थी आहा मेरे गहने-कपडे पहने हुए आपको कैसा लगेगा वह, और आप ऐसे हैं कि बस ···· ··।”

“तो पाँच रुपये उसे वैसे ही दे दिये होते। गनगोर किसलिये बनाया था ?” पाँच रुपये देने की बात सुनकर चम्पक का गुस्सा कुछ ठडा पड गया था।

“यों ही देने से फिर जब तब लेने की उसकी आदत पड जाती न।”

“वाह ! तो उससे यह काम कराया था ?” कहते-कहते चम्पक हँस पडा। उमा भी खिलखिला उठी।

“खाना खाओ न, ठडा हो रहा है।”

चम्पक ने कौर तोडा पर अचानक ही कुछ ध्यान आते ही पूछ बैठा—

“तुमने खा लिया ?”

“अभी कहाँ, आप तो अभी झगड ही रहे हैं।” वह रूठकर बोली।

“उमा ! मैंने तुमसे कितनी बार कहा है कि तुम खा लिया करो। मुझे प्राय देर हो जाती है आने मे।”

“पर मैं खाऊँ कैसे भाता तो है ही नही।”

चम्पक इस बात को खूब अच्छी तरह जानता था कि उसके लौटकर आने तब वह एक ग्रास भी मुँह मे नही डालती। चाहे कितनी भी रात क्यो न चली जाए। उसने इतनी देर कर देने के कारण मन ही मन पश्चात्ताप किया और एक गुलाबजामुन उठाकर जबर्दस्ती उमा के मुँह मे ठूँस दिया। उमा परेशान होते हुए बोली—

“हटो। मुझे भी तुम्हारे ये वाहियात मजाक पसन्द नही।”

पर चम्पक माना नही। उसने अपने साथ ही अपनी वधू को खिलाया, छोडा नही।

८

नहीं जाना मुझे !

दो चार दिन फिर शान्ति मे वीत गए और उमा ने कोई नई शतानी नही की तो चम्पक का चौकन्नापन कुछ कम हो गया। पर एक दिन फिर जव वह घर मे आया तो सन्न रह गया। देखा कि घर मे कोहराम मच रहा था। उसकी चचेरी भाभी धाढे मार कर रो रही थी और मुहल्ले की औरते उनका साथ दे रही थी। चम्पक धडाधड ऊपर गया, उमा से मालूम करने कि वात क्या है ? जाकर देखा तो उमा वौखलाई हुई खडी थी। उसे देखते ही वह रुँआसी होकर बोली—

"तुम कहाँ थे इतनी देर ? हाय राम, मैं क्या करूँ अव ?"

चम्पक समझ गया कि उसने फिर कोई कारस्तानी की है और वात विगड गई है। वोला—

"क्या हुआ, वडी भाभी रो क्यो रही है ?"

"यो ही रो रही है, मैंने मजाक मे कहलवा दिया कि आपकी दादी जी गुजर गई तो रोने वैठ गई, न कुछ पूछा ताछा न कुछ और, इस कोहराम का इतना विस्तार हो गया। अव कैसे समेटूँ मैं ? जव से तुम्हारी राय

देख रही थी कि जाकर समझा देते। जरा जल्दी से जाओ न उन्हे समझा दो।"

चम्पक को हरिया के नाम से उस दिन का वह गनगौर वाला दृश्य याद आ गया। और उसकी याद आते ही हँसी आने वाली ही थी कि उसने अपने को रोक लिया और झूठमूठ गुस्सा करते हुए बोला—

"मै क्यो समझाऊँ जाकर, जैसा करती हो भुगतो, अच्छा हुआ अब अकल ठिकाने आएगी। रोज कुछ न कुछ खुराफात करती रहती हो।"

"नही-नही, मेरी कसम! अब कभी नही करूँगी। आप तो जाओ जल्दी नही तो न जाने क्या होगा?"

चम्पक ने कोई जबाव नही दिया पर सचमुच ही परिस्थिति की गभीरता को समझते हुए झट चल दिया। थोडी देर बाद ही जब रोना-धोना बन्द हो गया और चम्पक लौट आया, तब उमा के जी मे जी आया और वह पति के लिये खाना लाने गई।

चम्पक ने खाना खाते समय कहा—"उमा! तुम्हारा यह बचपन कब जाएगा?"

"मरूँगी तब।" उमा ने तडाक से उत्तर दिया।

"झूठी कही की, शैतान! अभी तो गिडगिडा रही थी कि फिर कभी नही करूँगी कुछ भी।" चम्पक बनावटी गुस्से से बोला।

"गई सो गई" उमा हस पड़ी। चम्पक भी हँसने लगा। हँसते-हँसते बोला—

"पर उमा, हमारी शादी को साल भर हो गया। अब तुम बडी हो गई हो, कब तक इस प्रकार घर भर को परेशान करोगी? कुछ नई वारदात किये बिना क्या तुम्हारा खाना हजम नही होता?"

"खाना तो हजम हो जाता है पर मेरा मन नही लगता।" आगे उमा कुछ नही बोली, वह कुछ उदास हो गई। देखकर चम्पक ने कहा—

"साल भर से पीहर नही गई हो इसलिये न? उमा, मैने तुम्हे शादी के बाद से ही माता-पिता के यहाँ नही भेजा। इसके लिये तुम मुझे जो चाहे कहलो, चाहे जितना नाराज होलो, रोज शैतानी करो, मै सब कुछ सहने को तैयार हूँ, पर तुम्हे भेजने को तैयार नही। मेरा मन निश्चित रूप से

कहता है कि अगर तुम गई तो वापिस इस जीवन मे कभी नही मिल सकोगी।"

उमा ने तुरन्त अपना हाथ पति के मुँह पर रख दिया और वहुत ही नाराज होकर वोली—

"फिर वही वात' ...... मै कव कह रही हूँ जाने को? नही जाना मुझे। क्या मैंने वार-वार वहा से लेने आने वाले व्यक्तियो को लौटा नही दिया?" कहते हुए उसने स्नेहपूर्वक स्वामी के गले मे अपनी वाँहे डाल दी और उनके वक्ष मे अपना मुँह छिपा लिया। वोली—"कौन चाहिये तुम्हारे अलावा और मुझे?"

अत्यन्त प्यार से उमा के मुँह की ठोडी पकड कर उसे ऊँचा उठाते हुए चम्पक वोला—"तुम तो नही जाना चाहती उमा! पर तुम्हारे पिताजी तो वहुत ही नाराज हो रहे है और लिख रहे है कि अव मै स्वय लेने आ रहा हूँ। अपने पिताजी का उग्र स्वभाव तुम जानती ही हो। मेरी वात का कौन विश्वास करेगा कि मेरा मन क्या कहता है।"

"नही मै नही जाऊँगी, तुम मना कर देना।"

"कोशिश करूँगा, पर शायद हो नही सकेगा ऐसा।"

"हो सकेगा, खूव हो सकेगा। अभी चिट्ठी लिख दीजिए कि न आएँ यहाँ, कोई लाभ नही व्यर्थ परेशान होने मे।"

पर ऐसा सचमुच ही नही हो सका और उमा के पिता जगतनारायण तीन दिन वाद ही उसे लेने आ गए। वे वहुत कुपित थे, फिर क्या होता। उमा ने ससुराल वालो से चम्पक की अनिच्छा के वावजूद मना करना ठीक नही समझा और चम्पक लिहाज के कारण कुछ कह नही सका। जगतनारायण जी ठहरे नही। वेटी के यहाँ पानी भी वे नही पीते थे अत. उसी दिन खडे-खडे तैयारी करवा कर उमा को लिवा गए।

उमा के हृदय मे पीहर जाने की रच मात्र भी खुशी नही थी। नाना प्रकार की आशकाओ से भरे हृदय को लिये आसू वहाती हुई किसी प्रकार वह कमरे मे पति के पास आई, पैर छूने को झुकी ही थी कि चम्पक ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया, कहा—

"जा रही हो उमा! प्रसन्न रहना और जल्दी लौट आना कौन जाने...........।"

उमा आगे न सुन सकी, उसी क्षण पति के पैरो पर लोट गई और फूट-फूट कर रो पडी।

चम्पक ने फीकी हँसी हँसते हुए उसे उठाया और उसके आँसुओ से भीगे हुए चहरे को हथेलियो मे थामे हुए सिंदूर मडित ललाट को चूम लिया। कुछ क्षण अपलक नेत्रो से देखता रहा, और फिर गहरी नि श्वास लेकर धीरे-धीरे उसे कमरे मे बाहर भेज दिया। टूटता हृदय, और सूजी हुई आँखे घूँघट मे छिपाए हुए उमा मोटर मे जाकर बैठ गई। चम्पक शून्य मे देखता हुआ विक्षिप्त सा खडा रहा।

९

क्रूर काल मुस्काया

उमा की वडी माँ गुणवती वेटी के लिये पलके विछाए वैठी थी। शादी से पहले उसने कभी भी पुत्री को अपनी आँखो की ओट नही किया था। पर अव एक साल से उसे देख भी नही पाई थी। वार-वार लिवाने वाले जाते और लौट आते थे अत: उसका मन वुझ-मा जाता था। इस वार देवर जी को उसने वार-वार वडी आजिजी से कहा था—

"लाला जी, उमा को लेकर ही आना और वहाँ रुकना नही, मेरी कसम है तुरन्त लौटना।"

और अगले दिन जिस समय वाहर तागे की आवाज आई वह वावली सी दौडी और अपनी वेटी को कलेजे से लगा लिया। उमा का शरीर साल भर मे और कुन्दन की तरह चमकने लगा था। उसे अत्यन्त स्वस्थ और सुन्दर देखकर गुणवती की आत्मा तृप्त हो गई। पर उसे यह देखकर वडा आश्चर्य हुआ कि माता-पिता के मिलने पर जैसी खुशी लड़कियो मे होती है उसका नामोनिशान भी उमा के चेहरे पर नही था। उसका चेहरा भावहीन-सा दिखाई दे रहा था। पर गुणवती ने इसे सफर की थकावट समझा और उसे अन्दर ले गई। ठण्डे पानी का गिलास उमा के हाथो मे थमाती हुई वोली—

"बेटी, बडी निर्मोही हो गई तू तो।"

"नही तो माँ !" उमा ने जवाब दिया।

"एक साल हो गया तू आई नही। मैने सुना है तूने ही मना कर दिया था।"

"नही माँ ऐसी तो बात नही है, भेजा नही था वहाँ से।"

"क्यो ?" जरा तुनक कर गुणवती बोली—"बेटी अपने पीहर आएगी ही नही क्या ? कैसे है जमाई बाबू ? पर हाँ उमा, तू इतनी उदास क्यो है ? क्या मेरे जमाई का स्वभाव अच्छा नही ! तेरा चेहरा कितना उतरा हुआ लग रहा है। अब तू यही रह प्रसन्नता से। जैसे उन्होने इतने दिन नही भेजा, हम भी यहाँ से नही भेजेगे।"

"नही, नही, माँ।" उमा और कुछ न कह सकी, रो पड़ी वह।

"यह कैसी बात है ? गुणवती समझ नही पाई। खुश भी नही है और यहाँ रहना भी नही चाहती। न जाने कितना डरा दिया है मेरी बच्ची को। खैर जाने दे, उठ नहा धो कर कुछ खाले, मुँह सूखकर कितना-सा हो गया है।"

उमा को मैके आए पन्द्रह दिन ही हुए थे पर उसे लगता था जैसे पन्द्रह महीने बीत चुके हो। रोज सोचती कोई सदेश आएगा, लिवा ले जाने के लिये। पिता जी के घर मे आते ही वह उत्सुकतापूर्वक देखती कि शायद कुछ कहेगे अब। और अचानक वह दिन भी आया। एक दिन शाम को रामनारायण जी ने घर आकर पत्नी से बताया कि उमा को ससुराल से सदेश आया था कि हम लिवाने आ रहे है।

"फिर आपने क्या जवाब दिया ?" गुणवती ने पूछा।

"मैने कहलवा दिया है कि दो महीने बाद आएँ। गनगौर के अवसर पर हम उमा को भेजेगे।"

सतोष की सास लेते हुए गुणवती ने कहा—"बहुत अच्छा किया। भला ऐसे कैसे भेज दे ? एक ही तो मेरी बिटिया है। शादी से भी अधिक देकर तब भेजूँगी इसे, अभी तो कुछ तैयारी ही नही हो पाई। लालाजी का तो कोई ठिकाना रहता नही। कुछ दिन यहाँ रहे न रहे और चल दिये।"

पर अन्दर बैठी हुई उमा का चेहरा फक हो गया। और ठडी सास उसके कलेजे को चीरती हुई निकल गई। वह सोच रही थी, पन्द्रह दिन ही

न जाने कैसे निकल पाए है, दो महीने अब कब बीतेंगे। पति की बात कि—"लगता है हम जीवन मे" ....बार-बार याद आती रहती थी। उसका मन कही नही लगता। अब वह गढ मे भी अधिक नही जाती, सखियो से भी नही मिलती। हालांकि इतने दिन बाद आई थी पर मानो बिल्कुल ही बदल कर। किसी ने सच्ची खुशी उसके चेहरे पर नही देखी, सब हैरान थे।

एक दिन हरिया आया। इसी गॉव मे उसकी बुआ रहती थी, उसके यहा किसी शादी मे आया था। आते ही पहले वह अपनी मालकिन से मिलने चला आया। उमा को वह बहुत चाहता था।

हरिया को देखते ही उमा का चेहरा प्रफुल्लित हो गया। वह तुरन्त पूछ बैठी—

"तेरे छोटे बाबू कैसे है हरिया ? स्वस्थ है न ? कैसे रहते है ? कौन उनका कमरा साफ करता है, कौन खाना खिलाता है, तू ?"

हरिया बेचारा इतने प्रश्नो का उत्तर एक साथ कैसे देता, फिर भी बोला—

"बहूजी, बाबूजी तो आप आई उसी दिन से गॉव पर जाकर रहने लगे है। एक दो बार बडे बाबूजी से मिलने आए, पर घटा आधा घटा ठहरकर ही चल दिये। दूध, दही, मीठा सब छोड दिया है। शाक रोटी के अलावा कुछ नही खाते। आपका कमरा तो आप आई तभी से बन्द है। बाबूजी ने एक दिन भी नही खोला, न ही उसमे कभी सोए

उमा जडवत बैठी रह गई, कुछ न कह सकी। बडी कठिनाई से कहा—

"हरिया ! अपने बाबूजी से कहना, आकर जल्दी से जल्दी ले जायें।"

"पर आपके पिताजी ने तो अभी भेजने से मना कर दिया है।"

"नही, तू उन्हे तुरन्त आने को कह देना।"

"अच्छा" कहकर हरिया चला गया और उमा ने उसी दिन से प्रतीक्षा करनी शुरू कर दी। पर दिन एक-एक कर बीत चले, कोई भी उसकी ससुराल से नही आया। उमा घुलने लगी। उसकी सहेलियॉ गुणवती से कहती—"चाची, उमा को क्या हो गया, बिल्कुल ही बदल गई है। न पहले की तरह बोलती है, न हॅसती है।"

गुणवती भी अब उमा को पहचान गई थी। नारी होने के कारण उमा की व्यथा को वह भली-भॉति समझ गई। उसे लगने लगा कि व्यर्थ ही इसे अधिक दिन रोका। बेटी तो ससुराल मे ही शोभा देती है। पति से बढ़कर

उसके लिये और क्या हो सकता है ? पर अब यह सब सोचने से क्या होता, तीर तो हाथ से छूट चुका था। गनगौर पर भेजने को कहला दिया था। इस निश्चय को बदलने के लिये पति से कहने की उसकी हिम्मत नहीं थी, अत. भारी दिल और भरी-भरी आँखों से पुत्री को देखती हुई उसे अधिक से अधिक प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती थी।

गुणवती बडी उमग से उमा की विदाई के लिये तैयारियाँ कर रही थी। गहने, कपडे, बर्तन खिलौने और नाना प्रकार की चीजो का घर मे अम्बार लग गया।

उमा बडी माँ के प्यार का अनुमान लगाकर मन ही मन बडी कृतज्ञ हो रहा था। उसका मन नाना प्रकार के भावो क केन्द्र बना एक-एक दिन गुजार रही थी। यद्यपि पति के बार-बार कहे हुए वचन उसे याद आते और उसे आशकित करते रहते। किन्तु समय-समय पर उधर के कुशल समाचार पाकर सतोष होता। फिर भी कभी-कभी न जाने क्यो गहरी उदासी उसके हृदय को घेर लेती और वह काप उठती। अनेक राते उसने जागकर बिताई और पति के लिये शुभ कामना की।

धीरे-धीरे गनगौर का मेला समीप आया। घर मे धूम-धाम बढ गई। गुणवती बेटी के लिये मन माफिक तैयारियाँ करके खुश थी, पर यह सोचकर कि अब वह चली जाएगी, उदास भी। अभी ही साल भर मे आई है और अब न जाने कब आएगी, यह ध्यान आते ही उसकी आँखो से टप-टप आँसू गिर पडते। पर वह चुपचाप उन्हे पोछ लेती। उमा को मालूम ही नही पडता कि कैसे हर्ष-विषाद मे उसकी मा के दिन बीत रहे है।

आखिर बडी प्रतीक्षा के बाद गनगौर का दिन भी आ गया। एक दिन पहले ही समाचार आ गये थे कि उमा को लिवाने के लिये कल शाम को चार बजे जँवाई बाबू स्वय ही आ रहे है, यह भी मालूम हुआ कि बिटिया की ससुराल मे भी भारी तैयारियाँ हुई है। अनेक प्रकार के मेवे मिष्ठान और हीरे के कगन उमा के लिये आ रहे है। साथ मे नाचने, गाने वालियाँ भी आयेगी ससुराल वाले बडे अमीर है। कहते है कि पचास लाख रुपये देकर उन्होने तेरह गाँव बसाए हैं।

गनगौर के दिन रामनारायण और गुणवती तो मानो पागल से हो गए। उन्हे सूझ ही नही रहा था कि क्या करे और क्या न करे। प्रात.काल के बाद दस, बारह और दो भी बजने आए। बस दो घटे बाद ही दामाद चम्पकराय

आ जायेगे। कितनी प्रसन्नता की वात है। वाबू रामनारायण ने फाटक के बाहर बन्दूके लिये हुए वर्दीधारी पुरुषो को तैनात कर दिया ओर अन्दर आँगन मे बधावे गाने के लिये स्त्रियाँ तैयार होकर वैठ गई।

उमा का हृदय धडक रहा था। उसे उसकी सहेलियो ने अप्सरा की तरह सजा दिया। उमा ने सकोचवश मना भी किया पर वडी मा की आज्ञा थी अत उसकी एक भी नही चली। घडी ने तीन वजाए और ठीक उसी समय उमा की दाहिनी आँख जोरो से फडक उठी। घवराहट के मारे उसका कलेजा दहल गया। पति के वे शब्द उसे फिर याद आ गय और उसकी आँखो के आगे नाना भाँति की आशकाओ के कारण मानो अँधेरा छा गया। पर वायु का प्रकोप मानकर उसने किसी तरह अपने हृदय को थामा और अत्यन्त व्याकुलता पूर्वक प्रतीक्षा करने लगी।

साढे चार वजे के करीव, दूर से ही उमा के ससुराल वालो की मोटर दिखाई दी। घर भर मे खुशी का कोलाहल मच गया। ज्यो ही मोटर समीप आई बन्दूके छुडवा दी गई।

पर यह क्या, मोटर रुकते ही सवने देखा कि उसमे से सिर्फ मुनीम और हरिया ही उतरे है, और उनके चेहरे भी गभीर और रूखे है।

वाबू रामनारायण के पैर मानो जमीन से चिपक गये। वडी कठिनाई से उन्होने पूछा—

"जमाई वावू कहाँ है ? वे नही आये ?"

"नही, छोटे वावू नही आये उनकी तवियत ठीक नही है। आप वहूरानी को अभी हमारे साथ भेज दीजिये।"

"रामनारायण सिर पकडकर वही वैठ गए और वडी कठिनाई से वोले—

"अच्छा, सव सामान रखवा लीजिये, मै मँगवाता हूँ।"

"नही नही, वावूजी! सामान सव अभी आप यही रहने दीजिये। वहूरानी को ही सिर्फ हमारे साथ भेज दीजिये जरा जल्दी कीजिये।'

रामनारायण चुपचाप अन्दर गये। गुणवती को सव मालूम हो गया था और वह रो रही थी। उमा की आँखो मे एक भी आँसू न था, वह शून्य मे टकटकी लगाए न जाने क्या सोच रही थी।

अतत कडा हृदय करके माता-पिता ने कन्या का हाथ थामा और उसे वाहर लाकर मोटर मे वैठा दिया। पूरा घर स्त्री-पुरुषो से भरा था पर लगता था कि जैसे सबके सिर पर गाज गिर गई हो। रामनारायण सोचने लगे कि क्या किसी कारण से वे लोग नाराज हो गये है।

१०

माँग सूनी हो गई

ज्यो ही मोटर की घर्र-घर्र उमा के कानो मे पडी, उसकी चेतना लौट आई और उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। हरिया पीछे ही बैठा था, उससे पूछा—

"तेरे छोटे बाबू क्यो नही आए हरिया ?"

"कही गमी हो गयी है इसलिये।" सिखाए हुए हरिया ने उत्तर दे दिया।

कही गमी हो गई है, क्या मतलब ? उमा सोचती रही। क्या भाभीजी की दादी गुजर गई, जिनके लिये एक दिन मैने उन्हे सताया था। मेरे झूठ बोलने का ईश्वर ने कैसा फल दिया है कि महीनो से हँसी, खुशी के साथ की गई सारी तैयारियाँ आज व्यर्थ हो गई। मेरे सारे गहने कपडे जिन्हे मैं बडे चाव से उन्हे दिखाना चाहती थी वही रह गए। अब वह सब सामान कब आएगा ? पर खैर, न सही सामान, मैं तो आज जा रही हूँ। कब वह क्षण आएगा जबकि उन्हे देख सकूँगी। उनके चरणों पर गिर सकूँगी। पर ओह ! मेरा हृदय बैठा-सा क्यो जा रहा है ? शायद स्वामी से मिलने की खुशी मे। कैसा लगेगा, जब मैं उनके पास होऊँगी ? खूब नाराज होकर कहूँगी—"मुझे क्यो डरा दिया था इतना कि मेके मे एक दिन भी निश्चिन्त

होकर नही रह सकी। मुझे नही भेजने के लिये वहाना वनाया था क्या ?"
ओ हो, आज मेरी मेहदी भी कितनी अच्छी रची है ? सामान रह गया तो क्या हुआ, यह तो मेरे साथ ही है। मेहदी मे रचे हाथो को देखकर उन्हे कितनी खुशी होती है ! कई वार तो मेरी हथेलियाँ चूमकर इन्हे अपने गालो से चिपकाए ही बैठे रह जाते है। आज क्या करेगे ? अव तो रात भी हो गई, घर पहुँचते-पहुँचते वारह वजेगे। पता नही कमरे मे कितनी देर वाद आयेगे। घर मे गमी का वातावरण है न ! अच्छा हुआ छटपटाते रहेगे, मुझे भी तो कितना तरसाया है ? तीन महीने होने आए, एक वार भी देख नही सकी।"

उमा की विचारधारा चलती ही रहती पर सामने की ओर तेज प्रकाश देखकर उसकी आँखे उधर उठ गई। देखा कोई चिता जल रही थी। और वह सोचने लगी कौन होगा वह, जिसकी दुनिया मिट गई ? होगा कोई, ससार मे तो ऐसा होता ही रहता है। मेरी तो आज दुनिया वस जायगी। अरे, गाँव आ गया। घर भी आने वाला है। उमा शीघ्रतापूर्वक अपने कपडे-लत्ते सभाल कर वैठ गई।

कुछ मिनटो मे ही मोटर झटका खाकर रुक गई। मुनीमजी चुपचाप उतरे और उतरकर एक ओर चल दिये। हरिया ने उससे उतरने के लिये कहा। वह सोचने लगी कि हरिया इतना गम्भीर और अक्लमद कव से हो गया।

मोटर से उतरते ही उसने देखा—घर मे कोहराम मचा हुआ था। उसकी सास-जिठानी सभी पागलो की तरह चीख-चीखकर रो रही थी। वह धीरे-धीरे एक कोने की तरफ वढी। अधेरा था, वही धम से वैठ गई। लगता था मानो किसी को उसका आना मालूम नही था। किसी को भी रोने से फुरसत नही थी, होश ही न था। उसने चारो ओर आँखे फैलाई कि शायद स्वामी इधर से उधर आते जाते दिख जाएँ पर व्यर्थ हुआ। रात के वारह वज गए थे उसे समझ मे नही आया कि वह क्या करे। उसकी जिठानी उसे पकडकर जोर से रो पडी और दो मिनट वाद वेहोश हो गई। उमा ने वडी कठिनाई से उनके हाथो से अपने आप को छुडाया और डर के मारे गिरते-पडते अपने कमरे की ओर भागी। वहाँ देखा तो कमरा अस्त व्यस्त और खुला पडा था। जाकर वह अपनी चिर परिचित चटाई पर गिरकर रोने लगी। सवके रोने-धोने से और पति को न देख पाने के कारण उसका

हृदय अत्यन्त व्याकुल हो रहा था। कुछ देर बाद उसका रोना थमा तो वह चुपचाप आँखे खोलकर पडी रही। जरा सी आहट होते ही उसे लगता 'वे' आ गये पर निराशा ही हाथ आती। ज्यो-ज्यो देर होती वह समझती कि बस, अब घर मे शान्ति होते ही आ रहे होगे।

आखिर वह उठकर बैठ गई और प्रतीक्षा करने लगी। तनिक सी आहट होते ही चौकन्नी होकर देखा तो मालूम हुआ कि हरिया उधर से जा रहा है। उसका मन कुछ-कुछ नाराज हो रहा था, सोचने लगी—दादीजी मर गई तो क्या हुआ, क्या इस तरह मातम मनाया जाता है? ऐसा तो मैंने कही भी नही देखा। और क्या ऐसा होता है तो कोई अपनी पीहर से आई हुई पत्नी के पास भी नही जाता? क्या करे वह और किससे कहे, वहू ठहरी और सबसे छोटी। किससे बुलवाये और बुलवाने पर कोई क्या सोचेगा कि······ · । हरिया भी तो नही रुका, न जाने क्षण भर मे कहाँ चला गया। उमा का सारा शरीर मन, प्राण सभी स्वामी की बाहो मे समा जाने के लिये व्याकुल हो उठे।

दो बज रहे थे। वह उठ खडी हुई और दरवाजे से लगी पति की प्रतीक्षा करने लगी। अब तो वे अवश्य आयेगे। न जाने कितनी बार वे चोर की तरह आया करते थे सबको सोता हुआ जानकर। और आज तो विशेष रूप से घर मे दु.ख का वातावरण है इसलिये जल्दी आने मे शर्म आई होगी। अधकार मे आँखे फाडे हुए वह थक गई। उसके अग प्रत्यग दुखने लगे और अवश सी होकर वह किवाड पकडे-पकडे ही वही बैठ गई। आँखो से गगा जमुना बह रही थी।

अचानक ही उसकी विचारधारा दूसरी ओर मुड़ी—क्या वे मुझसे नाराज हो गये है? पर मैंने क्या कुसूर किया है, तीन महीने तक माता-पिता ने नही भेजा तो मैं क्या करती? पर तीन महीने तो बहुत हैं। वे कहते थे—उमा, मैं तुम्हारे बिना एक दिन भी नही रह सकता। हाय रे, मैं भी कैसी हूँ? अगर जिद कर लेती कि मैं जाऊँगी ही तो बाबूजी क्या करते! भेजते नही क्या? पर मेरी ही तो जबान नही खुली। मेरे चले जाने पर जिन्होने दही, दूध, मीठा सब त्याग दिया उन देवता के लिये मैंने क्या किया? इतना भी तो नही कह सकी कि मैं जाऊँगी। इसमे शरम की क्या बात थी? मैंने इतना बडा गुनाह किया है जिसकी कोई भी सजा काफी नहीं। पर स्वामी! तुम एक बार आ जाओ। मै तुम्हारे चरणो की सौगध खाकर कहती हूँ कि

अब जीवन भर एक दिन के लिये भी तुम्हे छोडकर नही जाऊँगी । मुझे क्षमा कर दो सिर्फ एक बार । ज्यादा देर के लिये नही, कुछ क्षणो के लिये ही सही पर एक बार आ जाओ ! मै कम से कम क्षमा माँग लूँ, चरण छू लूँ फिर चले जाना । अपना काम करना, मैं नही रोकूँगी । अचानक ही उमा चौंकी बाहर कुछ आहट हुई थी वह साम रोककर खडी हो गई । किन्तु पति के स्थान पर जो व्यक्ति भीतर आया वह थी उसकी चौदह वर्षीया ननद ।

खूब रोई थी शायद वह भी । गला भर्राया हुआ था, बोली—

"भाभी ……।"

उमा विक्षिप्त की तरह उसका हाथ पकडकर बोली—

"रानी एक काम करोगी ……?"

"कहो, क्या बात है ?" वह टूटते हुए स्वर मे बोली ।

"किसी से कहोगी तो नही ?"

"नही कहूँगी, कहो ।"

"तो जाकर एक बार अपने भैया को बुला लाओ न ! सिर्फ पाँच मिनट के लिये । देखो पहले तो वे न जाने कितने बहाने बनाकर चक्कर लगाया करते थे । पर अब मैं तीन महीने बाद आई हूँ तब भी सारी रात हो गई, आए नही । कहना—पाँच मिनट को दर्शन दे जायें ……।"

"हाय भाभी………।" रानी धाड मारकर रो पडी—अब कहाँ से बुला लाऊँ भैया को ? तुम्हे पता नही—तुम्हारे यहाँ आने की सारी तैयारियाँ करके और तुम्हारे हीरे के कंगन अपने सिरहाने रखकर जो सोए तो मेरे भैया फिर उठे ही नही । भगवान जाने उन्हे क्या हो गया था । आज ही शाम को तो मेरे भैया को लोग ले गये । हाय भाभी ! रास्ते मे क्या उनकी चिता भी तुमने नही देखी ? वही तो मेरे भैया के आखिरी दर्शन थे, हाय भैया ! भैया !" रानी फूट-फूटकर रोती रही ।

वह देख नही पाई कि कब प्रियतम से मिलने का अरमान लिये ही उमा बेहोश होकर लुढक पडी है । सिर फट जाने के कारण खून की धारा बह निकली है और उसकी माँग के सिन्दूर के साथ मिलकर उसका रक्त कुछ और अधिक गाढ़ा दीखने लगा है ।

११

भविष्य के गर्भ में

"मत्थएण वंदामि।"

ये शब्द कानों में पड़ते ही उमा चौंक पडी और उठकर बाहर की ओर भागी। स्वामी के निधन को आज तेरह दिन व्यतीत हो चुके थे किन्तु उसे किसी बात की सुध नहीं थी। घंटों बेसुध पड़ी रहती और होश आने पर पागलों की तरह इधर-उधर दृष्टि दौड़ाती। उसे यह भी ध्यान नहीं रहता कि वह कहाँ है? कैसी है? कुछ खाया है या नहीं? सोई है या नहीं? अथवा कौन उसके पास आया और कौन गया?

किन्तु आज 'मत्थएण वंदामि' ये दो शब्द कानों में पड़ते ही मानो उसकी चेतना जाग उठी। उसे पता चला कि घर पर किन्हीं सन्त अथवा साध्वीजी का आगमन हुआ है। बाहर आकर उसने मानो एक अलौकिक दृश्य देखा—दो जैन साध्वियाँ अपनी अवर्णनीय कांति लिये खड़ी हैं और परिवार के व्यक्ति उन्हें अत्यन्त श्रद्धापूर्वक बार-बार वन्दना कर रहे हैं। यंत्रचालित की भाँति उमा ने भी उन्हें वंदन किया।

गौर वर्ण और श्वेत परिधान से विभूषित उन सौम्य मूर्तियों को देखकर उमा का बिलखता हुआ हृदय शान्ति का अनुभव करने लगा। उसके हृदय में व्यथा का जो सागर उमड़ रहा था उसकी लहरें भी जैसे तूफान के पश्चात्

धीरे-धीरे वेग-रहित होने लगी। वह चित्रलिखित की भाँति खडी रह गई और अनिमेष दृष्टि से उनकी भव्यता को नेत्रो मे अंकित करने लगी। उसे लगा कि स्नेह और सरलता मानो स्वय ही मूर्तिमान रूप धारण कर उसके सन्मुख आ उपस्थित हुए है।

आर्याओ की दृष्टि भी उमा की ओर गई। विषाद से व्यथित एक अत्यन्त सुन्दर, भोला मुख उन्हे अपलक देख रहा था। मुरझाए हुए गुलाब के सदृश वह चेहरा और उनकी ओर उठी हुई कच्चे दूध सी दो निर्दोष आँखे उनके सयम-साध्य निर्विकार हृदय को वेध चली। संगमर्मर की तराशी हुई प्रतिमा के समान अतुल सौन्दर्यमयी एक वाला उनके समक्ष मूक खडी थी। समस्त देह निराभरण थी, किन्तु उसके सुडौल हाथ और पैरो मे लिखी हुई मेहदी अभी वैसी ही लाल थी। ऐसा लगता था कि उसके समस्त अरमान, और सारी आकाक्षाये उसे त्याग कर चुके थे किन्तु अकेली मेहदी उस विषाद-मूर्ति से लिपटी हुई थी और उसे उस सकट के समय मे किसी भी प्रकार छोड़ना नही चाहती थी।

यह देखकर किसका ऐसा वज्र का हृदय होता जो द्रवित न होता? दोनो आर्याओ के हृदय विगलित हो गये और नेत्र भर आये। एक कठिनाई से वडी साध्वी ने अपना हाथ उठाया और आशीर्वाद दिया —

"वाले! शान्ति प्राप्त करो! और ऐसा कुछ करो कि जिससे फिर कभी ऐसे दुःख न उठाने पडे। तुम्हारी निर्मल आत्मा का प्रतिविम्व मुझे तुम्हारे चहरे पर दिखाई दे रहा है, और प्रतिभासित हो रहा है कि निश्चय ही ऐसा होगा। तुम अपने जीवन को ऊँचाई की ओर ले जाओगी और कालान्तर मे शाश्वत सुख की अधिकारिणी वनोगी।"

यह सुनकर सभी स्तभित हो गए। आर्या गिरजाकुमारी की दृष्टि असीम व्योम की ओर थी और मानो वे इस भौतिक ससार से परे होकर, इसको भूलकर स्थिर चित्त से उन्मुक्त गगन मे अंकित किसी अदृष्ट लिपि को पढ रही थी। एकाएक उमा विच्छिन्न लता की तरह उनके चरणो पर गिर पडी और उन्हे ससार की सुधि आई, ध्यान भग हो गया।

गद्गद होकर गिरिजाकुमारी ने उमा के मस्तक पर अपना वरद हस्त फेरा और चिवुक को उठाते हुए उसके परम कातिमय चेहरे पर से वहते हुए, अश्रु विन्दुओ को पोछा। वड़ी सावधानीपूर्वक होने से उसे

उठाकर खड़ा किया कि जैसे वह संगमर्मरी प्रतिमा मैली न हो जाये या टूट न जाय।

कुछ क्षणो के पश्चात् मगल-मत्र सुनाकर दोनो आर्याएं मथर गति से अपने निवास स्थान की ओर चल दी। उमा मत्रमुग्ध सी उन्हे निहारती रही, जब तक वे उसकी आखो से ओझल नही हो गई।

आर्या गिरिजाकुमारी के कहे हुए शब्द उसे भविष्यवाणी के समान प्रतीत हो रहे थे किन्तु चौदह वर्ष की उमा समझ नही पा रही थी कि वह भविष्यवाणी सत्य कैसे होगी? बडी माँ और बडे पिता के असीम लाड़-प्यार मे पली हुई और प्रतिक्षण हँसमुख बनी रहने वाली हास्य-विनोद की मूर्ति वह मासूम बालिका आज तेरह दिन से शोक-सागर मे डूबी हुई थी। इन तेरह दिनो मे अनेक बार उसका हृदय अपने जीवन के अन्त की कामना कर चुका था। देव-स्वरूप इच्छित पति पाकर भी वह उन्हे रख नही सकी थी और उनका असमय मे ही वियोग उसके अरमानो पर तुषार बनकर आ गिरा था। इस वज्रपात ने उसके हृदय को इन कुछ ही दिनो मे मानो जर्जर बना दिया।

किन्तु वह सोच रही थी कि आज उसके हृदय मे यह मथन कैसा हो रहा है? महान् साध्वी गिरिजा कुमारी ने आज उसके भविष्य का कौनसा दृश्य उसे दिखाया है? कैसी ऊँचाई है वह? और कौन सा वह पथ है, जिसका उन्होने निर्देश किया है? क्या सचमुच ही मैं उस ऊँचाई की ओर बढ सकूँगी? सचमुच ही क्या मैं उसे पा सकूँगी? अपना जीवन उन्नत बना सकूँगी? क्या मेरी आत्मा सदा के लिये भवबधनो से मुक्त हो सकेगी? पर कैसे होगा यह सब? मुझे तो कुछ भी ज्ञान नही है। वह कल्याणकारी मार्ग मुझे सुझाएगा कौन? कौन मुझे सहारा देगा?

इसी प्रकार के अनेको प्रश्नो का तूफान उमा के मस्तिष्क मे उठ रहा था। किन्तु एक का भी समाधान कर सकने मे वह असमर्थ थी। और परिणामस्वरूप पतवार रहित नौका के समान वह शोक-सागर मे डूब और उतरा रही थी। उसका हृदय किनारा पाने के लिये छटपटा रहा था।

अचानक ही उसकी ननद रानी ने आकर पुकारा—

"भाभी!"

उमा की तन्मयता भग हो गई। पलकें उठाकर देखा—उसकी ननद, और उससे भी बढकर सुख और दुख मे छाया की तरह साथ देने वाली

सखी रानी उदास और सूखा-सा मुँह लिये हुए उसके पास खडी है। रोते-रोते उसकी आँखे सूजकर लाल हो गई है तथा उनके चारो ओर कालिमा छाई हुई है। भाई का वियोग उस बालिका से भी सहन नही हो रहा है।

उमा ने स्नेह से विगलित होकर दोनो हाथ बढाये और उसे खीचकर अपने हृदय से लगा लिया। प्यार मे उसके चेहरे को थपथपाते हुए कहा—

"क्या बात है रानी! रो क्यो रही हो?"

स्नेह और सान्त्वना भरे शब्दो ने रानी के अश्रुओ का बांध तोड दिया और दोनो ही समवयस्काएँ उस नीरव स्थान मे साथ-साथ आँसू बहाने लगी।

१२

नव निर्माण की ओर

काल-चक्र अनवरत घूमता रहा। वात की वात मे छ मास व्यतीत हो गये। उमा का शोक प्रगाढ और गम्भीर हो गया तथा अविराम गति से वहने वाले अश्रु मानो शैशवावस्था त्याग कर लोकमर्यादा को जानने लगे। अव ये प्रत्येक समय और प्रत्येक के समक्ष वहने मे सकोच का अनुभव करते हुए एकान्त मे ही हृदय के भार को हल्का करते थे।

छ महीनो मे उमा का जीवन एकदम वदल गया था। यन्त्र चालित की भाँति वह अनिवार्य कार्य करती हुई भी वहुधा एकाकी रहा करती थी। आवश्यकता के अलावा अकारण उसे वोलते हुए, किसी ने नही देखा। किसी के पास वैठे हुए नही देखा, हँसते हुए रोते हुए भी नही देखा। धरती माता की गोद मे एक चटाई पर शयन करना और सुवह शाम दो-दो पतले फुलके खाना ही उसका नियम वन गया।

पूर्व जीवन की सभी मधुर स्मृतियाँ उसने हृदय के किसी कोने मे सजोली थी। कोई देख न ले, और जान न ले इस भय से एकान्त मे और असमय मे कभी-कभी उन्हे उलटती-पलटती रहती थी। और उसके वाद निरानन्द, उत्साह रहित तथा विषादमय चाव से अत्यन्त सावधानीपूर्वक उन्हे स्वच्छ

करके पुन रख देती। दीर्घ-निश्वास लेती हुई हृदय के उस कक्ष से बाहर आ जाती ।

आवश्यक कार्यो से बचे हुए समय मे वह कोई पुस्तक उठाकर, उसके पन्ने उलटती अथवा आर्या गिरिजाकुमारी की कही हुई बातो पर चिन्तन किया करती। उनके शब्द उसके मस्तिष्क मे मानो अकित हो गये थे और वह नित्य, नवीन तरीको से उन्हे समझने का प्रयत्न करती और विचार करती कि किस प्रकार आर्याजी की भविष्यवाणी चरितार्थ हो। किन्तु लाख प्रयत्न करने पर भी उसे अपनी समस्या का कोई हल न मिला, कोई मार्ग नही सूझा। असफलता के कारण उसका हृदय अधिकाधिक व्याकुल होता गया और वह उलझनो के अथाह सागर मे गोते लगाने लगी। एक दिन की ऐसी अवस्था मे उसने एक पुस्तक उठाई और खोली। पुस्तक के बीच के किसी पेज पर उसकी निगाह पडी। लिखा था .—

"मानव जीवन मे गुरु का स्थान सर्वोपरि है। अपने चर्मचक्षुओ के द्वारा हम इस स्थूल जगत को तो देख सकते है, किन्तु जिन ज्ञान-नेत्रो के द्वारा अपने भीतर स्थित चिदानन्द का अवलोकन कर सकते है उन्हे खोलने वाले गुरु ही होते है।"

रोग से पीडत व्यक्ति डॉक्टर के पास जाता है और डॉक्टर उसके रोग का निदान करके उसे रोग-मुक्त करता है। उसी प्रकार गुरु हमारी आत्मा मे विपय विकारो के जो रोग होते है उन्हे अपने सदुपदेशरूपी औपध के द्वारा नष्ट करते है। गुरु ही समीचीन ज्ञान प्रदान कर आध्यात्मिक, आधिदैविक तथा आधिभौतिक तीनो प्रकार के कष्टो का नाश करके मनुष्य को पारमार्थिक विभूतियो का अधीश्वर बनाते है। गुरु के अभाव मे कुशाग्रबुद्धि मनुष्य भी साधनापथ मे निराबाध अग्रसर नही हो सकता। यह अकाट्य सत्य है .—

विना गुरुभ्यो गुणनीरधिभ्यो,
जानाति तत्व न विचक्षणोपि।
आकर्णदीर्घामितलोचनोऽपि,
दीप विना पश्यति नाधकारे।

गुणसागर गुरु के विना विचक्षण बुद्धि वाला मनुष्य भी तत्व को नही समझ सकता। कोई व्यक्ति कितने भी विशाल नेत्रो वाला क्यो न हो, विना दीपक की सहायता लिये अधकार मे नही देख सकता।

उमा एक सास मे ही यह सव पढ गई। पढते ही जिस प्रकार अधकार मे विद्युत् कोध जाती है, ठीक उसी प्रकार उसके हृदय मे भी प्रसन्नता की लहर आई और उसे मार्गदर्शन करा गई। वरिष्ठ साध्वो गिरिजा की भव्य आकृति उसके नेत्रो के समक्ष पुन पुन. आने लगी और वह समझ गई कि उसे सन्मार्ग कौन वताएगा ? कौन उसे ऊँचाई की ओर अग्रसर करेगा ?

शान्ति और सन्तोप से उसके हृदय की उलझनो और चिन्ताओ का तूफान वैठने लगा। अदम्य उत्साह से उसके नेत्र चमक उठे और सुन्दर तथा उन्नत भविप्य के स्वप्न उसकी आँखो मे तैर चले। वह कल्पना करने लगी उस दिन की, जिस दिन वह सासारिक प्रपचो को छोडकर भगवती गिरिजा कुमारी द्वारा निर्दिप्ट मार्ग पर चलेगी। दु ख, विपाद और अशान्ति से परे होकर शाश्वत सुख की प्राप्ति का प्रयत्न करेगी और अपने जीवन को नया मोड देगी। एक अवर्णनीय काति उसके सुन्दर चेहरे पर फैल गई और वह पुन विचार सागर मे गोते लगाने लगी।

किन्तु अचानक ही उसकी विचारधारा भग हो गई। उसके कानो मे सुपरिचित और स्नेह से सने हुए दो अक्षरो ने प्रवेश किया—

"वेटी !"

उमा चौंक पडी। देखा—सामने उसके पिता जगतनारायणजी खडे है और उसे पुकार रहे है।

उमा उठी और हर्प-विपाद की अनुपम स्थिति मे ही उनके चरणो पर झुक गई।

"आप कव आये पिताजी ?" अस्फुट शव्द निकले।

"अभी आया ही हूँ वेटी !" जगतनारायण जी ने सस्नेह पुत्री के मस्तक पर हाथ रखते हुए उत्तर दिया। कुछ ही मास पूर्व की उल्लासमयी प्रतिमा को आज विपादमयी वनी देख उनका अन्तःकरण फूट-फूटकर रो उठा, किन्तु हृदय को कडा करके वे वोले—

"तुम्हे ले चलने के लिये आया हूँ वेटी !"

"कहाँ ?"

"कहाँ ? अपने घर ! जहाँ तुम्हारे वडे पिताजी अपनी सूनी और व्यथित निगाहो से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है। जहाँ तुम पर सगी माँ से भी अधिक स्नेह रखने वाली तुम्हारी वडी माँ, तुम्हे हृदय से लगा लेने के

लिये आतुर है, जहाँ तुम्हारा शैशव-काल हँसी-खुशी और शैतानियाँ करते हुए बीता है ! वहाँ का प्रत्येक स्थान और प्रत्येक वस्तु तुम्हे बुला रही है उमा ।"

"लेकिन अब वह उमा कहाँ है पिताजी ? बडी अम्मा और दादा ने अत्यन्त जतन से जिस उमा को पाला था वह तो मर चुकी है । असीम स्नेह-जल से जिस लता को उन्होने सींचा था वह मुरझा गई है । हरिणी की तरह चौकडियाँ भरने वाली, और निर्झर के सदृश सतत हास्यधारा बहाने वाली उमा के पैरो मे न तो अब कुलाँचे भरने की शक्ति है और न ही हृदय मे हँसने की तमन्ना । ऐसी उमा को ले जाकर क्या करेंगे आप ?"

"ऐसा मत कहो बेटी, ऐसा मत कहो !" कहते हुए पचास वर्ष के, किन्तु गौरवोन्नत, बलिष्ठ और दबग जगतनारायण असहाय बालक की तरह रो पडे । उमा के मस्तक को उन्होने अपने हृदय से लगा लिया और उसकी अत्यन्त सुदीर्घ किन्तु सूखी केशराशि को अश्रुजल से प्लावित करने लगे । उन्हे बार-बार याद आने लगा—

उमा जब नन्ही-सी बच्ची थी, एकदिन कहने लगी—"बाबूजी ! मेरे इत्ते बडे-बडे बाल है । इनको कटवा कर आधे करा दो मेरी सहेलियो के जित्ते ।"

उन्होने पूछा था—"क्यो ?"

सब मुझे चिडाती है । कहती है—"आठ अगुल की चुहिया, सोलह अगुल की पूँछ । कटा दो न बाबूजी !!" वह मचलते हुए कह रही थी ।

वे तो उमा की बात पर मुस्करा दिये थे पर उनके बडे भाई राम-नारायण जी ने उसे अपनी गोद मे बैठाकर प्यार से कहा था—

"वाह ! बेटी, तू तो देवी के समान सुन्दर है, इसलिये, तेरे बाल भी सुन्दर है । वे सब तो भूतनियाँ है, भूतनियो के भी कही सुन्दर और लम्बे बाल होते है ?"

सुनते ही उमा ताली पीट-पीट कर हँसती हुई कहने लगी थी—

"आहा · · ! अब मै भी उनसे कहूँगी कि भूतनियो के बाल कहाँ से आएँगे ?" और उछलती-कूदती भाग गई थी ।

इन बातो के स्मरण से जगतनारायण और भी व्यथित हो उठे । पुत्री के घने, लम्बे और उलझे हुए बालो पर अत्यन्त ममता से उन्होने हाथ फेरा

और जी भरकर विधाता को कोसा कि क्या उसने उमा को यह अनुपम सौन्दर्य इसी प्रकार मिट्टी मे मिल जाने के लिये दिया था ? इतनी चचलता, प्रफुल्लता और बुद्धिमत्ता अश्रुओ के वेग मे बहाते रहने के लिये प्रदान की थी ?

शशक-शावक की भाँति उमा पिता के हृदय मे मुँह छिपाए हुए सिसक रही थी। बाल-शावक जिस प्रकार मा की गोद से हटते ही शिकारियो के पजे मे पड जाने के भय से व्याकुल होता है, उसी प्रकार पिता के हृदय मे मा की ममता का अनुभव करते हुए वह उस स्थान से हटते ही नाना प्रकार के दुखो के चंगुल मे फँस जाने की सभावना से भयभीत हो रही थी। सिर्फ वही स्थान उसे ससार के समस्त दुखो से निरापद, शाति और सतोष का अनुभव करा रहा था।

जगतनारायण के वक्ष मे मुँह छिपाए ही वह बोली—"बाबूजी, मुझे यहाँ से ले चलिये।"

"बेटी, मैं तो तुम्हे लिवाने ही आया हूँ, तुम ही जो चलना नही चाहती।"

"पर मैं वहाँ चलना नही चाहती पिताजी ! मैं वहाँ जाकर कैसे अम्मा और दादा को मुँह दिखाऊँगी ? किस प्रकार रानी माँ के चरण-स्पर्श करूँगी ? अपनी सखी-सहेलियो को मैं ससुराल की कौन-सी बातें हँस-हँसकर बताऊँगी ? मैं नही जाऊँगी पिताजी ! वहाँ नही जाऊँगी ।" उमा फूट-फूट कर रो पडी।

"तो तुम कहाँ चलना चाहती हो बेटी ?"

"मुझे आर्या गिरिजाकुमारी के पास ले चलिये, उनके पास ही मुझे शान्ति मिलेगी।"

"अच्छा तुम शान्त हो जाओ। मैं तुम्हारे ससुर प्रतापनारायण जी से पूछकर तुम्हे आर्या गिरिजाकुमारी के पास ले चलूँगा।" यह कहते हुए उन्होने पुन पुत्री के आँसू पोछे और उसे सुस्थिर होने का समय देकर धीरे-धीरे बाहर चले गए।

१३

अब नहीं लौटूँगी

दुःख और शोक किस प्रकार मनुष्य को निस्तेज, निरुत्साह और निष्क्रिय बना देते है यह बाबू प्रतापनारायण की अवस्था देखकर सहज ही जाना जा सकता था। चम्पक जैसे पुत्ररत्न का वियोग उनसे सहा नही जा सका। उनका सशक्त और सुदृढ शरीर समय से पहले ही वृद्धत्व को प्राप्त हो गया। असाधारण बुद्धिमत्ता और सहनशीलता विक्षिप्तता मे बदल गई और सदा हास-परिहास मे रत रहने वाली जिव्हा जैसे मूक हो गई। सच है कम शोक कथनीय, किन्तु महान शोक गूँगा होता है।

किन्तु किया क्या जा सकता है? शोकाकुल रहनेवाला मनुष्य लाख प्रयत्न करके भी अपना दुख मिटाने का सामर्थ्य प्राप्त नही कर पाता। कोई भी डॉक्टर, वैद्य या अन्य चिकित्सक इस दुख को दूर करने की औषध का निर्माण नही कर पाया। केवल काल ही एक ऐसा धन्वन्तरि है, जो शनै-शनै शोक के गहरे घाव पर मरहम का काम करता हुआ उसे भरता है।

छ मास बीत गए। समय ने प्रतापनारायण के पुत्र-वियोग के दुख का घाव भरने का प्रयत्न किया था, किन्तु घाव कुछ ठीक होने के बाद भी नासूर बनकर रह गया था। अब वे अपने पुत्र को अपनी अल्पवय और असाधारण

बुद्धिमती पुत्रवधू मे ही देखने का प्रयत्न करते थे। उसकी उदास और मन्त्रवत् डोलती काया को देखकर उनका हृदय करुणा और स्नेह से भर जाता था।

पुत्र के पूर्व-सम्बन्ध को तोडकर बडी कठिनाइयो और परेशानियो को सहन करके भी बडी साध से वह असाधारण लावण्यवती उमा को बहू बनाकर लाए थे। उसका सदा मुस्कराता हुआ प्रफुल्ल मुखडा अब भी उनके नेत्रो के समक्ष नाचता रहता था। और उसका वीणा विनन्दित स्वर आज भी उनके कर्ण कुहरो मे समाया हुआ था। गाँव भर मे उनकी बहू उमा के समान गा सकने वाली नारी नही थी। भतीजी रमा की शादी पर जब एक दिन गीतो के मिले-जुले स्वरो मे उन्होने एक अत्यन्त सुमधुर और निराला स्वर सुना तो आश्चर्यपूर्वक अपनी कन्या से पूछ लिया—

"रानी! इतने सुन्दर गीत कौन गा रही है आज ?"

"छोटी भाभी,"

"छोटी भाभी कौन, उमा ?"

"हाँ बाबूजी, भाभी बहुत अच्छा गाती है। और घूमर का नाच तो उनके जैसा कोई भी नही कर सकता।"

"अरे वह छोटी सी गुडिया, इतनी होशियार है क्या ?" कहते हुए उनके नेत्रो मे गर्व के कारण आनन्दाश्रु छलक पडे थे। रूपवती और उसी प्रकार गुणवती बहू को पाकर वे अपना भाग्य सराहने लगे थे। सोचते थे कि पुत्र और पुत्र वधू की इस असाधारण जोडी को किसी की नजर न लग जाय।

हुआ भी वही, मनुष्य की नजर लगने पर तो झाड-फूँक की जा सकती थी किन्तु जब विधाता की ही नजर लग गई तो क्या किया जा सकता था ? बनाने वाला ही जब मिटाने पर उतारू हो जाए तो फिर किसका वश चलता है ?

ऐसा लगता है कि सृष्टिकर्ता उत्तमोत्तम प्राणियो का निर्माण करके भी उन्हे किसी न किसी तरह के अभाव और दुख के साथ इस मृत्यु लोक मे भेजता है। जब उसने देखा कि उसकी दो उत्कृष्ट कृतियाँ एकत्र होकर किसी भी प्रकार के दुख-कष्ट का अनुभव न करती हुई सम्पूर्ण सुख भोगना प्रारम्भ कर रही है, तो उसे यह सह्य नही हो सका। उसने अविलम्ब एक को मिटा दिया।

विधना की इस क्रूर लीला का बेचारे प्रतापनारायण कैसे विरोध करते ? मस्तक पर हाथ धरकर चुपचाप बैठ गए, और अदृष्ट-निर्मित उस एक प्रतिमा की ही सावधानीपूर्वक रक्षा करने लगे। आज जब बाबू जगत नारायण उमा को लिवा जाने के लिये उनकी आज्ञा प्राप्त करने आए तो वे धीरे-धीरे उमा के कमरे की ओर चले और बाहर से ही पुकारा—

"बहूरानी, अन्दर हो क्या....?"

उमा हड़बड़ा कर उठी और मुँह पर अवगुंठन डाल कर खडी हो गई। श्वसुर पर उसकी असीम श्रद्धा थी किन्तु लाज के कारण अभी तक वह उनसे बोलती नही थी। चुपचाप खडी रही। प्रतापनारायण जी की दृष्टि ने क्षण मात्र के लिये अत्यन्त स्नेहपूर्वक पुत्र-वधू को देखा और कहा—

"तुम्हारे पिताजी तुम्हे ले जाने के लिये आए हैं, जाना चाहती हो बेटी ?"

उमा क्या कहती ? मूक ही बनी रही। पिता के साथ जाने मे किसे आपत्ति हो सकती है, यह सोचकर प्रतापनारायण जी ही पुन. बोले—

"अच्छी बात है जाओ ! किन्तु वापिस शीघ्र लौटना। तुम तो जानती ही हो बेटी, कि बडे बेटे-बहू यहाँ रहते नही, अत तुम्ही मेरी धुँधली आँखो की रोशनी हो। तुम्हारे सहारे ही मे जीता हूँ। तुम्ही मेरे लिये पुत्र और पुत्र वधू दोनो हो। रानी तो ससुराल चली जाएगी, वह कितने दिन यहाँ रहेगी। आर्या गिरिजा कुमारी के दर्शन करके शीघ्र ही पीहर चली जाना ! मैं जल्दी ही वहाँ से तुम्हे लिवा लाउँगा।"

इतना कहकर प्रतापनारायण लौट गए और जाकर जगतनारायण जी से बोले—

समधी जी ! आप बहू को ले जाइये, किन्तु जल्दी भेज दीजियेगा। मै स्वय ही लेने आऊँगा। पुत्र तो चला ही गया सदा के लिये, और बहू भी कही चली जाती है तो यह घर अमावस्या की रात जैसा लगने लगता है।

जगतनारायण जी ने उनके गहरे स्नेह को परखा और उनकी बात स्वीकार करते हुए, उमा को तैयार होने के लिये कहने, भीतर की ओर चल दिये।

जाते समय रानी उमा से लिपट गई—

"जल्दी आना भाभी !"

"क्यों ?"

"क्यों क्या, मेरा मन कैसे लगेगा यहाँ ?"

"और जब ससुराल जाओगी ?" उमा तनिक मुस्कराई।

"धत् यह भी कोई मजाक करने का समय है। तुम जल्दी आना, कब आओगी भाभी ?"

'यह मैं क्या जानूँ, कौन जाने आऊँ ही नहीं।"

"हाय राम ! जाते समय भी कोई ऐसी बात कहता है ?" कहते हुए रानी ने भाभी के मुँह पर अपनी हथेली रख दी।

"घबराओ मत रानी ! मुझे कुछ नहीं होगा।" कहते हुए उमा ने उसकी हथेली को प्यार से थपथपाया और बाहर आई। ससुर के चरण-स्पर्श किये और रवाना हो गई।

१४

हृदय-पटल पर नये अंक

उस वर्ष भगवती गिरिजा कुमारी का चातुर्मास मारवाड प्रान्त के अशोका नामक गाँव मे था। जगतनारायण जी पुत्री सहित प्रात.काल नौ बजे के लगभग 'अशोका' पहुँचे। उपाश्रय मे प्रवचन चल रहा था। पिता-पुत्री उपयुक्त स्थानो पर जाकर प्रवचन सुनने बैठ गए।

पडाल श्रोताओ से खचाखच भरा हुआ था। परम विदुषी साध्वी गिरजाकुमारी अपनी गौर-वर्ण भव्य आकृति लिये हुए सामने विशाल पट पर विराजमान थी। उन्हे देखते ही उमा के हृदय मे अवर्णनीय आनन्द और सन्तोष हिलोरे लेने लगा। वह मन्त्र-मुग्ध की भाँति प्रवचन के एक-एक शब्द को हृदयगम करने लगी। आर्या बोल रही थी:—

"आत्म शक्ति पर विश्वास की कमी ही हमारे जीवन मे अनेकानेक कठिनाइयो और असफलताओ का कारण बनती है। आत्मा मे अनन्त शक्ति है। मन और इन्द्रियाँ सब उसके अनुचर है। आत्मा की शक्ति के बिना उनमे हिलने डुलने का भी सामर्थ्य नही है। शरीर तो इस भव-सागर से पार उतरने के लिये सिर्फ एक नौका के समान है जो आत्मा द्वारा सचालित होता है। इतना अवश्य है कि मानव शरीर रूपी नई नौका इतनी सुदृढ होती है कि जिससे हम इस असीम भव-समुद्र को पार कर सकते है। अब

तक हमारी आत्मा ने अनेक योनियो और पर्यायो मे भ्रमण किया है किन्तु इस मानव शरीर के जैसा अन्य कोई शरीर नही मिला, जिसके द्वारा हम आत्मा तथा परमात्मा को जान सकते, साधना कर सकते और आत्म-गुणो का विकास कर सकते। इस दुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर इसे निरर्थक खो देना जीवन की सबसे बडी भूल है। इसलिये भगवान महावीर ने अपने प्रिय शिष्य 'गौतम' से कहा था—

"समय गोयम मा पमायए !"

भगवान का यह कथन सिर्फ 'गौतम' के लिये ही नही था। ससार के समस्त प्राणियो को इससे सचेत होना चाहिये। जो मनुष्य अपने जीवन-काल मे भोगो मे ग्रस्त रहते है और इसलोक के सम्बन्धियो मे ममता के कारण आसक्ति रखते है, क्षण भर के लिये भी परलोक पर ध्यान नही देते, वे अपने जन्म को वृथा गंवा देते है। उन्हे विचार करना चाहिये—

यस्यास्ति नैक्य वपुषोऽपि सार्द्धम्
तस्यास्ति कि पुत्र-कलत्र-मित्रै. ?
पृथक्क्कृते चर्मणि रोमकूपा
कुतो हि तिष्ठन्ति शरीरमध्ये।

जिसकी अपने शरीर के साथ भी एकरूपता नही है, उसकी पुत्र, पुत्री और मित्र जनो के साथ एकरूपता कैसे हो सकती है ? जब शरीर ही आत्मा से पृथक् है तो परिवार तो पृथक् होगा ही। शरीर पर मढी हुई चमडी को अलग कर दिया जाए तो रोमकूप क्या शरीर मे रह जाएंगे ? नही, इसी प्रकार जब शरीर ही अपना नहीं है तो शरीर से सम्बन्ध रखने वाले अन्य पदार्थ अपने कैसे हो सकते हैं ?"

उमा तन्मय होकर एक-एक शब्द सुन रही थी। उसे लग रहा था, मानो उसके हृदय मे जमी हुई उलझनो की प्रगाढ परतो मे से एक-एक परत उठती चली जा रही है। प्रवचन जारी था—

"आश्चर्य है कि मनुष्य पल-पल मे होने वाले परिवर्तन को देखता हुआ भी अज्ञान और मोह के कारण नेत्र होने पर भी अंधा, कान होते हुए भी बहरा और चेतना होते हुए भी जडवत् बना हुआ है। किन्तु इस स्थिति मे जीवन-यापन करने के पश्चात् क्या होगा ? यही कि उसे समय निकल जाने पर घोर पश्चात्ताप करना पडेगा।

ज्ञान-हीन प्राणी कहते है—"इस जीवन का अन्त हो भी गया तो क्या हानि है ? आत्मा अजर-अमर है, अविनाशी है। न सही इस जन्म मे, अगले जन्म मे आत्मा का कल्याण कर लेगे।" किन्तु वन्धुओ ! क्या आपको विश्वास है कि आगामी भव आपका मनुष्य भव ही होगा ? विशेष तौर से उनको, जो अपना जीवन भोग-विलास और धन-सचय मे ही व्यतीत करते है, पुन मनुष्य शरीर मिलना कठिन है।"

"इसलिये, जिसे यह जीवन सार्थक वनाना है उसे अपनी आत्मा को उन्नत वनाना आवश्यक है। जीवन की सार्थकता आत्म-कल्याण मे है। आत्म-कल्याण का अभिप्राय अपने विशुद्ध स्वरूप की प्राप्ति होना है। आत्मा ज्यो-ज्यो अपने स्वरूप को प्राप्त करता जाएगा, त्यो-त्यो इन्द्रियो के विषयो से उसका मन हटता जाएगा और सासारिक पदार्थों पर से उसकी आसक्ति कम होती जाएगी।"

"स्मरण रखो, कि ससार का कोई भी पदार्थ और कोई भी नातेदार प्राणी को मृत्यु से वचाने मे समर्थ नही है। जन्म और मरण से वचाने वाला अगर कोई है तो वह है 'धर्म'। धर्म का आश्रय लेकर ही मनुष्य शाश्वत सुख की प्राप्ति करके अक्षय सुख का भागी वन सकता है।"

प्रवचन समाप्त हुआ। हर्ष विभोर जनता जय-जयकार करती हुई लौट गई। उमा आनन्दातिरेक के कारण कुछ समय तक वही बैठी रही और उसके पश्चात् धीरे-धीरे आर्या गिरिजाकुमारी के समीप पहुँची। उन्हे वदन किया और हाथ जोडकर खडी हो गई।

आर्या ने अपना हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया। साथ ही उनके नेत्रो ने कुछ समय पूर्व देखी हुई उस सुन्दर प्रतिमा का स्मरण करते हुए अत्यन्त ममता और स्नेह से उसे आपाद-मस्तक निहारा। करुणा और स्नेह मिश्रित भावनाओ ने उनके हृदय को विभोर कर दिया। वोली—

"तुम आ गई ? मुझे यही आशा थी। आओ हमारे साथ चलो।" कहते हुए वे अपनी गुरु-भगिनी के साथ पाट से नीचे उतरी और अपने स्थान की ओर रवाना हुई। विमुग्ध उमा साथ-साथ चली।

भोजनादि से निवृत्त होकर दोपहर को उमा गिरिजाकुमारी के समीप जा बैठी। कुछ कहने को उत्सुक-सी उसकी आँखो को देखते हुए गिरिजाकुमारी ने पूछा—

"कुछ कहना चाहती हो वेटी ?"

उमा को मन-मागी मुराद मिली। यद्यपि उसने अपने हृदय की व्यथा प्राणपण से दबा रखी थी, किन्तु जिस प्रकार राख से दबी हुई आग अपने आस-पास की राख को गरम रखती है, उसी प्रकार उसके मन की व्यथा निरन्तर उसकी आत्मा को सतप्त कर रही थी। अपने अशात मन को शान्त करने का उपाय जानने के लिये ही वह यहाँ आई थी। पूछा—

"भगवती ! मुझे शान्ति कैसे प्राप्त हो सकती है ?"

"शान्ति किसी वाह्य-पदार्थ मे नही मिलती उमा ! सुख-दुख शान्ति और अशान्ति का उद्गम स्थान हृदय ही है।"

"वह कैसे ?"

"जिस प्रकार धोंकनी चलते रहने पर हारमोनियम के तीव्र अथवा मन्द, जिस स्वर पर अगुलि रखी जाए वही बोलता है, बाकी के स्वर मौन रहते है, इसी प्रकार शरीर मे प्राण-वायु विद्यमान रहने पर कुशल साधक इच्छित भावनाओं को जगाते हैं, बढाते है और मुखरित करते है। तथा अनिच्छित भावनाओं को हारमोनियम के अन्य स्वरो की तरह मूक रहने देते है। किन्तु वादक के कुशल होने पर भी सयोगवश अगर उसकी अगुलियाँ अनिच्छित स्वरो पर जा पडती है तो उनकी आवाज आते ही वह तुरन्त उन पर से अगुलियो को हटा लेता है। इसी प्रकार साधक की किसी भूल अथवा असावधानी से हृदय की विकृत भावनाएँ जाग उठती हैं तो वह अपनी साधना के अभ्यास के द्वारा उधर से मन को हटा लेता है।"

"साधना कैसे की जा सकती है ?" उमा ने जिज्ञासापूर्वक प्रश्न किया।

"उमा बेटी ! साध्य प्राप्ति के लिये किया जाने वाला प्रयत्न ही साधना है। किन्तु साधना आरम्भ करने से पूर्व साधक को अपने साध्य का स्वरूप भली-भाँति निश्चित कर लेना चाहिये। तत्पश्चात् उसके अनुरूप साधना करने के लिये साधनो की खोज करनी चाहिये।"

"कृपया मुझे सरल ढग से समझाइये भगवती, मनुष्य के लिये साध्य क्या होना चाहिये और उसकी प्राप्ति उसे किन साधनो से करनी चहिये ?"

"उमा, ससार के जो व्यक्ति आत्मा की अमरता और महानता पर विश्वास नही करते, पाप और पुण्य के परिणामो पर आस्था नही रखते, इस जन्म को ही सब कुछ मानते है, उनके लिये साध्य विभिन्न होते है। कोई जीवन की सफलता कीर्ति प्राप्त करने मे, कोई अटूट अर्थ-सचय कर

लेने मे और कोई शारीरिक भोगोपभोगो को भोग लेने मे ही अपना जीवन सफल मानते है ।"

"इसके विपरीत, जो भव्य प्राणी आत्मा की अनन्तशक्ति को समझ लेते है उसके अमरत्व पर दृढ विश्वास रखते है, उनके लिये नश्वर और सासारिक उपलब्धियो का कोई महत्व नही होता । वे इन्हे अपना साध्य नही मानते । उनका साध्य होता है जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त कर अव्याबाध और अनन्त सुख प्राप्त करना ।"

उमा के नेत्रो मे अनिर्वचनीय चमक आ गई । उसे लगा, अज्ञानान्धकार की एक और भारी परत उसके सामने से हट गई है । नवोदित ज्ञानरूपी बाल-सूर्य की सुवर्णमयी रश्मियाँ उसके सामने बिखर रही है । गिरिजा कुमारी चुपचाप उसके कुन्दन के समान दमकते हुए चेहरे को देखती रही । कुछ क्षणो बाद उमा ने पुन प्रश्न किया—

"मुक्ति रूपी साध्य का अभिलाषी साधक किन महान् गुणो को अपनाकर साधना-पथ पर अग्रसर हो सकता है भगवती ?"

"आत्मज्ञान, आत्मविश्वास तथा आत्मसयम । इन तीन गुणो को अपनाकर साधक साधना-पथ पर बढ सकता है । आत्म-ज्ञान का अर्थ है, अपनी आत्मा तथा उसकी शक्ति को पहचानना । अधिकतर मानवो की दृष्टि बाह्य-पदार्थों की ओर ही रहती है । वह उन्ही मे मुग्ध रहता है । अपने अन्दर वह दृष्टिपात नही करता । वह यह समझने का प्रयत्न नही करता कि मेरे अन्तरात्मा मे अद्भुत शक्ति और सुख का सागर लहरा रहा है । आत्मिक शक्ति की पहचान के बिना मनुष्य ससार की समस्त विद्याओ मे पारगत होकर और समस्त कलाओ का अधिकारी बनकर भी विशुद्ध आनन्द को नही पा सकता । आज बडे-बडे वैज्ञानिक पुद्गलो का विश्लेषण करते है, और उसकी सूक्ष्म शक्तियो का अन्वेषण करने मे दत्तचित्त रहते है । इस विराट् विश्व को वे अपनी बुद्धि मे समा लेना चाहते है, किन्तु अपने आपको समझने की, विकारो तथा अपनी आभ्यन्तर शक्तियो को पहचानने की चिन्ता नही करते । परिणाम यह होता है कि आत्मिक शक्तियो का बोध न होने से उनसे उत्पन्न होने वाले अनूठे आनन्द का वे आस्वादन नही कर पाते ।"

"आत्म-ज्ञान के साथ साधक मे आत्म-विश्वास का उदय भी होना चाहिये । आत्म-विश्वास के अभाव मे प्राणी किसी भी महान कार्य को

सम्पन्न नही कर सकता ! फिर साधना की तो बात ही क्या है, वह तो उनके लिये गूलर का फूल वनकर रह जाती है। आत्म-विश्वास की कमी के कारण मनुष्य अपने आपको अनन्त शक्ति सम्पन्न होने पर भी दीन, हीन और क्षुद्र मानता है। तथा कदम-कदम पर असफलताओ का शिकार होता है। इनके विपरीत आत्म-शक्ति को समझने वाले व्यक्ति के मन कोश मे असभव शब्द नही होता। साधना का दुर्गमपथ उसे सुगम लगता है और उसके कदम अविचलित रूप से आगे वढते जाते है।"

इतना कहकर सहमा आर्या गिरिजा कुमारी ने पूछा—"उमा, मेरा वात समझ तो रही हो वेटी ?"

"जी हाँ, अव मुझे आत्म-सयम के विषय मे वताइये !" उमा ने सक्षिप्त उत्तर दिया।

"आत्म-सयम माधना का तीसरा और सर्वोत्कृष्ट साधन है। आत्म-ज्ञान और आत्म-विश्वास होने पर भी अगर मनुष्य मे आत्म-सयम नही है तो उन दोनो का होना न होना समान है। सयम का अर्थ है इन्द्रियो पर और मन पर विजय प्राप्त करना, उन्हे अपनी इच्छानुसार चलाना। मन स्वभावत. चचल होता है। कभी एक भावना लहरी मे वहता है और कभी दूसरी मे; ऐसे असयत मन का अधिकारी क्षणिक भावोद्वेग के वशीभूत होकर अपने मार्ग से च्युत हो जाता है। वह अपने मन की प्रवृत्तियो को शुभ की ओर नही ले जा पाता तथा आसुरीभावनाओ और दुष्प्रवृत्तियो का शिकार वन कर रह जाता है। असयमी का मन जप, तप, प्रार्थना, उपासना अथवा माधना, किसी मे भी केन्द्रित नही हो सकता क्योकि उसमे एक ही लक्ष्य पर स्थिर रहने की क्षमता नही होती। वह निरन्तर राग, द्वेप, काम, क्रोध, लोभ अथवा मोह, जो भी विकार जागृत होता है उसमे वहता रहता है। और मदा आकुल-व्याकुल, खेदखिन्न तथा असन्तुष्ट वना रहता है। इसलिये प्रत्येक साधक मे दृढ सयम होना चाहिये ताकि उसके सयम रूपी कवच से टकराकर दुष्प्रवृत्तियो का प्रत्येक शर खण्डित हो जाए।"

उमा वड़ी तन्मयता से एक-एक शब्द सुन रही थी। वोली—

"आर्या ! साधना घर मे रहते हुए नही हो सकती ?"

"हाँ हो मकती है। साधना घर, वाहर, जाति, कुल या भापा, किसी पर भी निर्भर नही है। प्रत्येक व्यक्ति किमी भी अवस्था मे, और कही भी साधना कर सकता है।"

"तब फिर आपने गृह-त्याग क्यो किया ?" आश्चर्य मे उमा ने प्रश्न किया।

"इसके दो कारण है। प्रथम तो यह कि मन बडा निर्बल होता है। परिवार के साथ रहते हुए, मोह, ममता त्याग कर मन को निरासक्त बनाना तथा चारो ओर बिखरे हुए प्रलोभनो से बचाना बहुत दुष्कर है। दूसरे, आत्मचिंतन तथा साधना के योग्य शान्त और एकात वातावरण का भी वहाँ अभाव होता है। ऐसी स्थिति मे मन एकाग्र नही हो पाता।"

"तुम देखती हो बेटी ! आजकल अस्पताल मरीजो से भरे रहते है। यद्यपि रोगो का इलाज घर पर रहकर भी कराया जा सकता है, फिर भी मरीज अस्पतालो मे प्रविष्ट क्यों होते है ? सिर्फ इसलिये कि घर मे रहकर वे पूर्ण विश्राम नही पा सकते, उनका मन घर की चिन्ताओ से मुक्त नही हो पाता। साधक के लिये भी मोह, ममता, राग, द्वेप आदि बीमारियो के समान ही है। इनसे त्राण पाने के लिये वह गृह-त्याग करता है और अपने अशान्त मन को शान्त करके आत्म-शक्तियाँ जागृत करता है, उन्हे पुष्ट करता है तथा प्रवृत्ति मार्ग से हटाकर निवृत्ति मार्ग की ओर अग्रसर करता है। बस वही साधना कहलाती है।"

उमा अभिभूत-सी बैठी थी। उसके सरल और शुद्ध मानस पटल पर गिरिजाकुमारी का कहा हुआ प्रत्येक वाक्य अकित होता जा रहा था। ठीक उसी समय सामने लगी हुई दीवार घडी ने टन्-टन् करके चार टकोरे बजाए और वह सकुचित होती हुई उठ खडी हुई और बोली—

"भगवती ! मैंने आपका बहुत समय ले लिया।"

"नही-नही, मुझे स्वय ही तुमसे वार्तालाप करके अत्यन्त आनन्द का अनुभव हुआ है। पर तुम भी अब कुछ विश्राम करलो।"

उमा ने उनके चरणो का स्पर्श किया और आज्ञा प्राप्त करके मन्थर गति से अपने निवास स्थान की ओर रवाना हुई।

आर्या गिरिजा कुमारी की वात्सल्यपूर्ण दृष्टि ने तब तक उसका पीछा किया जब तक कि वह उनके नेत्रो से ओझल नही हो गई। ●

१५

मानस मन्थन

उमा को अशोका आए हुए आज दूसरा दिन था। आज स्वर्णिम प्रभात के समय, जबकि जगत के समस्त प्राणी रात्रि भर के विश्राम के पश्चात् अपने मन और मस्तिष्क को सब प्रकार की चिन्ताओ से मुक्त और हल्का महसूस करते है, उमा अपने मस्तिष्क को अत्यन्त बोझिल अनुभव कर रही थी। सारी रात उसकी जागते हुए व्यतीत हुई थी और धरा पर विहँसती हुई ऊषा का आगमन हो जाने पर भी उसके हृदय मे प्रसन्नता की एक भी किरण प्रवेश नहीं कर सकी थी।

उसके अन्तर्मानस मे विचारो का घोर सग्राम छिडा हुआ था। वह बुद्धि का सहारा लेकर प्राणपण से उसे शान्त करने का प्रयत्न कर रही थी। प्रतिक्षण उसे पिता के आने और उनके द्वारा अशोका से लौट चलने का प्रस्ताव किये जाने की आशका थी। वे आर्या गिरिजाकुमारी के दर्शन करने मात्र का समय लेकर ही यहाँ आए थे।

किन्तु वह सोच रही थी, क्या होगा पुन. लौटकर ? शैशव अवस्था बीत चुकी जिसमे प्रात काल नेत्र खुलने से लेकर रात्रि को नेत्र मुँदने तक वह मृग छौने के समान किलोले किया करती थी। प्रसन्नता के सागर मे डुबकियाँ लगाती थी। बडी मा और दादा के लाड-प्यार से उकता कर गाँव मे फेरी

लगाने निकल पडती थी । किसी को हँसाती, किसी को रुलाती और सहेलियो के साथ क्रीडा करते हुए जब थक जाती तो गढ मे जाकर रानी मा की गोद मे वैठ जाती थी । ओह, कितनी अच्छी थी रानी मा ! उसके धूल-मिट्टी भरे पैरो को रानी धोकर भी अपने आँचल से पोछ देती और अपने हाथ मे खाना खिलाती । कहती—

"उमा, तू मेरी जनम-जनम की वेटी है न ? मैंने तुझे अच्छी तरह पहचान लिया है ।"

"अच्छी तरह पहचान लिया है, तभी तो आज रसगुल्ले नही वनवाए, मैं कल कह कर गई थी न ।" वह मुँह फुलाकर कहती ।

"अरे भूल गई उम्मी ! तनिक भी ध्यान नही रहा । अच्छा दोपहर को वनवाकर रखूँगी, तू शाम को आकर खा लेना ।"

"हाँ" शाम को आकर खा लेना । अम्माँ आने देगी क्या मुझे दुवारा इतनी देर मे ही तो आधी हो गई होगी । कहती है वाहर मत जाया कर नजर लग जाती है" और अचानक ही वह उनके गले मे अपनी कोमल वाँहे डालकर कहती —

"मेरी कितनी माताएँ हो गई ? तुम, वडी माँ, धाय मा और मेरी अपनी मा । क्यो रानी मा, मेरी मा कैसी थी ? कहते-कहते उसका मन वुझा-सा हो जाता और गहरी पीडा से हृदय भर जाता ।

रानी उसके उदास चेहरे को चूम लेती, और धीरे-धीरे उसकी मा के विपय मे वहुत-सी वाते वताती । कहती—"तेरी मा के समान सुन्दर स्त्री ढूँढी जाय तो आस-पास के किसी भी गाव मे नही मिलेगी । सिर्फ तूने ही अपनी मा का रूप पाया है वेटी ! काश, तेरी माँ तुझे देख पाती ।" सुनकर उमा उनकी गोद मे मुह छिपाकर सिसकने लगती ।

जन्म देकर सात दिन वाद ही त्याग जाने वाली अपनी माँ का स्मरण करके आज फिर उमा की आँखे वरसने लगी । कुछ समय इसी अवस्था मे गुजरा और अतीत का चक्र थोडा और घूम गया ।

सामने आया देव स्वरूप चम्पक से प्रथम मिलन का दृश्य । चम्पक ने रग भरे टव मे चूना डाल देने के कारण उसके हाथ वाँध दिये थे और उसने चम्पक के घुटने पर झरोखे मे से पत्थर पटक दिया था । इतना ही नही, चम्पक के कारण पूछने पर उसने किस प्रकार दृढतापूर्वक कह दिया था—

तुमने मुझे छुआ क्यो ? अव तो मेरी तुम्हारे अलावा और किसी से भी शादी नही हो सकती ।" आज उस घटना को स्मरण कर उसे लज्जानुभूति होने लगी—हाय, कैसी वाल-सुलभ बुद्धि से उसने निस्सकोच उससे ऐसा कह दिया था । और उसका परिणाम—उमा सोचती चली गई—

"मै वच्ची थी, किन्तु वे तो नासमझ नही थे । तव भी उन्होने मेरे शब्दो का कितना सम्मान किया । कितना विश्वास किया ! और अपने वर्षो पहले तय किये हुए वाग्दान को तोड़कर मुझ अभागिनी को अपनाया ।

और विवाह के वाद के वे थोडे से दिन कैसे थे ? सर्वगुण सम्पन्न देवता के समान पति पाकर क्या वह धन्य धन्य नही हो गई थी ? लगता था कि अपनी पूरी आयु पाकर वे सम्पूर्ण जीवन मे जितना मुझे प्यार कर सकते थे वह सारा ही प्यार उस अल्प-काल मे उन्होने मुझपर उडेल दिया था ।

अपने जीवन की अल्पता का उन्हे आभास हो गया था और इसी कारण पलमात्र के लिये भी वे मुझे अपने नेत्रो से ओझल करना नही चाहते थे । पीहर जाते समय कितने निरुपाय होकर उन्होने कहा था—"उमा, मुझे ऐसा लगता है कि अव तुम मुझे इस जीवन मे कभी नही मिलोगी ।"

और हुआ भी यही । उसके वाद मे अतिम समय मे भी स्वामी के दर्शन नही कर पाई । मन छटपटाता ही रह गया ।

उमा अपने आप पर नियत्रण नही कर सकी और रुकी हुई अश्रुधारा पुन वेग से बहने लगी । अपने अशरीरी पति की काल्पनिक मूर्ति के चरणो मे उसने वार-वार मस्तक झुकाया और आँखो से मोती विखेर दिये । मानो आज अतिम वार उनकी अर्चना करके उस स्मृतियो के स्वर्णिम ससार से विदा होकर साधना के नवीन जगत मे प्रवेश कर रही हो ।

उसका मन दृढ निश्चय कर चुका था कि पिता के साथ अव वह नही लौटेगी । लौटे भी किसलिये ? जव सुनहरा वचपन व्यतीत हो चुका, पति का मनोरम राज्य असमय मे ही छिन्न-भिन्न हो गया । तव फिर वह अमूल्य और दुष्प्राप्य जीवन अव निरर्थक क्यो जाने दे ? आर्या गिरिजाकुमारी के वचन उसके कर्ण कुहरो मे अव भी गूँज रहे थे—

"इस विराट विश्व मे चौरासी लाख योनियाँ है । असख्य काल इन योनियो मे व्यतीत करने के पश्चात् अनन्त-अनन्त सुकृतो के फलस्वरूप मनुष्य योनि प्राप्त हो पाती है । तो ऐसे जीवन को जिसे करोडपति अपना सर्वस्व

देकर और चक्रवर्ती सम्राट अपना छ खण्ड का साम्राज्य न्यौछावर करके भी नही खरीद सकता, मोह-ममता और पर-पदार्थो मे आसक्ति के कारण ही व्यर्थ क्यो जाने देना चाहिये ?"

"जीव की तो अपने शरीर के साथ भी एकरूपता नही है, तब फिर उसकी माता, पिता, पत्नी, पुत्र, मित्र तथा अन्य सम्बन्धियो मे एकरूपता कैसे हो सकती है ? अर्थात् जब शरीर ही अपना नही है तो शरीर से सम्बन्ध रखने वाले चेतन और जड पदार्थ उसके अपने कैसे हो सकते है ? झूठे मोह मे फँसकर जीव अनेकानेक कर्मो का बध कर लेता है और उनके परिणामस्वरूप मानव-देह त्याग करने के पश्चात् नरक, निगोद, तिर्यच आदि असख्ययोनियो मे जन्म लेता हुआ भव-समुद्र मे डूबता उतराता रहता है। इसीलिये तो त्रिकालदर्शी भगवान महावीर ने गौतम से बार-बार कहा है—

दुल्लहे खलु माणुसे भवे, चिरकालेण वि सव्वपाणिण।
गाढाय विवागकम्मुणो, समय गोयम् ! मा पमायए ॥

अर्थात् "हे गौतम ! सब प्राणियो के लिये मनुष्य भव चिरकाल तक भी दुर्लभ है। दीर्घकाल व्यतीत होने पर भी उसकी प्रगति होना कठिन है। क्योंकि कर्मो के फल बहुत गाढे होते है, अत समय मात्र का भी प्रमाद मत कर।"

जीव और जगत के इस रहस्य को जानकर उमा काप उठी। वह समझ रही थी कि भगवान का यह उपदेश गौतम के लिये ही नही, प्राणीमात्र के लिये है। गौतम तो स्वय महान थे और उच्चतर साधना मे रत रहते थे। उन्हे भी जब भगवान ने बार-बार चेतावनी दी थी तो हम जैसे प्राणियो के लिये तो यह कितनी दुर्लभतम और महत्वपूर्ण है। गौतम के समान ही तो आज ससार के समस्त प्राणियो का और मेरा भी समय पल-पल करके बीत रहा है। निरर्थक जा रहा है।

विचारधारा प्रवाहित होती रही और उमा कुछ ही समय पहले किये हुए अतीत के स्मरण, उसके लिये पीडा के अनुभव और अश्रुपात के लिये पश्चात्ताप करने लगी उसका हृदय दृढता से भर गया और वह पुन. अपने भविष्य की सार्थकता के स्वप्न देखने लगी। ●

१६

प्रव्रज्या लूँगी

"उमा !"

"कहिये पिताजी !"

"आज हम यहाँ से वापिस चलेंगे। हमें अशोका आए हुए तीन दिन हो चुके।

"लेकिन मैं तो आपके साथ नहीं चल सकूँगी।"

"क्यों ?" जगतनारायण ने आश्चर्य से पूछा।

"पिताजी, अब मैं अर्यागिरिजाकुमारी के पास प्रव्रज्या धारण करके आत्म-कल्याण करना चाहती हूँ।"

जगतनारायण जी मानो आकाश से गिर पड़े। अपने कानों पर उन्हें विश्वास नहीं हुआ। फटी हुई आँखों से पुत्री को देखते हुए चीख पड़े—

"क्या कह रही हो बेटी !"

"आपने सुना तो है पिताजी !"

"तू तो पागल है ! यह कैसे सम्भव हो सकता है ?"

"दीक्षा ग्रहण करना क्या असभव है पिताजी ! अनादि काल से मोक्षाभिलाषी महापुरुप ससार से विरक्त होकर मानव-जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त करने के लिये साधना करते चले आए है। यह कोई अनोखी अथवा अनहोनी वात तो है नही।"

"पर इसके लिये वडी दृढता और ज्ञान की आवश्यकता है, तुम अभी वच्ची हो, क्या जानो इन बातो को ?"

"बाबू जी ! मेरे मन की दृढता का परिचय तो आपको मेरे वचपन से ही मिलता आ रहा है। मेरे विवाह का प्रसग स्मरण नही है क्या आपको ? उस समय मे दस वर्प की ही तो थी। रही वात ज्ञान की, वह मे भवगती के समीप रहकर शनै शनै प्राप्त कर लूँगी।"

जगतनारायण बाबू अपनी तेजस्वी पुत्री के सामने मानो परास्त होते जा रहे थे। वे भली-भाति जानते थे कि उनकी दृढ निश्चयी वेटी को ससार की कोई शक्ति झुका नही सकती, मोड नही सकती। आखिर वह पुत्री थी किसकी ? उन्ही की तो, जिसने भरे दरवार मे राजा को सिहासन से उतार दिया था, पारिवारिक जनो की परवाह न करके अपनी समस्त सपत्ति अकाल पीडितो मे वाँट दी थी और भाई भाभी के नाराज होने पर उसी क्षण बिना एक पाई भी साथ लिये पत्नी के साथ चल दिये थे। किन्तु आज वे अत्यन्त व्यथित और चिन्तित थे। इसलिये कि उनकी पुत्री सिर्फ उनकी ही पुत्री नही वरन् किसी की पुत्र वधू भी थी। उस पर उनका नही, उसके श्वसुर का अधिकार था। आज वह पितृकुल की सम्पत्ति नही, श्वसुर कुल की थाती थी। ातरतापूर्वक वोले—

"वेटी ! समझदारी से काम लो। तुम पर तुम्हारी दृढता पर और तुम्हारे उत्तम विचारो पर मुझे गर्व है, किन्तु तुम पर मेरा अधिकार नही। विवाह के पश्चात् कन्या माता-पिता की इच्छानुसार नही, सास-ससुर की आज्ञानुसार चलती है। मैं प्रतापनारायण जी को क्या जवाव दूँगा ?"

"उन्हे भी समझना होगा पिताजी ! आखिर मेरी आत्मा को मोह के वन्धन मे जकडे रहने से उन्हे क्या लाभ होगा ?"

"स्नेह लाभ-हानि का हिसाव नही रख वेटी ! यह तो मानव-मात्र की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती हे। अपने प्रिय-पात्र अथवा छोटो के प्रति वडो का प्यार होना सहज और स्वाभाविक होता हे।

"लेकिन यह स्नेह कब तक रखा जा सकता है ? जब तक यह नर-देह है तभी तक न ? उसके पश्चात् जब आत्मा यह शरीर त्याग कर विभिन्न योनियो मे भटकेगी, उस समय कौन इससे प्रेम करता हुआ इसके साथ रहेगा ? माता-पिता सास-श्वसुर तथा अन्य सम्बन्धी तो प्रत्येक जन्म मे होते ही हैं लेकिन अन्त मे कौन किसके काम आता है ? पिताजी, आप मुझे भुलावे मे डालने का प्रयत्न न करे। मैं तो सदा के लिये अपनी आत्मा को संसार के प्रपंचो से मुक्त करना चाहती हूँ।"

जगतनारायण निर्वाक् खडे रहे। गरिमामयी पुत्री को क्या उत्तर देते ! मुँह से बोल ही नही निकले। आखिर साहस करके उन्होने अन्तिम प्रयत्न किया। कहा—

"बेटी, एकबार तुम अपने श्वसुर-गृह वापिस चलो जिससे मैं प्रतापनारायण जी को उनकी अमानत एक बार पुन. सौंप सकूँ। उसके बाद उनसे आज्ञा प्राप्त करके अपनी इच्छानुसार मार्ग अपनाना।"

"आज प्रथम बार आपमे इतनी कायरता देख रही हूँ पिताजी! जीवन मे कभी भी, और किसी से भी भयभीत न होने वाले आप क्या आज प्रतापनारायण जी से डर रहे है ? मैं स्वयं उन्हे आप पत्र लिख देती हूँ यहाँ आने के लिये। और उनके आ जाने पर उनसे भी आज्ञा ले लूँगी। आप मुझे लौट चलने के लिये बाध्य न करे। मन को व्यथा पहुँचाने वाली सभी स्मृतियो को मैं अपने हृदय मे निकाल देने का प्रयत्न कर रही हूँ, फिर लौटकर उन्ही के बीच मे जाने से क्या लाभ ? आप जानते ही है कि सर्प अपनी केचुली त्याग देने के पश्चात् उस ओर दृष्टिपात नही करता। इसी प्रकार मेरा मन भी अब मोह-माया के ससार मे पुन जाना नही चाहता।"

"जाऊँ भी किसलिये पिताजी ? सात दिन की थी तब माँ छोडकर चली गई और ठीक तरह से बोलना भी नही सीख पाई थी कि आप चले गए। उसके पश्चात् होश सभाला और विवाह किया गया, किन्तु अल्प-काल मे ही सौभाग्य पर बिजली गिर पडी। अब तक का सारा जीवन ही तो व्यथा के बीच गुजरा है, अब और कौन सा सुख बाकी रहा है जिसे भोगने के लिये आप मुझे लौटा ले जाना चाहते हैं ?"

"इसलिये, मुझे अब ऐसा मार्ग अपनाने दीजिये, कि जिससे कही कोई

दुख न हो, मन आत्म-सतोप से परिपूर्ण रह सके। और कालातर मे मेरी आत्मा भव-भ्रमण से छुटकारा पा जाए। पिताजी अव आप विश्राम कीजिये, मैं वावूजी को पत्र लिखती हूँ।"

जगतनारायण जी चिन्ताओ के सागर मे गोते लगा रहे थे। शून्य चित्त से उठकर वे धीरे-धीरे पास वाले कमरे की ओर चल दिये। पिता के जाने के वाद उमा उठी, एक ग्लास पानी पिया और चटाई पर वैठकर ससुर को पत्र लिखने लगी।

१७

बहूरानी का पत्र

"चिट्ठी लेना जी…………।"

"देख तो हरिया, किसका पत्र आया है ? प्रतापनारायणजी ने नौकर को आवाज दी।

"हरिया दौडा दौडा गया और पत्र लाकर उसने बाबू प्रतापनारायण को थमा दिया।

चम्पकराय जैसे होनहार पुत्र के अकाल-काल-कवलित हो जाने से प्रताप-नारायणजी का जीवन ही बदल गया था। समस्त सासारिक कार्यों से उन्हे विरक्ति हो गई थी। शनैः शनैः उन्होने व्यापार तथा जमीन-जायदाद की देखभाल से अपना हाथ खीच लिया और समस्त कार्य अपने बडे पुत्र रमेशचन्द्र को बुलाकर सौप दिया। बाहर का कार्य रमेश के कधो पर आ गया और गृह-कार्य बडी बहू सुभाषिणी सम्भालने लगी।

सुभाषिणी गम्भीर स्वभाव की अत्यन्त सहनशील और गृह व्यवस्था मे दक्ष नारी थी। देवर के निधन ने यद्यपि उसके हृदय को हिला दिया था, किन्तु सद्यः विकसित कली के सदृश अपनी बहन उमा की शोकाकुल स्थिति को देखकर वह हृदय पर वज्र रखती हुई उसे सदा प्रसन्न और सतुष्ट रखने

का प्रयत्न करती रहती थी। नाटक-तमाशे आदि सभी मनोरंजन के साधनो को उसने तिलाजलि दे दी और गोटा-किनारी वाले कीमती वस्त्रो को पहनना भी छोड दिया। केवल भाल पर चमकता हुआ सिंदूर ही उसके तन व मन के सौन्दर्य को द्विगुणित बनाए रहता।

परिवार मे उसके ससुर प्रतापनारायण, पति रमेशचन्द्र, देवर सुभाप, ननद रानी और उमा थी। इन सभी की सुख सुविधा मे जुटी हुई सुभापिणी अपने श्वसुर-गृह की दीपक बनी हुई थी।

अगहन का महीना प्रारम्भ हुआ था। करीब नौ बजे अत्यधिक सर्दी होने के कारण बाबू प्रतापनारायण नित्यक्रिया आदि से निवृत्त होकर बाहर बरामदे मे आराम कुर्सी पर पैर फैलाए बैठे थे। हलकी सी धूप उन्हे अच्छी लग रही थी। उसी समय सुभापिणी दूध का गिलास लेकर आ गई। "बाबूजी! दूध ले लीजिये।"

दूध का गिलास हाथ मे लेते हुए प्रतापनारायण ने पूछा—"बडी बहू! बहूरानी को गये कितने दिन हो गये ?"

"आज एक सप्ताह हुआ है।"

"तुम कहो तो सुभाप को उसे लेने भेज दूँ ?"

"अभी कुछ दिन और रह लेने दीजिये बाबूजी! आर्या गिरिजा कुमारी के दर्शन करके सभवत: दो-चार दिन पहले ही वह माँ के पास पहुँची होगी। उन लोगो का मन अभी भरा नही होगा।"

"मेरे मन को भी तो सूना-सूना लगता है बेटी! वह यहाँ होती है और मेरी आँखो के सामने चलती-फिरती रहती है तो बडी तसल्ली सी बनी रहती है। चम्पक के चले जाने के बाद उस पर मेरी ममता और भी बढ गई है। ऐसा लगता है मानो चम्पक मरकर उसी मे समा गया है।"

"अच्छा, न हो तो आज एक पत्र ही लिख दो बेटी, कि दो-चार दिन मे उसे लिवाने आ रहे है।"

"अच्छा बाबूजी!" कहती हुई सुभाषिणी वृद्ध ससुर की व्यथा का अनुमान लगाती हुई अपनी आँखो मे छलक आए आँसुओ को छिपाती हुई रसोई घर की ओर चली गई। रसोई घर मे पहुँचकर उसने उबलते हुए पानी मे दाल धोकर डाली ही थी कि सुभाप ने तेजी से आकर पुकारा—

"भाभी, भाभी!"

"क्या है भैया ?"

"जरा देखो तो आकर, बाबूजी को क्या हुआ ?"

"क्या हुआ बाबूजी को ?" कहती हुई सुभाषिणी मस्तक पर से आँचल तनिक आगे खिसकाकर लपकी हुई बाहर की ओर भागी। आकर देखा कि काँच का गिलास भूमि पर गिरकर फूट गया है और दूध वहकर सीढियो तक पहुँच चुका है। प्रतापनारायण एक पत्र हाथ मे लिए हुए निश्चेष्ट से आराम कुर्सी पर टिके है और उनकी बन्द आँखो से अश्रुधारा वह रही है।

सुभाष हक्का-बक्का सा खडा था। एक प्रश्नवाचक दृष्टि उस पर डालकर सुभाषिणी ने ही ससुर से पूछा—

"क्या हुआ बाबूजी ?"

प्रतापनारायण कुछ बोले नही। तनिक आँखे खोलकर उन्होने पत्र समीप ही खडे सुभाष की ओर बढा दिया। सुभाष ने जल्दी-जल्दी पत्र पढा और पढते ही चीख पडा—

"नही, नही, ऐसा नही हो सकता ?"

"क्या नही हो सकता ? बात क्या है। किसका पत्र है, बताओ तो सही।" सुभाषिणी ने गम्भीर स्वर से प्रश्न किया—

छोटी भाभी का पत्र आया है अशोका मे लिखा है—"मै मार्ग शीर्ष कृष्णा एकादशी को भगवती गिरिजाकुमारी के समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहती हूँ। आप सब आकर मुझे आज्ञा और आशीर्वाद प्रदान करे।"

सुभाषिणी सुनकर स्तब्ध रह गई। ससुर की मानसिक अवस्था का उसे भली भाँति ज्ञान हो गया। कुछ कहना ही चाहती थी कि सुभाष पुन उत्तेजित होकर कह उठा—

"ऐसा कभी नही हो सकता, मै हरगिज यह न होने दूँगा।"

सुभाषिणी ने हृदय मे उफनते हुए भावो को दबाया और धीरतापूर्वक देवर की उत्तेजना शान्त करते हुए कहा—

'अपने भाई साहब को बुलाकर लाओ भैया ! घबराओ मत ! हम सब अशोका चलेगे और उमा को समझाने का प्रयत्न करेगे।"

"और हरिया ! तू सामान वगैरहा इकट्ठा करके बाँधना शुरू कर। जानता तो है न, क्या-क्या साथ जाएगा ?" कहती हुई वह हरिया की

ओर मुडी । पर देखती क्या है कि बचपन से इस घर मे पला हुआ हरिया भी सिसकियाँ ले रहा है ।

रोना क्यो न आता ? सभी कुछ देखा था उसने । सुभाषिणी के विवाह पर उमा का इस घर मे प्रथम आगमन, विवाह, विवाह के पश्चात् उसके प्रफुल्ल और परिहासपूर्ण व्यक्तित्व से मुखरित घर का सम्पूर्ण वातावरण, चम्पक का उसे पीहर न भेजना, पिता के लिवा जाने पर चम्पक की शोकाकुल स्थिति और ठीक उमा के लौटने के समय छोटे बाबू का निधन । क्या नही जानता था वह ? कितनी बार उमा की विक्षिप्त-सी अवस्था को देखकर वह छिप-छिप कर नही रोया था ।

कहने को हरिया नौकर था, पर घर मे उसका स्थान परिवार के एक सदस्य जैसा ही था । इस घर के अतिरिक्त वह और कही अपना घर नही मानता था । यहाँ न कोई उसे पराया समझता और न वह स्वय आपको पराया मानता । इसी कारण वह अपने आपको टोक नही सका और फूट-फूट कर रो पडा ।

उस समय की विषम स्थिति के कारण सुभाषिणी का धैर्य वैसे ही छूट रहा था । कृत्रिम क्रोध से उसने सर्व प्रथम हरिया को डाँटा—

"सुभाष भैया तो तेज मिजाज के है ही पर तू भी हरिया, पागल हो गया है । चल तू भी हमारे साथ, वहाँ पहुँचकर अपनी छोटी बहूजी के सामने ही रोना !" और फिर ससुर को लक्ष्य कर बोली—

"बाबूजी ! आप भी उठिये । स्नान करने का समय हो गया है । आपको इतनी अधीरता शोभा नही देती । हम सब चल ही तो रहे है वहाँ ।"

व्यथित प्रतापनारायण बिना एक शब्द भी कहे उठकर अन्दर की ओर चल दिये । विभिन्न आशकाओ मे डूबी हुई सुभाषिणी ने एक गहरा निश्वास छोडा और धीरे-धीरे जाकर भोजन की व्यवस्था मे जुट गई ।

तैयारियाँ सम्पूर्ण हो जाने के पश्चात् अगले दिन प्रात काल प्रतापनारायण सपरिवार अशोका के लिये रवाना होने लगे । देवपुरी छोटा गाँव था और ट्रेन के रास्ते से कुछ हटकर । अत वहाँ से ट्रेन नही पकडी जा सकती थी । यह तय हुआ था कि अजयनगर तक बस से और वहाँ से ट्रेन द्वारा जाया जाएगा । साढे सात बज चुके थे और आठ बजे बस रवाना होती थी । रमेशचन्द्र ने आकर कहा—

"वावूजी वक्त हो गया है। अब हमे घर मे चल देना चाहिये।"

"हाँ वेटा ! मैं तैयार हूँ। वडी वहू को बुलाओ और हरिया से सामान वाहर निकालने को कहो। पर सुभाप कहाँ है ? वह दिखाई नही दे रहा।"

"आ जाएगा यही कहीं होगा।"

पर सुभाप नही आया, और सव यह सोचकर कि सीधा मोटर स्टैंड आ जाएगा, घर से चल दिये। वक्त भी अधिक नही था, वस के रवाना होने मे पाँच-सात मिनट वाकी रहे तव तक भी सुभाप वहाँ नही पहुँचा। प्रतापनारायण और रमेशचन्द्र परेशान हुए। पर इतने मे ही रानी की दृष्टि जल्दी-जल्दी आते हुए सुभाप पर पडी। उसने पिता को वताया कि भैया आ गये।

"कहाँ थे सुभाप तुम अभी तक ?" झु झलाते हुए प्रतापनारायण ने छोटे वेटे से कहा—"जल्दी करो वस रवाना होने को है।"

"मैं अभी नही चलूँगा पिताजी ! एक दो दिन वाद आऊँगा।"

"क्यो · ?" प्रताप नारायण चौके।

"कुछ जरूरी काम है।"

"ऐसा कौन सा जरूरी काम आ पडा भाई ? साथ ही चलो न ! रमेश ने भाई से आग्रह किया।

'नही भैया ! काम कुछ ऐसा ही आवश्यक है। मैं वाद मे आऊँगा। आऊँगा अवश्य, आप चिन्ता न करे।"

उसके शब्दो की दृढता और आँखो की एक विचित्र सी चमक ने सभी को अवाक् कर दिया, पर कोई कुछ कहता उसके पहले ही मोटर होर्न वजाती हुई रवाना हो गई।

१८

ज्योतिषी महाराज

प्रतिदिन की तरह जगतनारायण वावू परमविदुषी साध्वी गिरिजा कुमारी का प्रवचन सुनकर उमा के साथ अपने आवास की ओर लौट रहे थे। मार्ग मे एक स्थान पर भीड और मनुष्यो के शोरगुल के वीच 'वाह-वाह' की ध्वनियाँ सुनकर दोनो की दृष्टि उस ओर गई।

"क्या वात है भाई ! क्या हो रहा है यहाँ पर ?" जगतनारायण ने महज ही एक व्यक्ति से पूछ लिया।

"एक ज्योतिषी है वावू साहव ! भूत और भविष्य की सारी वाते दर्पण मे दिखाई देने वाले चेहरे की तरह स्पष्ट वता रहा है। अनेको व्यक्ति भूत-काल की वातो को जानकर चकित हुए है और भविष्य के वारे मे पूछ-ताछ कर रहे है। और भी वहुत सी चमत्कार पूर्ण कलाएँ वह दिखा रहा है। वास्तव वडा पहुँचा हुआ अद्भुत व्यक्ति है।"

"अच्छा .... ।" कहते हुए जगतनारायण ने पुन चलने के लिये कदम उठाया किन्तु उमा की कौतूहल वृत्ति जाग गई थी, अतः उसने आग्रह किया—

"पिताजी ! चलिये न ! तनिक हम भी देखे कि क्या ये सव वाते सच है ?"

"विलम्ब हो जायगा बेटी ! आज प्रतापनारायणजी, सुभाषिणी और जमाई बाबू वगैरह सब आने वाले है ।"

"अभी तो बहुत समय है । चलिये पाँच मिनट लगेंगे ।"

"अच्छा चलो तुम्हारी इच्छा है तो ।" बेटी का मन वे दुखाना नही चाहते थे ।

सभ्रान्त व्यक्तियो को आते देखकर मनुष्यो ने सम्मानपूर्वक उन्हे स्थान दिया और धीरे-धीरे शोरगुल शात हो गया । लगता था कि वह अद्भुत व्यक्ति अपने बहुत से करिश्मे दिखा चुका था । उस समय उसने एक बडा सा पत्थर उठाया और उसे अपनी हथेलियो के बीच मे घुमाने लगा । पत्थर ज्यो-ज्यो घूमता गया, त्यो-त्यो वह छोटा होता चला गया । सभी की चकित और प्रशसात्मक दृष्टि उस पर केन्द्रित थी । देखते ही पत्थर इतना छोटा हो गया कि वह हथेलियो के बीच मे दबाया जा सके । अब उसने बाएँ हाथ की हथेली पर उसे रखा और दाहिने हाथ के अगूँठे से दबा दिया । सब लोग अवाक् रह गये यह देखकर कि उस छोटे से पत्थर मे से रक्त की धारा बहने लगी और तब तक बहती रही जब तक कि उसने अपना अगूँठा पत्थर पर से हटा नही लिया ।

अपना आखिरी कमाल दिखाकर उसने वहाँ उपस्थित सभी व्यक्तियो को हाथ जोडे । एक-दो मिनट मे ही वहाँ पैसो का ढेर लग गया और भीड बिखर गई । अब उसने बाबू जगतनारायण और उमा की ओर दृष्टिपात करते हुए कहा—

"बाबूजी, आप बहुत देर करके आए हैं । कुछ और दिखाऊँ आपको ?"

"नहीं, नही । और कुछ दिखाने की आवश्यकता नही है । यह बताओ कि क्या तुम ज्योतिष विद्या भी जानते हो ?" उमा ने शीघ्रतापूर्वक पूछा ।

"हाँ जानता हूँ, बहुत अच्छी तरह जानता हूँ । वास्तव मे मैं ज्योतिषी ही हूँ । लेकिन उस एक विद्या से पेट नही भरता और परिवार का पालन-पोषण नही हो पाता इसलिये यह जादूगरी भी सीख ली है ।"

"अच्छा तो आप मेरे बारे मे कुछ बाते बताओ ।" उमा ने उत्सुकतापूर्वक कहा ।

"पहले अपना हाथ दिखाओ बहन ।"

उमा के हाथ फैला देने पर ज्योतिषी ने उसके हाथ की रेखाओ को बड़ी

सावधानी से देखा और अपनी अगुलियो पर बहुत देर तक कुछ गणनाएँ करता रहा। फिर बोला—

"मातृरेखा प्रारम्भ से ही धोखा दे रही है। बचपन मे ही माता का वियोग हुआ होगा।"

"हाँ और ·······?"

"और विवाह के बाद अल्प-काल मे ही पति का निधन, अत्यन्त मानसिक अशान्ति बनी रहती है।"

"सो तो बनी रहती है पर तुम मेरे भविष्य के बारे मे कुछ बताओ न।"

"भविष्य तुम्हारा बहुत उज्ज्वल है बहन! बहुत मान सम्मान और सुख से··· · ·।"

"यह क्या गोल-मोल बाते बता रहे हो?" खास-खास बाते बताओ। उमा ने उसकी बात काटी।

"खास-खास बाते कौनसी जानना चाहती हो? पूछो तभी तो मैं बताऊँ न।"

"यह बताओ कि मै साध्वी बन सकूँगी या नही? और बन गई तो यह जीवन कैसा बीतेगा?"

ज्योतिषी यह सुनते ही भौंचक्का हो गया और आँखे फाडफाडकर कभी उमा का और कभी जगतनारायणजी का मुँह देखने लगा मानो कह रहा हो कि क्या इतनी सुन्दर और सुकोमल कन्या साध्वी बनने योग्य है

"देख क्या रहे हो? जल्दी बताओ।" उमा व्यग्रतापूर्वक बोली।

ज्योतिषी पुन गम्भीरता से उमा के हाथ की रेखाएँ देखने लगा और उसके शुभ्र मुखमडल की ओर दृष्टि डालकर बोला—

"यह तो असभव दिखाई देता है·· · ···।"

"क्या असभव दिखाई देता है?" गुस्से से उमा ने उसी के शब्दो को दोहराया।

"तुम्हारा साध्वी बनना। और बन गई तो सयम का पालन करना···· ·····।"

सर्प पर पैर पड जाने पर मनुष्य जिस प्रकार चौककर पैर हटा लेता है, उसी प्रकार उमा ने हस्तरेखाएँ दिखाने के लिये बढाया हुआ हाथ खीच लिया।

"यही ज्योतिप है तुम्हारा ? ऐसी ही भविष्यवाणियाँ करके लोगो को ठगते हो तुम ?"

"पर मैं क्या कर सकता हूँ ? आपकी रेखाएँ कहती हैं।"

रेखाएँ नही कहती, तुम कहते हो ! लगता है कि झूठ और फरेब का आधार लेकर तुम सही मार्ग पर जानेवालो को भविष्य का डर दिखाकर विचलित कर देते हो। अगर इसी गाँव मे रहे तो याद रखना कि तुम्हारे ज्योतिप को असत्य सावित कर आजके चौथे दिन मे साध्वी जीवन अपना लूँगी। और अगर जिन्दा रह जाओ तो कुछ वर्षो वाद मेरे उस जीवन 'को भी देख लेना। दृढ निश्चयी मनुष्य अपने भाग्य को भी वदल सकता है, फिर तुम्हारे जैसे ज्योतिपी द्वारा की गई भविष्य-वाणी को वदल डालना क्या कठिन है।" कहती हुई उमा पिता की ओर पलटी—

"पिताजी चलिये अब, काफी देर हो गई है।"

कुछ कौतुकपूर्वक जगतनारायण वेटी का क्रोध और भविष्यवेत्ता की निरीहता को देख रहे थे। उसे दक्षिणा देने के लिये उन्होने अपनी अचकन की जेव मे हाथ डाला और पूछा—"भाई ! क्या दूँ तुमको ?"

ज्योतिपी निर्वाक् खडा था, हाथ जोडकर वोला—"आज आपसे कुछ नही लूँगा वाबूजी ! मेरे अहोभाग्य, कि आपकी कृपा से साक्षात देवी 'अम्वा' के दर्शन कर लिये। आज का दिन मेरा धन्य है।"

किन्तु जगतनारायणजी माने नहीं। उन्होने आग्रहपूर्वक उसके हाथ मे पाँच रुपये का नोट थमा दिया और पुत्री के साथ चल पडे।

ज्योतिपी ने न जाने क्या सोचकर जहाँ उमा खडी थी उस स्थान को छूकर हाथ मस्तक पर लगाया और निर्निमेप दृष्टि से उसे आँखो से ओझल होने तक देखता रहा।

●

१९

दोनों कुल दीप्त करना

ट्रेन आने मे अभी पन्द्रह मिनट वाकी थे किन्तु स्टेशन पर काफी चहल-पहल हो रही थी । यात्रियो का शोरगुल और पान, वीडी, चाय तथा खोमचे वालो की कर्कश आवाजे बाबू जगतनारायणजी के अशान्त हृदय को और अधिक बैचेन वना रही थी । प्लेटफॉर्म पर एक किनारे की वैच के आखिरी सिरे पर बैठे हुए वे गाडी के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। किन्तु उस प्रतीक्षा मे न उल्लास था और न ही उत्सुकता थी । किस प्रकार प्रतापनारायणजी का सामना करूँगा और उनके प्रश्नो का क्या उत्तर दूँगा ? यही विचार उनके हृदय को मथ रहे थे ।

किन्तु समय किसी की परवाह नही करता । महीने, वर्ष और युग भी अपनी चाल से बीतते चले जाते है । फिर पन्द्रह मिनट तो उनके सामने क्या बिसात रखते थे । सीटियाँ बजाती हुई ट्रेन, धडधडाती हुई आकर धीरे-धीरे प्लेटफॉर्म पर रुक गई । जगतनारायणजी शीघ्रतापूर्वक कई डिब्बो को देखते हुए एक सैकिंड क्लास के डिब्बे के सामने आकर रुक गए । देखा सुभाषिणी और रानी डिब्बे से उतर कर प्लेटफॉर्म पर खडी है और अपने वडे पुत्र रमेशचन्द्र की सहायता से छोटा-मोटा सामान प्लेटफॉर्म पर प्रतापनारायणजी स्वय रख रहे है । सूटकेश तथा विस्तरो को कुली बाहर ला रहे थे ।

"नमस्कार ·· ·· ····।" शब्द कानो मे पडते ही प्रतापनारायणजी ने पीछे मुडकर देखा। वरवस लाई हुई म्लान मुस्कराहट चेहरे पर लिये हुए जगतनारायणजी खडे थे। निमेष मात्र मे ही उन्होने अपनी मातृहीना वहू के पिता की व्यथा, और उनसे मिलने के कारण होने वाले सकोच को परख लिया।

जगतनारायणजी को कुछ भी कहने का मौका न देते हुए उन्होने उनके दोनो हाथो को अपने हाथो मे ले लिया और वोले—

"आपको कुछ भी कहने की आवश्यकता नही है जगतनारायण वावू! मैं पिता भी हूँ, आपके सीने मे धडकने वाले दिल को पहचानता हूँ। होनहार पर किसी का वश नही होता। मनुष्य सिर्फ उसे वदलने का प्रयत्न ही कर सकता है। कहते हुए ट्रेन के डिब्बे मे कुछ सामान न रह जाय इसमे लगे हुए पुत्र को आवाज देते हुए कहा—

"रमेश, वाहर आओ अपने वावूजी को प्रणाम करो।" सुनते ही रमेशचन्द्र ने शीघ्रता से वाहर आकर जगतनारायणजी के पैर छुए और आशीर्वाद प्राप्त किया। सुभाषिणी इससे पूर्व ही पिता की चरण-रज मस्तक पर लगा चुकी थी। जगतनारायण प्रतापनारायणजी के हृदय की गम्भीरता और विशालता का अनुभव कर गद्गद हो उठे और सवको लेकर स्टेशन से वाहर आए। दो ताँगो मे वैठकर सव निवास स्थान की ओर रवाना हुए। स्टेशन से रास्ता मुश्किल से पाँच-सात मिनट का था। शीघ्र ही सव निर्दिष्ट स्थल पर पहुँच गये।

उमा सवके लिये खाना वनाकर वडी उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थी। ताँगो के रुकते ही दोनो समधी वाहर से सामान मँगवाने और रखने की व्यवस्था मे लगे। पर सुभाषिणी और रानी ताँगो से उतरते ही अन्दर आ गईं।

"अच्छी हो दीदी?" कहते हुए उमा ने वहन को प्रणाम किया। किन्तु इतने मे ही रानी आकर उमा से लिपट गई।

"भाभी ।"

"ओह रानी! आ गई तुम? उमा ने अत्यन्त स्नेह मे ननद का चेहरा अपने हाथो मे ले लिया।

"भाभी घर चलो!"

"कहाँ है तुम्हारा घर ?"

"देवपुरी चलो न भाभी ......।"

"वह तो वाबूजी का घर है। तुम अपना घर वताओ ! वहाँ ले चलोगी क्या ? उमा परिहास करके रानी को शान्त रखना चाहती थी पर सफल नही हो सकी। रानी रो पडी और उसने भाभी के हृदय मे अपना मुँह छिपा लिया।

"उम्मी, वाबूजी आ रहे है।" कहती हुई सुभापिणी ने साडी को सिर पर आगे की ओर खीच लिया, तथा उमा होले से रानी को अलग कर ससुर की ओर वढी। उनके चरणो का स्पर्श किया। प्रतापनारायणजी ने क्षण भर के लिये वडी साध से लाई हुई वहू के आधे ढँके शरदिन्दु के समान उज्ज्वल चेहरे की ओर देखा। अन्तर का समस्त स्नेह उस समय मानो उनके नेत्रो मे आकर इकट्ठा हो गया। धीरे-धीरे आकर वे कमरे मे एक कुर्सी खीचकर वैठ गए। वड़ी कठिनाई से वोले—

"वहूरानी, घर नही चलोगी वेटी ?"

उमा मौन रही। अव तक कभी उसने ससुर से वात नही की थी अतः वह असहाय-सी कभी सुभापिणी और कभी रानी की ओर देखने लगी।

यह देखकर प्रतापनारायणजी ने आग्रहपूर्वक कहा—

"आज अपने मन की वात तुम स्वय मुझसे कहो वेटी ! मै भी तुम्हारा पिता हूँ, मुझसे दुराव कैसा ?"

वहुत ही सकुचित होकर उमा ने धीरे-धीरे उत्तर दिया—"वावूजी, आप मुझे कल्याणकारी मार्ग पर चलने की अनुमति और आज्ञा दीजिये।"

"लेकिन मेरा घर सूना हो जाएगा वहूरानी ! मेरे दिन किस प्रकार कटेंगे ? क्या तुम्हे हम लोगो से ममता नही रही ?"

"ऐसा न कहिये वावूजी, आपका स्नेह सदा कवच वनकर मुझे शक्ति देता रहा है। मुझे सासारिक दु.खो से वचाता रहा है।"

"फिर.......?"

"फिर भी मन के दुखो से वह मेरी रक्षा नही कर सकता। मेरा मन सदैव जन्म-जन्मान्तर मे आत्मा को पीडा पहुँचाने वाले दुखो से भयभीत वना रहता है। एक जीवन मे भी आत्मा मोह के वशीभूत होकर इतने कर्मो का वध कर लेती है कि उनके परिणामस्वरूप अनेक जन्मो तक भोगने पर भी उनका अन्त नही हो पाता।"

"बेटी, आत्मा की मुक्ति के लिये प्रयत्न तो तुम घर मे रहकर भी कर सकती हो। वहाँ रह कर ही यथोचित साधना करती रहना, मैं कभी बाधा नही दूँगा।"

"बाबूजी, भूख से पीडित व्यक्ति की क्षुधा रोटी के एक टुकडे से शान्त नही हो सकती। इसी प्रकार आत्मा की मुक्ति भी नाम मात्र की साधना से नही होती। उसके लिये एकाग्र और पूर्ण साधना की आवश्यकता है।"

"पर अभी तुम्हारी उम्र सिर्फ पन्द्रह वर्ष की है। कुछ समय बाद तुम्हे सयम ग्रहण करने का विचार करना चाहिये। इतनी शीघ्रता मत करो बेटी!" प्रतापनारायण अत्यन्त व्याकुल होकर बोले।

"और इसी बीच अगर काल आ गया तो मेरी उम्र का हवाला देकर उसे कौन रोकेगा बाबूजी? वह तो उम्र की परवाह करता नही।"

"तुम मेरे कहने का तात्पर्य समझी नही उमा! सयम ग्रहण कर लेने के बाद तो समग्र विश्व ही सन्तो का घर हो जाता है। आर्याओ को भी सतत भ्रमण करना पडता है। जन-शून्य, नितान्त एकाकी मार्गो पर चलना, भले बुरे स्थानो मे निवास करना कितना कठिन है। ऐसे स्थानो पर चोर, डाकू तथा अनेक पथभ्रष्ट, निकृष्ट व्यक्तियो का खतरा रहता है और तुम . . . ?"

"ओह, आप इन बातो की आशका न करे। ये सब भय कायर और निर्बल आत्माओ के लिये होते है। वैसे खतरे और भय तो अटवी और अट्टालिका दोनो जगहो मे समान ही हैं बाबूजी! जिन्हे प्राणो का मोह होता है वे भयभीत होकर अपने मार्ग से च्युत हो सकते है, किन्तु जिन्हे प्राणो पर ममत्व नही होता, वे प्राण देकर भी अपने प्रण की रक्षा कर लेते है।"

"पर बहूरानी! दुनिया क्या कहेगी? हमारे वश मे तो कभी किसी ने यह मार्ग ग्रहण नही किया। कौन-सा अभाव है हमारे यहाँ बताओ तो?"

"सच्चा साधक किसी अभाव के कारण साधना-पथ नही अपनाता। अन्यथा बडे-बडे राजा महाराजा करोडो की सम्पत्ति वाले और अनेकानेक चक्रवर्ती सम्राट अपने छ खड के राज्य को तृणवत् त्याग कर साधु क्यो बनते?"

"रही बात वश की, इस विषय मे आप गभीरतापूर्वक विचार करे।

कोई उत्तम कार्य भले ही कुल मे पहले कभी न हुआ हो, किन्तु वाद मे भी अगर होता है तो वह उत्तम ही माना जाता है , निकृष्ट नही । मेरे प्रव्रज्या लेने से आपके कुल का गौरव घटेगा नही पिताजी, वरन् वढ़ेगा ही । आपके निर्मल कुल को कभी मेरे कारण उपहास का पात्र वनने का अवसर आए, उससे पहले ही मैं प्राण त्याग दूँगी ।"

वावू प्रतापनारायणजी पुत्र वधू की दृढता और वुद्धिमत्ता मे परास्त होते जा रहे थे कि उसी समय वाहर से शोरगुल की आवाज आई और साथ ही उनके वडे पुत्र रमेशचन्द्र ने तेजी से आकर कहा—

"वावूजी ! वाहर पुलिस आ गई है ।"

"पुलिस.. .? पुलिस किसलिये आई है ?"

"जॉच करने ।"

"कैसी जॉच········?" वे गरज उठे । उनके स्वर की गम्भीर गर्जना से सभी के दिल दहल गये ।

"सुभाप ने आपकी ओर से पुलिस को रिपोर्ट कर दी है कि मेरी पुत्र-वधू उमा को उसके पिता जगतनारायणजी उसकी इच्छा के विरुद्ध वलपूर्वक साध्वी धर्म की दीक्षा दिला रहे है ।"

"कहाँ है सुभाप ?"

"वाहर ।"

"उसे अन्दर वुलाओ और सिपाहियो को वाहर राक दो ।" प्रताप-नारायणजी के नेत्रो के समक्ष देवपुरी से रवाना होते समय का वह दृश्य आ गया, जिस समय सुभाप ने आवश्यक कारण वताकर उनके साथ अशोका आने से इन्कार कर दिया था । पुत्र के अन्दर आते ही वे रोपपूर्वक वोले --

"सुभाप, यह क्या किया तुमने ?"

"जो करना चाहिये था· ··· ।"

"तो तुम्हे यही करना चाहिये कि मेरे दरवाजे पर पुलिस वुलाओ और जगतनारायणजी को जलील करो ?"

"लेकिन उन्होने भाभी को यहॉ लाकर साध्वी वनाने के लिये उकसाया है ।"

"झूठ है यह, तुम पिता के दिल को कैसे पहचान सकते हो ? उसे एक पिता ही समझ सकता है ।"

"अगर ऐसा है तो फिर वे अपनी पुत्री को कठिन व्रत अगीकार करने क्यो दे रहे हैं ? सयम पालन करना सरल वात है क्या ? जगतनारायणजी स्वय दीक्षा ले तव मालूम पडे ।"

"वकवास मत करो !" प्रतापनारायणजी लगभग चीख पडे । किन्तु जिनके लिये यह व्यग किया गया था वे जगतनारायणजी कही दूर थे नही, समीप ही कुर्सी पर वैठे थे ।

आरम्भ से अन्त तक उन्होने ससुर और वहू की वातचीत सुनी थी पर वोले वीच मे एक शब्द भी नही थे । और अव सुभाप का तीखा व्यग सुनकर भी उन्होने कुछ नही कहा । सिर्फ उनका चेहरा पत्थर के समान कठोर दिखाई दे रहा था और उससे किसी दृढ़ निश्चय की झलक मिलती थी ।

"वावूजी, मै भाभी को दीक्षा लेने नही दे सकता । किसी भी प्रकार उन्हे पुन घर ले जाना चाहता हूँ ।" सुभाप ने अधीरता से कहा ।

"क्या करोगे ले जाकर ? सूर्य को घर मे बन्द करके नही रखा जा सकता । उसका प्रकाश सारे ससार के लिये होता है । उमा ने केवल हमारे घर के लिये ही जन्म नही लिया है । वह सम्पूर्ण जगत की ज्योति वनेगी ।" कहते हुये प्रतापनारायणजी ने वाहर जाने के लिये कदम उठाया । किन्तु उनकी ओर देखते ही सुभाप चीख उठा—

"नही वावूजी, नही ! मै जानता हूँ आप वाहर जाकर क्या करेगे । मै आपको वाहर नही जाने दूँगा ।" कहते हुए उसने अपने दोनो हाथो से पिता के पैर पकड लिये । लेकिन वात के धनी वावू प्रतापनारायण रुके नही । सुभाप को धकेलते हुए उनके धीर कदम वाहर तक वढते चले गये ।

ज्यो ही उनकी भव्य और गौरवपूर्ण आकृति दरवाजे पर दिखाई दी, पुलिस इन्सपैक्टर और सिपाही सभी ससम्मान मन्त्रचालित से खडे हो गये । प्रतापनारायण जी सभी को पहचानते थे । वोले—

"क्यो रामसिह, क्या वात है...... ?"

"हुजूर, हम जानना चाहते है...... ।"

"कुछ भी जानने की आवश्यकता नही है आप लोगो को । मेरी पुत्रवधू अपनी इच्छा मे दीक्षा ले रही है, और मैने उसे आज्ञा दी है । इसी क्षण मेरे नाम से की हुई रिपोर्ट खारिज कर दी जाय ।"

"जो आज्ञा——!" कहते हुए इन्सपेक्टर ने मस्तक झुकाया और अपने साथियो सहित उलटे पैरो चल दिया।

जूए मे सर्वस्व हारे हुए धर्मराज युधिष्ठिर की तरह प्रतापनारायणजी जब निष्प्रभ होकर अन्दर आये तो उनकी आँखो मे अश्रु-कण स्पष्ट झलक रहे थे।

हर्ष और शोक से विह्वल, रोती हुई उमा उनके चरणो मे लोट गई। रुमाल से आँसू पोछते हुए प्रतापनारायणजी ने आशीर्वाद दिया—

"दोनो कुलो को दीप्त करना बेटी!"
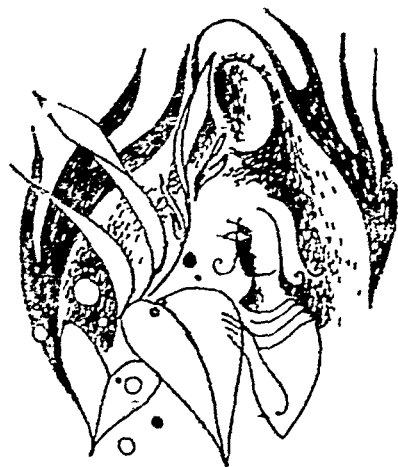
२०

पिता और पुत्री एक ही पथ पर

अगहन मास मे कृष्ण पक्ष के ग्यारहवे दिन अशोका ग्राम की चहल-पहल दर्शनीय थी। बावू प्रतापनारायणजी के समस्त सम्बन्धी तथा उमा के माता-पिता आदि सभी स्वजन परिजन दीक्षा समारोह मे सम्मिलित होने के लिये आ चुके थे। जोरो से तैयारियाँ हो रही थी। सभी किसी न किसी कार्य मे व्यस्त थे। सबके हृदयो मे हर्ष और विषाद का अनोखा-सम्मिश्रण था।

प्रात.काल आठ बजे माता के द्वारा कराया जाने वाला अन्तिम भोजन 'वीरथाल' का आयोजन, नौ वजे दीक्षा जुलूस का प्रस्थान और दस वजे दीक्षा कार्य आरम्भ होने का कार्यक्रम था।

सगी मा से भी अधिक प्यार करने वाली गुणवती ने हाहाकार करते हुए हृदय, किन्तु म्लान मुस्कान युक्त चेहरे से एक बडे-से थाल को नाना प्रकार के उत्तमोत्तम खाद्य पदार्थो से भर दिया। आज वह अपनी प्राणो से भी प्रिय पुत्री को अन्तिम वार अपने हाथो से भोजन कराने वाली थी। पुन. ऐसा अवसर जीवन मे आने वाला नही था। सम्पूर्ण स्नेह को वटोर कर आज वह वेटी पर उडेल देगी। समय होता देखकर उसने सुभाषिणी

को बुलाया और सभी समवयस्काओ सहित उमा को भोजन करने के लिये लाने का आदेश दिया।

सुभाषिणी अन्दर गई। देखा, कमरा खचाखच भरा हुआ था। उमा तैयार थी और उसका सनातन हँसमुख चेहरा और भी खिला हुआ था, कमल के समान। सुभाषिणी अत्यन्त सहनशील थी किन्तु आज उसका मन बहन के लिये मूक रुदन कर रहा था। किसी तरह भरे गले से बोली—

"उम्मी चल, समय हो गया है।"

"चलो दीदी,, पर देखो न रानी को! इसे कैसे समझाऊँ?" रात भर रोते रहने के कारण रानी की आँखे फूल की तरह हो गई थी। वह उमा को जकडे हुए बैठी थी, किसी भी प्रकार छोडने को तैयार नही थी। सुभाषिणी ने बडी कठिनाई से ननद को समझा बुझाकर अलग किया और भीडभाड के बीच मे से उमा को 'वीर-थाल' के पास लाई।

परिवार के सभी व्यक्ति वहाँ इकट्ठे थे। सुभाष मन-मारे एक ओर खडा था। उमा ने देवर के गहरे स्नेह को परखा, पास आई और मुस्कराते हुए कहा—"भैया! आज भी नाराज रहोगे? मेरे साथ थोडा-सा खाओगे नही?"

सुभाष ने उत्तर नही दिया। भावहीन चेहरे से भाभी को देखता रहा। लग रहा था जैसे उसकी समस्त खुशियो पर पाला पड गया हो।

देवर को अपने साथ खाने का निमन्त्रण देकर वह ससुर की ओर मुडी। बाबू प्रतापनारायण के शरीर का तो प्रत्येक रोमकूप ही जैसे जिह्वा बनकर आशीर्वाद दे रहा था। उमा ने प्रगाढ श्रद्धा और भक्ति से ससुर के चरणो का स्पर्श किया और धीरे-धीरे उठकर चारो ओर अपनी निगाह फैलाई। बुद्धिमान प्रतापनारायणजी पुत्रवधू की दृष्टि का तात्पर्य समझ गये। सुभाष की ओर देखकर बोले—

"जगतनारायणजी कहाँ है? जाओ सुभाष, दौडकर उन्हे बुला लाओ।"

सुभाष और साथ ही कई व्यक्ति जगतनारायणजी को बुलाने के लिये, दौडे, किन्तु शीघ्र ही वापिस लौट आए। मालूम हुआ कि जगतनारायणजी घर मे नही है। कल से ही किसी ने उन्हे नही देखा।

उमा का खिला हुआ चेहरा पलक मारते ही मानो मुरझा गया, किन्तु उसी क्षण बाहर से शोर-गुल के बीच आवाज आई—जगतनारायणजी आ गये।"

सबकी उत्सुक निगाहे दरवाजे की ओर उठ गई । पर शीघ्र ही वे विस्मय से भर गई, यह देखकर कि जगतनारायणजी एक और बड़ा विशाल थाल नौकरो से उठवाये हुए चले आ रहे है ।

अत्यन्त चकित होकर प्रतापनारायणजी ने पूछा—

"यह क्या जगतनारायणजी ! यह दूसरा थाल किसलिये ?"

"यह मेरे लिये है । यह 'वीर-थाल' मेरा है प्रतापनारायण बाबू ! मै भी दीक्षा ले रहा हूँ ।"

मानो नेत्रो के समक्ष ही बिजली गिर पडी हो, इस प्रकार वहाँ उपस्थित सभी व्यक्ति चौक पडे ।

उमा चीख पडी—"पिताजी ·········!"

हाँ बेटी ! आज मैं भी तेरे साथ इस कल्याणकारी पथ को अपना रहा हूँ ।"

"यह कैसे पिताजी ······?"

"बस ऐसे ही । वास्तव मे सुभाष ने मेरी आँखे उस दिन खोल दी । कहाँ हो सुभाष ? आओ बेटे ! आज मैं तुम्हारे हाथ से ही इस थाल मे खाऊँगा ।"

सबसे पीछे खडे हुए सुभाष का हृदय विगलित हो गया । वह अपने आपको रोक नही सका और तेजी से आकर जगतनारायणजी के पैरो पर गिर पडा ।

"मुझे क्षमा कीजिये बाबूजी !"

"क्षमा याचना कैसी पगले ! तुम्हारे उस एक वाक्य ने ही तो मुझे इस मानव-पर्याय की प्राप्ति का लाभ उठाने का अवसर दिया है । अन्यथा कौन जाने मेरी मति इस प्रकार की होती या नही । कितना अच्छा किया तुमने, मै सच्चे हृदय से तुम्हारा कृतज्ञ हूँ बेटा ! आओ मेरे साथ, आप भी आइये प्रतापनारायणजी ! हम सब एक बार और साथ-साथ भोजन कर ले ।"

प्रतापनारायणजी दिग्मूढ से खडे थे । जगतनारायणजी ने पास आकर अत्यन्त स्नेह से उनके दोनो हाथो को अपने हाथो मे ले लिया और वीर-थाल की ओर खीच कर ले जाते हुए बोले—

"आपसे छोटा हूँ, मुझे आशीर्वाद नही दीजियेगा क्या ?"

"मेरी अनेकानेक शुभकामनाएँ है जगतनारायणजी, और क्या कहूँ ? इस उम्र मे आप ऐसे कठिन जीवन को अपनाने जा रहे है · ·?"

"भाई साहव, इस नन्ही उम्र मे ही उमा ने जव इस मार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त कर ली है तो यह बूढा क्या ऐसा नही कर सकता ? मैने जीवन मे अनेक विपत्तियो का सामना किया है, और फिर यह मार्ग तो आत्मा को निरन्तर दृढ़ वनाने वाला है। आप चिन्ता न कीजिये।"

"और वेटी उमा! इस शुभ अवसर पर तुम्हारे लिये मेरी यही शुभ-कामना है कि तुम साध्वी समाज मे सर्वशिरोमणी वनो! आज का दिन हम सवके लिये परम हर्ष का है ही, पर मै उस दिन को धन्य मानूँगा जव कि आज जैसी ही धन्य-धन्य की आवाजे तुम्हारे जीवन के अन्तिम समय मे भी जन-जन के मुँह से उच्चरित होगी।"

अनन्दाश्रु वहाती हुई उमा ने पुन पिता के तथा ससुर के चरण छुए। गुणवती ने वेटी को हृदय से लगा लिया। सुभाषिणी काष्ठ की प्रतिमा के समान अपने स्थान पर खडी हुई व्यथा की आग से झुलस रही थी। उमा जव आकर उससे लिपट गई तव उसकी समाधि भग हुई। और भग्न हृदय से वहन का हाथ पकडकर उसे 'वीर-थाल' की ओर ले गई।

२१
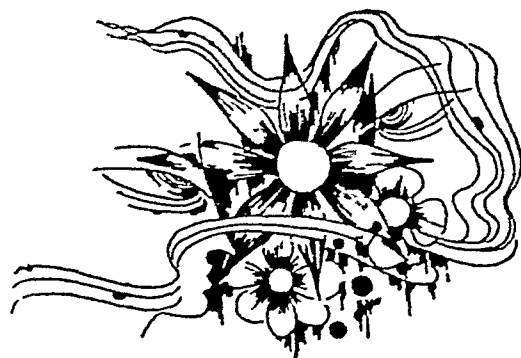
गुरुदेव

आचार्य श्री की जय हो ।

गुरुदेव श्री यशोभूषण जी महाराज की जय हो ।

सहस्रो कठो से निकलती हुई जयघोष की ध्वनियो के साथ-साथ आर्या गिरिजाकुमारी के गुरु श्री यशोभूषण जी महाराज ने अशोका ग्राम मे प्रवेश किया । झुण्ड के झुण्ड व्यक्ति आचार्य श्री के दर्शनार्थ उलट पडे । प्रत्येक व्यक्ति का हृदय हर्ष और श्रद्धा से परिपूर्ण हो गया । अशोका निवासी आज के दिन को अनन्तानन्त पुण्यो का परिणाम मान रहे थे ।

गुरुदेव के स्वागतार्थ आए हुए व्यक्ति एक विशाल जुलूस के रूप मे आचार्य श्री के पीछे-पीछे उस पडाल की ओर अग्रसर हुए जहाँ दीक्षा समारोह सम्पन्न होने वाला था ।

पडाल खचा-खच भर गया । हजारो व्यक्ति दूर-दूर से आकर दीक्षा समारोह मे सम्मिलित हो रहे थे । पडाल के ठीक मध्य मे एक विशाल और ऊँचा चबूतरा था जिसे नाना प्रकार की पताकाओ से तथा महापुरुषो के चित्रो से सजाया गया था ।

शनै शनै. आचार्य अपने शिष्य समुदाय सहित चबूतरे की ओर पधारे तथा गगनभेदी नारो के बीच उच्च आसन पर विराजमान हुए ।

स्वामी श्री यशोभूषणजी मरुधर प्रान्त के अग्रणी और महान विद्वान सन्त थे। वे षट्दर्शनो के मर्मज्ञ, धर्म के सजग प्रहरी तथा दृढ समाजसुधारक भी थे। सम्पूर्ण मरुधरा उन पर गर्व करती थी। उनकी भव्य और गौरव-पूर्ण आकृति बरबस ही आगत व्यक्तियो को मुग्ध बना देती थी। जिस समय उनका पाडित्यपूर्ण और मार्मिक प्रवचन होता, जनता स्तब्ध होकर एक-एक शब्द को हृदयगम करती। ऐसे धीर-गम्भीर गुरु का आगमन अशोका तथा बाहर से आई हुई असीम जनता की प्रसन्नता का कारण क्यो न बनता ?

आचार्य श्री उचित आसन पर आसीन हुए ही थे कि आर्या गिरिजा कुमारी ने वहाँ पदार्पण किया। जनता एक बार फिर हर्ष से कोलाहल कर उठी। वातावरण प्रसन्नता से भर गया।

श्री गिरिजाकुमारी ने असीम आह्लादपूर्ण हृदय से आकर गुरुदेव को वदन किया और करबद्ध होकर कहा—

"वदना स्वीकार हो गुरुदेव !"

"आपका साधना-पथ प्रशस्त हो भगवती !"

"सर्व प्रकार से सुख शान्ति तो है भते !"

"हाँ देवी ! आप और आपका समुदाय सानन्द है न ?"

"आपकी परम कृपा से भगवन् ! आज का दिन धन्य है कि आपके दर्शन की चिर प्रतीक्षित अभिलाषा पूर्ण हुई। मुझे बडी आशका थी आपके नियत समय पर पहुँच सकने के विषय मे भगवन् ! क्योकि दूरी बहुत थी और मार्ग कण्टकाकीर्ण तथा बीहड !"

"मार्ग बीहड था किन्तु आज पहुँचने की कामना उत्कट थी महासती जी ! इस शुभ अवसर पर हमे पहुँचना ही था।"

"अत्यन्त अनुगृहीत हूँ गुरुदेव !"

"अनुगृहीत होने की आवश्यकता नही आर्ये ! हमारा अपना ही तो कार्य है यह।"

"कृपा दृष्टि सतत ऐसी ही बनी रहे प्रभु ! आपका वरदहस्त ही मेरे मार्ग को मगलमय बनाता है।"

"यह आपका अपना विश्वास है भगवती ! वही साधना-पथ को सुगम और कल्याणमय बनाता है। किसी अन्य की शक्ति इसमे सहायक नही बनती।"

"नही भगवन्, गुरु का आशीर्वाद प्राप्त किये विना ही सुगमता से सिद्धि प्राप्त हो सकती हो ऐसा मैं नही मानती ।"

"अच्छा, अच्छा ! ऐसा ही सही ।" आचार्य यशोभूषण अपनी सुयोग्य शिष्या की शालीनता पर प्रसन्न होकर स्नेह भाव से मुस्कराए और बोले—

"दीक्षा सस्कार आरम्भ होने मे कितना विलव है आर्या ! क्या समय नियत किया गया है उसके लिये ?"

"दस वजे का समय है भगवन्, नौ वज चुके है । शीघ्र ही दीक्षा-जुलूस यहाँ आ पहुँचेगा ।"

"कन्या सयम पालन के योग्य है न ! परख कर ली आपने ?"

"मेरी समझ मे आपके कथनानुसार है गुरुदेव !" अल्पकालीन सम्पर्क मे ही मुझ पर उसकी बुद्धिमत्ता और दृढता का आश्चर्यजनक प्रभाव पडा है । लगता है कि उसका भविष्य अति-उज्ज्वल है । और फिर आपके द्वारा सस्कार किये जाने पर फिर क्या सन्देह रह जाता है इसमे ?"

"वडी प्रसन्नता हुई यह जानकर ।"

"एक और शुभ समाचार आज प्रात काल ही मिला है गुरुदेव !"

आचार्य श्री की किंचित् विस्मय और उत्सुकतापूर्ण प्रश्नवाचक दृष्टि गिरिजाकुमारी की ओर गई ।

"उमा के पिता वावू जगतनारायण जी भी आज ही आपके निकट प्रव्रज्या ग्रहण करके आपके चरणो मे स्थान प्राप्त करना चाहते है ।"

"ओह ! अति शुभ, ससार के समस्त प्राणियो का कल्याण हो ।"

२२

प्रथम चरण

जुलूस रवाना होने को था। घर मे तिल रखने की भी जगह नही थी और वाहर जनता उमड रही थी। तीव्र कोलाहल के कारण मनुष्य एक दूसरे की आवाज नही सुन पाते थे। विभिन्न गान मडलियो तथा वाद्य यन्त्रो की ध्वनियाँ दिगत को गुँजा रही थी।

वावू जगतनारायण जी के लिये दरवाजे के वाहर सिन्दूरी रग की कार खडी थी और उमा की सवारी के लिये सुन्दर रथ मँगाया गया था। उसमे ऊपर की ओर रेशमी झालरे, तथा लहराती हुई रग-विरगी पताकाएँ चारो ओर सौन्दर्य विखेर रही थी। रथ मे जुते हुए पानीदार घोडे, जिनकी पीठ पर जरी का काम की हुई झूले पडी थी, चल पडने के लिये अधीर हो रहे थे। और मानो उमा के रथारूढ होने मे विलव होने के कारण व्यग्रतापूर्वक हिनहिनाकर अपना असतोष प्रकट कर रहे थे।

समय होते ही जगतनारायण जी मगल-सूचक श्रीफल लेकर कार मे आ वैठे। मोटरकार तनिक आगे वढ़ी। उसका स्थान रिक्त होते ही वहाँ घण्टियो का मधुर रव करता हुआ रथ आकर खडा हो गया। ममतामयी मा गुणवती ने गहरे स्नेह से वेटी के भाल का चुँवन लिया और उसके आँचल को सूखे मेवो से भरते हुए हाथ मे नारियल थमाया।

आन्तरिक हर्ष उमा के उज्ज्वल चेहरे को और भी देदीप्यमान कर रहा था। उसके चमकते हुए नेत्र जिसकी ओर उठते, वही अपने को धन्य मानता। प्रफुल्ल हृदय से धीरे-धीरे कदम उठाती हुई वह रथ के समीप पहुँची। ऊपर चढने के लिये एक पॉव उठाकर पायदान पर रखा ही था कि रथ मे जुते हुए घोडो के सामने ही किसी के धडाम से गिरने की आवाज आई।

उमा चौक पडी। उठाया हुआ पैर उसने वापिस खीच लिया। घवरा कर इधर-उधर देखा। लोग कह रहे थे—

"मिरगी का दौरा आ गया है। उठाओ, उठाओ। रथ कैसे चलेगा ?"

"किसको मिरगी का दौरा आया है ? समीप ही खडे हुए किसी व्यक्ति से उमा ने पूछा।

"कुचेरा निवासी एक उच्च परिवार की महिला को तीस वर्ष से यह रोग है। जव भी इसका आक्रमण होता है, आठ-आठ दिन तक होश नही आता।"

सुनकर उमा क्षण-भर भाव-मग्न खडी रही। फिर अचानक ही चलकर मिरगी से पीडित उस महिला के पास पहुँची। उसकी हालत खराव हो रही थी। मुँह से झाग आने लगे थे और आँखे तितर-वितर हो रही थी।

कुछ भी न वोलते हुए उमा ने अपने आचल से किसमिस का एक दाना निकाला ओर उस महिला के मुँह मे डाल दिया।

जन-समुदाय हक्का-वक्का रह गया, यह देखकर कि किसमिस का दाना मुँह मे जाते ही उसमे से झाग निकलने वन्द हो गए। आँखो की दृष्टि स्थिर हुई और पाँच मिनिट के अल्पकाल मे ही महिला स्वस्थता का अनुभव करती हुई धीरे-धीरे उठकर खडी होगई। उठते ही उसने उमा के पैर छू लिये। लोगो ने उल्लसित होकर जय-जय के नारो से आकाश गुँजा दिया।

अत्यन्त सकुचित होती हुई उमा लौटी और धीरे-धीरे रथ पर आरूढ हुई। पुन जय-ध्वनि हुई और रथ चल पडा।

इतना विशाल जुलूस अशोका मे कभी नही देखा गया था। सवसे आगे वाजे वालो की कतारे थी, उनके पीछे धर्म की प्रभावना के द्योतक नाना प्रकार के झण्डे लिये हुए अनेक व्यक्ति थे। उनके वाद स्वय-सेवक, और स्वय-सेवको के पीछे वावू जगतनारायणजी की कार थी। कार से कुछ ही

पीछे उमा का रथ, और उसके साथ-साथ वृहत् जन-समूह गगनभेदी नारे लगाता हुआ चल रहा था।

करीव डेढ घण्टे मे वडी धूमधाम से अग्रसर होता हुआ जुलूस पाडाल के समीप आया। वाजे वाले एक ओर खडे होकर अपनी कला का प्रदर्शन करने लगे। झण्डे टिका दिये गए और लोग दौड-भाग करते हुए पाडाल मे जाकर सवसे आगे वैठने का प्रयत्न करने लगे।

जगतनारायणजी मोटर से उतरकर पडाल के फाटक की ओर चले। उमा भी धीरे-धीरे रथ से वाहर आई और पिता की तरह द्वार पर रखे मगल कलश मे चादी के कुछ रुपये डालकर उनके साथ-साथ पडाल के अन्दर प्रविष्ट हुई। पिता-पुत्री चलकर आचार्य श्री यशोभूपण जी के समक्ष आए और असीम भक्तिपूर्वक उन्हे वदन किया।

"दया धर्म का सतत पालन करो भव्य!" कहते हुए आचार्य ने अपना दाहिना हाथ ऊँचा उठाकर आशीर्वाद दिया।

"आज मै भी आपके चरणो मे स्थान प्राप्त करना चाहता हूँ भगवन्!"

"अगर आपको इसमे सुख है तो ऐसा ही हो आयुष्मन्! हमारी शुभ कामना है, आपका मार्ग निरापद वने।"

"और उमा वेटी·· ···?" आचार्य ने प्रथम वार उमा के प्रफुल्लित और दीप्त चेहरे की ओर देखते हुए सम्वोधित किया।

"आशीर्वाद दीजिये भगवन्!" उमा ने मस्तक झुकाया।

"तुम्हारी समस्त कामनाएँ सफलीभूत हो, और तुम निरन्तर आत्मा को विशुद्ध और उन्नत वनाती चलो।"

"मुझे ऐसी ही शक्ति प्रदान कीजिये गुरुवर्य!"

"पगली! वह शक्ति तो तुम्हारी आत्मा मे ही विद्यमान है। उसी की प्रेरणा से तुम आज साधना के राजमार्ग पर कदम रख रही हो।"

मूक कृतज्ञता प्रदर्शित करती हुई उमा निरुत्तर खड़ी रही।

"अच्छा, अव भगवती गिरिजाकुमारी को नमस्कार करो, और उनकी आज्ञा लेकर दीक्षा-मन्त्र ग्रहण करने के लिये प्रस्तुत होओ!"

"जो आज्ञा"

उमा ने आर्या गिरिजाकुमारी के समक्ष जाकर उनके चरणो पर अपना मस्तक रख दिया।

२३

मातृत्व विलख उठा

कैंची अनवरत चल रही थी और सुदीर्घ तथा श्यामवर्ण केश-राशि उमा के मस्तक से विलग होकर पृष्ठभाग मे आँचल फैलाए वैठी गुणवती की झोली मे इकट्ठी हो रही थी ।

गुणवती के टप-टप गिरते हुए आँसू वालो को भिगोते चले जा रहे थे । उसे लग रहा था, जैसे नाइन की कैंची सिर्फ उमा के वालो को ही नही वरन् उसके हृदय को भी विदीर्ण करती चली जा रही थी । अतीत की स्मृति से उसका दिल कराह उठा—

ये वही वाल थे जिन्हे उसने उमा के जन्म के पश्चात् होश सम्हालने तक सजाया, सँवारा और सुलझाया था । धोया पोछा और सुखाया था । माग निकाल-निकाल कर चोटी गूँथी थी । उलटी-सीधी वेणी लगाई थी, और इसके लिये उमा की क्रोध भरी झिड़कियाँ खाई थी । उमा कहती—

"यह वेणी कैसी लगाई है माँ ! तुम्हे तो लगाना भी नही आता । इतनी ढीली लगाते है क्या ?"

"वेटी ! अव मैं वूढी हो गई हाथ हिल जाते हैं ।" वह हँसी दवाकर उत्तर देती ।

"मगर उस दिन तुमने रुमाल मे रुपये बाँधे थे तब तो इतनी कसकर गाँठे लगाई थी कि मुझसे खुली ही नही। मै कुछ नही जानती मा, कसकर बाँधो।"

हारकर गुणवती फिर प्रयत्न करती। पर होता क्या ? उमा और अधिक नाराज होती—

"लो, अब की बार उलटो लगा दी वेणी, फूलो के मुँह तो बालो मे ही छिप गए।"

"तो अब मै क्या करूँ ? तेरे बाल ही जो इतने लम्बे और घने है।" बेचारी गुणवती खिसियानी होकर कह बैठती।

उमा मा के भोलेपन पर खिलखिलाने लग जाती। हँसती-हँसती कहती—

"वाह ! यह भी बालो का दोष है मा ?"

"लो और सुनो, बालो का नही तो क्या मेरा दोष है यह ?"

"हाँ तुम्हारा तो है ही। तुमने सीखा क्यो नही वेणी बांधना ?"

"कौन सिखाता ? तू तो थी ही नही उस समय।"

"अच्छा लाओ, अब सिखाऊँ।" कहती हुई वह गुणवती के सिर पर से ओढनी हटा देती। पर उसके बालो को देखकर विस्मय से कहती—

"अरे, तुम्हारे तो इतने से बाल है मा ! कहाँ बाँधूँ इसे ?"

"रहने दे, मेरे बाँधने की जरूरत नही उमा ! ला अब तेरे बाल गूँथ दूँ।"

"ऊँह, बिना वेणी के बाल क्या अच्छे लगेगे।" कहती हुई वह मुँह फुला लेती और क्रोध के मारे सारे बालो को पीठ पर बिखेर देती। समस्त पृष्ठ भाग पर लहराते हुए काले बालो मे उसका गोरा मुँह कितना सुन्दर लगता था ? साक्षात नागकन्या के सदृश ''।

गुणवती सोचती चली जा रही थी पर सहसा उसकी चिन्तन धारा मे व्याघात पडा। पुत्री के सारे कटे हुए बालो से उसका आँचल भर गया था।

अचानक उमा ने पीछे की ओर मुँह फेरा तो मा को रोते देख चौक पडी। पूछा—

"क्या हुआ मा ? रो क्यो रही हो ?

गुणवती कुछ भी न बोल सकी। चुपचाप आँसू बहाती रही। मा के हृदय की अवस्था का अनुभव करते हुए उमा ने पुन कहा—

"इनका अन्त तो एक दिन होना ही था, आज कैंची से कटकर अलग हुए है, अन्यथा एक दिन इन्हे अग्नि भस्म करती। क्या फर्क पडा ?"

गुणवती ने चीखकर उमा के मुँह पर अपनी हथेली रख दी और रोते-रोते कहा—

"मगल वेला मे इस प्रकार अशुभबोल मत बोल बेटी ! क्या करूँ मा का हृदय है, धैर्य नही रहता।"

किसी तरह आँसुओ का प्रवाह रोककर गुणवती ने दुग्ध के समान धवल वस्त्र उसे पहनाए और पुन. हृदय से लगा लिया। किन्तु समय हो चुका था अत उमा ने धीरे से अपने को मा के अक से छुडाया, अन्तिम वार उसके चरण-स्पर्श किये और विशाल स्त्री समुदाय सहित चरित्र-धर्म अगीकार करने के लिये चल दी।

बाबू जगतनारायण जी पहले ही आकर गुरुदेव श्री यशोभूषण जी के समक्ष उचित स्थान पर बैठ गए थे। भगवती गिरिजाकुमारी के समीप उमा के लिये नियत किया हुआ स्थान रिक्त था, और सब उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ज्योही उमा आई, सबकी विस्मय पूर्ण निगाहे उस पर टिक गई। शुभ परिधान मे आवेष्टित उसका शरीर और स्वर्गीय आभा से आलोकित सुन्दर चेहरा देखकर सभी को ऐसा लग रहा था जैसे साक्षात् सरस्वती उनके सम्मुख खडी हो।

उमा ने आचार्य श्री, तथा सन्त-समुदाय को नमस्कार किया। और फिर भगवती गिरिजाकुमारी के चरणो पर मस्तक नमाकर वह अपने स्थान पर आकर बैठ गई।

कुछ क्षणो बाद ही दीक्षा-सस्कार शुरू होने को था। उपस्थित जन-समूह ने उल्लसित होकर 'अहिसा परमो धर्म,' 'आचार्य श्री की जय', 'आर्या गिरिजाकुमारी की जय' आदि के अनेक नारे लगाए और उसके बाद सम्पूर्ण पडाल मे शान्ति हो गई।

जगतनारायणजी और उमा ने अपने-अपने स्थानो पर खड़े होकर नवीन जीवन अपनाने से पूर्व, अपने सम्बन्धियो से तथा उपस्थित जन-समुदाय

से अब तक के किये हुए अपराधो के लिये क्षमा याचना की और उसके बाद आचार्य ने दोनो के अभिभावको से दीक्षार्थियो को चरित्र धर्म ग्रहण कराने की अनुज्ञा प्राप्त की। अश्रुपूर्ण नेत्रो से उन लोगो ने अनुमति प्रदान की।

तत्पश्चात् आचार्य ने अरिहन्त सिद्ध, और सघ की साक्षी से सामायिक-सूत्र का उच्चारण किया। जिसका तात्पर्य जीवन पर्यंत मन, वचन एव शरीर से सावद्य योग (पापकारी कार्य) का परित्याग करना होता है।

सामायिक-पाठ पढाने के अनन्तर अन्य अनेक शास्त्रोक्त विधियाँ सम्पन्न की गईं। इस मगल-कार्य के अनुष्ठान मे अनुमानत. दो घण्टे का समय व्यतीत हुआ। पिता-पुत्री दोनो ने एकाग्रतापूर्वक तथा दृढ मनोवल सहित दीक्षा-मन्त्र स्वीकार किया।

जनता मन्त्र-मुग्ध होकर दीक्षा-सस्कार देख और सुन रही थी। किन्तु अब वातावरण पुन. कोलाहलमय हो गया। दो व्यक्ति चाँदी के थालो मे दीक्षार्थियो के केश लिये हुए पडाल मे आ गए थे। जिनके पास थाल पहुँचते वे अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक उनमे से दो-चार बाल निकाल लेते और मस्तक से लगाते किन्तु जो इनसे वचित रह जाते वे पाने के लिये व्यग्रता पूर्वक आवाजे लगाकर कोलाहल पैदा कर देते।

उमा के बालो से पूरा थाल भर गया था। उस वृहत् केश-राशि को देखकर लोगो के नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए। यहाँ तक कि आस-पास के गाँवो के जो अनेक ठाकुर आए थे उनमे से छ ठाकुरो के हृदय पर तो इतना प्रभाव पडा कि उन्होने उसी क्षण खडे होकर भविष्य मे शिकार न करने तथा मद्य-मास भक्षण न करने की प्रतिज्ञा आचार्य श्री से ग्रहण की।

उत्साह तथा आनन्द से भरा हुआ जन समुदाय जय जयकार कर उठा—

"मुनि श्री जगतनारायणजी की जय हो!"

"नव दीक्षिता आर्या उमाकुमारी की जय हो!"

२४

कदम बढ़ चले

दीक्षा समारोह सम्पन्न हुआ और उसके वाद ही वाहर से आए हुए व्यक्ति धीरे-धीरे लौटने का उपक्रम करने लगे। आचार्य श्री का अशोका मे कुछ दिन और ठहरने का कार्यक्रम था किन्तु आर्या गिरिजाकुमारी उसी दिन अजमेर की ओर प्रस्थान करने वाली थी।

प्रयाण करने मे पूर्व आर्या गिरिजाकुमारी आचार्य के दर्शनार्थ गई और भक्ति-भाव से गद्गद् होकर उन्हे वदन किया। सदा अनुग्रह वनाए रखने की प्रार्थना की। आचार्य यशोभूपण ने उसे स्वीकार करते हुए सस्नेह आशीर्वाद दिया और शुभ कामना प्रकट की।

वाल-साध्वी उमा ने भी परम श्रद्धापूर्वक आचार्य श्री को नमस्कार किया और हाथ जोडकर कहा—

"भगवन्! मेरे योग्य शिक्षा प्रदान कीजिये।"

आचार्य ने अत्यन्त ममतापूर्वक आपाद-मस्तक उसकी सौम्य, प्रफुल्ल और भव्य आकृति को निहारा और मधुर स्वर से कहा—

"वेटी! गुरु-आज्ञा का पालन करना, अप्रमत्त भाव से विनयपूर्वक सतत ज्ञानार्जन करना, और सर्वदा आचार-शुद्धि का ध्यान रखना। यही

चीजे तुम्हे साधना के शिखर पर पहुँचाएँगी । तुम्हारे लिये मेरा यही आदेश एव आशीर्वाद है ।"

फिर गिरिजाकुमारी की ओर मुडकर वोले—

"भगवती ! सदा सावधान और सजग रहकर उमा का मार्ग निर्देशन करना । यह वालिका तुम्हारा नाम दीप्त करेगी तुम्हारा गौरव वढाएगी ।"

"आज्ञा शिरोधार्य है भन्ते ! विदुषी गिरिजाकुमारी ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा और अपनी गुरु-भगिनी महिमावती को सवोधन किया—

"वहन ! अव चलना चाहिये । विहार का समय सन्निकट है, उससे पूर्व मुनि श्री जगतनारायणजी के दर्शन करले ।

तीनो आर्याओ ने पुन. आचार्य श्री को श्रद्धा सहित वदन किया और आवास के द्वितीय कक्ष की ओर अग्रसर हुई ।

मुनि जगतनारायणजी दत्तचित्त होकर किसी ग्रन्थ का अवलोकन कर रहे थे । आर्या गिरिजाकुमारी, महिमावती तथा अपनी नवदीक्षित पुत्री को आती देखकर भाव-विमुग्ध से उठ खडे हुए ।

"पधारिये भगवती ! आप सभी के हृदय प्रसन्न है न ?"

"हाँ भन्ते, आपकी शुभ कामना है । हम आज अशोका से प्रस्थान कर रही है ।"

"आज ही ... ?"

"हाँ आर्य ! आप तो अभी कुछ काल यहाँ विराजेगे ?"

"जी, जव तक आचार्य श्री की इस ग्राम के निवासियो पर कृपा है ।" कहते हुए उनकी दृष्टि उमा की ओर गई ।

"पिताजी ...! उमा कह उठी ।

"पगली ! अव मै साधू हूँ । खैर तुम दृढ मनोवलपूर्वक सयम-साधना करना । भगवती के इगितानुसार इस सत्पथ पर चलना । मैं आज निश्चित और परम सुखी हुआ हूँ ।"

उमा का हृदय गद्‌गद होगया और वाणी मूक । वह कुछ भी न कह सकी । कल तक पिता और आज उन्हे मुनि रूप मे देखकर उसके हृदय मे अनेक प्रकार की भावनाएँ उठ रही थी । उसी विचित्र मनोदशा मे वह आर्या गिरिजाकुमारी के साथ वहा से लौटी ।

निवास स्थान पर आकर देखा कि प्रतापनारायणजी वहाँ आए हुए हैं। उनका चेहरा देखकर उमा अवाक् रह गई। मूक व्यथा ने उनके गौरवर्ण चेहरे को श्याम-वर्ण वना दिया था। नेत्र हृदय मे दवाई हुई वेदना की स्पष्ट गवाही दे रहे थे।

"वावूजी ! यह क्या ... ?"

'वेटी ! ममता की करनी है यह। क्या करूँ, छूटती नही। प्रयत्न तो वहुत कर रहा हूँ। भगवान मुझे साहस प्रदान करे।"

"और कोई नही आया ? सुभाष भैया ? दीदी, ? रानी ?"

"सुभाषिणी दीक्षा-जुलूस के रवाना होने के वाद से ही वेहोश पडी है। इतने दिन हृदय पर पत्थर रखकर अपने दुख को दवाती रही पर अन्ततः धैर्य नही रख सकी। रानी उसी की सेवा शुश्रूषा मे लगी है और सुभाष दौड-धूप मे व्यस्त है।"

"किन्तु तुम चिन्ता मत करना उमा ! धीरे-धीरे सभी अपने आप पर कावू पा लेगे। तुम निश्चित होकर आत्म-साधना करो, और हमारे कुल को उज्ज्वल वनाओ। मुझे गर्व है कि तुमने दृढतापूर्वक यह सुमार्ग अपनाया है। ईश्वर तुम्हे सदा उच्चता की ओर अग्रसर करे। और हाँ, भगवती कहाँ है वेटी ?"

"आर्या अन्दर हैं, प्रस्थान करने की तैयारी मे व्यस्त है शायद। आप अन्दर पधारिये।"

वावू प्रतापनारायणजी धीरे-धीरे भगवती गिरिजा के समीप पहुँचे। वंदना की और वोले—

"वंदन स्वीकार हो आर्या !"

"धर्म पर दृढ रहे वन्धु ! कुशल है न ?"

"मालूम हुआ है कि आपका आज ही तीसरे पहर विहार होगा, अतः दर्शनार्थ आया हूँ।"

"वहुत अच्छा किया। और सव कहाँ हैं ?"

"वडी वहू अस्वस्थ है, इसलिये सव नही आ सके।"

"क्या हुआ सुभाषिणी देवी को ? गिरिजाकुमारी ने अत्यन्त उद्विग्न होकर पूछा।"

"वह तीन-चार घण्टे से बेहोश है भगवती ! बहुत प्रयत्न करने पर भी अभी तक होश नही आया।"

"अच्छा ! यथोचित उपचार कीजिये प्रतापनारायणजी ! हम रवाना होकर उधर से ही आयेंगे। वही सुभाषिणी देवी से भी मिल लेंगे। इसके अलावा आप उमा की चिन्ता ......।"

"उमा की चिन्ता मुझे तनिक भी नही है भगवती ! प्रतापनारायणजी बात काटकर बोले—आपके समीप रहकर उसे क्या कष्ट हो सकता है ? मोह अवश्य है, क्योकि मैने अपना लडका और बहू दोनो ही उसे माना है" कहते-कहते प्रतापनारायणजी का कण्ठ अवरुद्ध हो गया।

"उसे लेकर उद्विग्न न हो भद्र ! आज साधना-पथ पर उसका प्रथम चरण है, पर शीघ्र ही आप उसे शिखर पर आसीन पायेंगे।"

"आपके वचन निश्चय ही सत्य होगे आर्या ! सुनकर मुझे अत्यन्त संतोष हुआ।" कहते हुए प्रतापनारायणजी ने भगवती को पुन नमस्कार किया और वहाँ से लौट पडे।

उस दिन गाँव से कुछ ही दूरी पर रात्रि को ठहरना था अत विहार का समय तीन बजे रखा गया था किन्तु जनता प्रात काल की भाँति दो-ढाई बजे से ही इकट्ठी होनी शुरू होगई।

विशाल जन-समूह से उठते हुए जय-घोष के नारो के बीच आर्या गिरिजा कुमारी ने आर्या महिमावती तथा उमा के साथ प्रस्थान किया। उमा का हृदय हर्ष तथा संतुष्टि का अनुभव कर रहा था। सुख और दुखमय अतीत की सीमा उसने पार करली थी। और आज आत्म-संतोष के नए क्षेत्र मे चरण रख दिये थे। उसे लग रहा था मानो किसी भयानक स्थान से वह एक-एक कदम दूर होती जा रही है और मोह-माया के बंधन की एक-एक कडी टूटती जा रही है। अचानक ही गिरिजाकुमारी के शब्दो से उसकी भाव-मग्नता मे व्याघात पहुँचा। "उमा ! ठहरो।"

उसने चौककर देखा—बाबू प्रतापनारायणजी सपरिवार सामने खडे है और भगवती पूछ रही है—

"सुभाषिणी कैसी है—अब ?"

"उसे होश आया है भगवती ! किन्तु निर्बलता का अनुभव करने के कारण लेटी हुई है। दर्शन देकर कृतार्थ कीजिये।"

सबने अन्दर प्रवेश किया। सुभाषिणी भगवती और उमा को देखते ही

किसी तरह उठकर बैठ गई और खडे होने का प्रयत्न करने लगी किन्तु गिरिजाकुमारी ने आग्रहपूर्वक उसे उठने से रोका—

"नही, नही, उठो नही बहन ! तुम अभी अस्वस्थ हो।"

सुभाषिणी सजल नयनो से बहन की ओर निहारने लगी जैसे उसकी इस नवीन छवि को वह अपने नेत्रो मे ही अकित कर लेगी। उमा ने बहन के गम्भीर स्नेह का अनुभव करते हुए कहा—

"दीदी ! इतनी कायरता क्यो ? आज का दिन तो बडे ही हर्ष का है। तुम्हारी बहिन ने ऐसे जीवन मे प्रवेश किया है जिसमे केवल सुख और सतोष ही है। दुख का नाम निशान भी नही।"

"सत्य है बहिन ! इसीलिये मेरी आँखो मे आनन्दाश्रु आ गए है। किन्तु बुद्धि की बात को हृदय सरलता से स्वीकार नही करता। दोनो का मेल होने मे कुछ समय तो लगेगा ही।" कहते हुए सुभाषिणी ने गिरिजाकुमारी से विनयपूर्वक कहा—

"भगवती, कृपया मगल-मत्र दीजिये। आपको खडे-खडे कष्ट हो रहा है और बाहर जनता प्रतीक्षा कर रही है।"

सुभाषिणी के व्यक्तित्व की महत्ता का अनुभव करते हुए गिरिजा कुमारी ने वियोग-व्याकुल परिवार को मगल-मत्र दिया और मदगति से चल दी।

२५

अध्ययन निरता
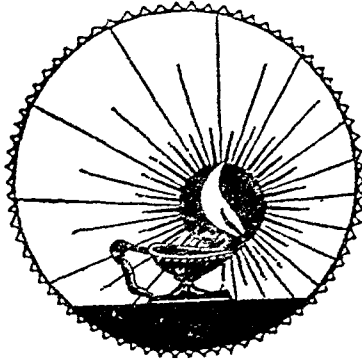
"उमा !"

"जी।"

"इधर आओ बेटी !"

"क्या आज्ञा है भगवती ? उमा ने शीघ्रतापूर्वक आकर कहा।

"आज बसत पचमी है न ?"

"जी हाँ··· !"

"मै आज से तुम्हारा अध्ययन प्रारम्भ कराना चाहती हूँ।"

"ओ, मै बहुत उत्सुक हूँ भगवती ! किस समय प्रारम्भ करायेगी आप ?

"अभी इसी समय। अमृतयोग है, ज्ञानार्जन के लिये यह समय अत्यन्त शुभ है।"

उमा ने तत्क्षण गिरिजाकुमारी को तीन बार वदन किया और करबद्ध खडी हो गई।

आर्या गिरिजाकुमारी ने उसे 'कल्याण-मन्दिर' स्तोत्र के चार श्लोक पढाये, समझाए और उन्हे कण्ठस्थ करने के लिये कहा—

"देखो उमा ! एक घटे के अन्दर ये चारो श्लोक तुमसे कठाग्र सुनूँगी। याद कर लोगी ?"

"आपकी कृपा से अवश्य करलूँगी भगवती !"

"अच्छा जाओ, एकान्त मे बैठकर इन्हे याद करो।"

अत्यन्त हर्षित होती हुई उमा वहाँ से चल दी और आवास के भीतरी भाग मे जाकर श्लोक याद करने लगी।

ठीक एक घटे बाद वह लौट आई। उसे देखकर गिरिजाकुमारी प्रसन्न हुई। पूछा—

"याद कर लिया ?"

"जी ! सुन लीजिये।"

किन्तु गिरिजाकुमारी चकित रह गई जब उमा ने चार श्लोक ही नही वरन् 'कल्याण-मदिर' के दस श्लोक विना उच्चारण की एक भी अशुद्धि किये जबानी सुना दिये। मारे हर्ष के उन्होने अपनी कुशाग्र बुद्धि शिष्या को खीचकर हृदय से लगा लिया।

शरमाती हुई उमा ने कई क्षणो तक अपना चेहरा भगवती के वक्ष मे छुपाये रखा, मानो उसे पुन. मा की गोद मिल गई हो। अस्फुट स्वर से उसके मुँह से निकल गया · ··· "माँ"

पृथ्वी पर आते ही माँ को खो देने वाली उस मातृहीना वालिका को माँ की सी ममता से धीरे-धीरे अलग करके उसका चिबुक उठाते हुए भगवती बोली—

"वास्तव मे तू एक अमूल्यरत्न है उमा !"

"ऐसा न कहिये, मै सिर्फ आपकी चरण-रज हूँ भगवती ! आपकी कृपा से कुछ प्राप्त कर सकूँगी।"

"अवश्य बेटी, मुझे विश्वास है कि तुम परमविदुषी बनकर साध्वी समाज मे गौरवपूर्ण स्थान बनाओगी।"

दीक्षा के पश्चात् दो माह के अल्प-काल मे ही उमा के विनय, वाणी के माधुर्य और शिशु के-से सरल व्यक्तित्व ने गिरिजाकुमारी के मन को मुग्ध कर लिया। यह समय उनका भ्रमण मे ही व्यतीत हुआ था। बीच-बीच मे ग्रा गे मे ठहरना अवश्य होता था किन्तु अल्प-काल के लिये ही। अत: वे उमा का अध्ययन आरम्भ नही कर सकी थी। अब अजमेर पहुँचने के बाद वसत पचमी का शुभ दिन उन्होने उत्तम मानकर इस शुभ कार्य के लिये नियत किया था। और पहले दिन ही ज्ञानार्जन मे उसकी लगन और

तीव्र-बुद्धि का परिचय पाकर उनका हृदय भविष्य के लिये आशा से भर गया। उन्होंने अपनी सम्पूर्ण शक्ति उस पर लगाने का निश्चय कर लिया है।

यद्यपि उनकी अन्य शिष्याये भी थी पर उनका वर्षावास इस वार जोधपुर मे नियत होने के कारण वे उमा के दीक्षा समारोह मे सम्मिलित न हो सकी थी। सयमाचरण मे सभी दक्ष थी। किसी प्रकार की शिथिलता उनमे से किसी मे भी नही थी। फिर भी विचारो का सामजस्य न होने के कारण वे गिरिजाकुमारी को प्रभावित नही कर सकी थी। प्रगाढ आत्मीयता का अभाव रहता था और गिरिजाकुमारी का मन सबके होने पर भी एकाकीपन का अनुभव करता था। उन्हे सहारा एकमात्र अपनी गुरु-बहन महिमावती का था। आर्या महिमावती मानो उनकी पूर्वजन्म की वहिन ही थी। इसलिये इस जन्म मे भी क्षण भर के लिये भी उनमे विलग नही रहती थी। वह भगवती को अपनी गुरु-बहन नही, वरन् गुरु के समान ही मानती थी—उतनी ही श्रद्धा, आदर और स्नेह उनमे रखती थी।

इसलिये भगवती गिरिजाकुमारी के सभी कार्यों की तरह नवदीक्षित उमा की सार-सम्हाल का दायित्व भी आर्या महिमावती पर आ पडा। गिरिजाकुमारी को अपने नित्य-नियम के अतिरिक्त प्रतिदिन प्रात काल प्रवचन और दोपहर को आगत व्यक्तियो से वार्तालाप तथा ज्ञान-चर्चा के कारण अधिक अवकाश नही मिल पाता था।

आर्या गिरिजाकुमारी और महिमावती, दोनो का उमा पर समान स्नेह था, फिर भी उनमे वडा अन्तर था। गिरिजाकुमारी का हृदय अत्यन्त कोमल था अत उनके शासन मे कठोरता आ नही पाती थी। इसके विपरीत महिमावती कोमल हृदया होने पर भी शिक्षा-दीक्षा के समय अत्यन्त कठोरता का वर्ताव रखती थी। फलस्वरूप मृदुता और कठोरता दोनो के वीच उमा का जीवन वनने लगा।

प्रात काल ब्राह्ममुहूर्त मे ठीक चार वजे उमा को उठना होता। दो घटे स्वाध्याय, ध्यान और प्रतिक्रमण मे व्यतीत होते। तत्पश्चात् वह ईश-स्तुति करती। कोकिल-कठी उमा का मधुर स्वर सवको तन्मय वना देता।

इस सवके वाद भास्कर के उदित होते ही प्रात कालीन क्रियाओ से निवृत्त होने के वाद आर्या महिमावती उमा को अध्ययन करने का आदेश देती।

यद्यपि इस वीच महाविदुषी गिरिजाकुमारी का प्रवचन होता, हजारो

व्यक्ति दूर-दूर से आकर प्रवचन का लाभ लेते किन्तु उमा को महिमावती केवल रविवार के दिन ही प्रवचन सुनने के लिये छुट्टी देती। वाकी सभी दिनो मे उसे दत्तचित्त होकर ज्ञानाभ्यास करना पडता। गिरिजाकुमारी महिमावती के द्वारा की गई इस व्यवस्था मे तनिक भी हस्तक्षेप नही करती वरन् निश्चित होकर अपना कार्य करती। उमा को भिक्षाचरी के लिये भी नही ले जाया जाता। वह अपने स्थान से तभी उठ पाती जव आहार आ चुकता। किन्तु आहार ग्रहण के समय समस्या विकट हो जाती।

गृहस्थ जीवन मे पति चम्पकराय के निधन के वाद ही उमा ने अपने जीवन को कठोर नियमो मे वाँध लिया था। आभूषण मात्र का परित्याग कर वह श्वेत वस्त्र पहनती थी। वाँह पर सिर टिकाकर सिर्फ एक चटाई पर शयन करती और दिन मे नियत समय पर अल्पाहार करती थी। इसलिये वहुत दिनो के अभ्यास के कारण और वैसे भी अल्पाहारी होने के कारण वह अव भी आहार नाम मात्र का करती।

महिमावती उस वात पर वहुत चिढती। अपने सामने विठाकर उसे खिलाती। कम खाने पर कहती—

"तू तो गजव करती है उमा! सयम निर्वाह करने के लिये आखिर इस शरीर को खुराक तो देनी ही पडती है। कुछ तो और ले! यह दूव पडा ही रह गया।"

वेचारी उमा निरीह दृष्टि से भगवती गिरिजाकुमारी की ओर देखने लगती।

गिरिजाकुमारी हँस पडती और महिमावती को सवोधन कर कहती—

"महिमा! लगता है, इसे भूख नही है। न हो तो रहने दो अव।"

"हाँ, हाँ, रहने दो अव ·····। तो इसका मतलव है कि आज पढाई से छुट्टी ···· ?"

गिरिजाकुमारी के नेत्र आश्चर्य से फैल जाते। पूछती—"पढाई से छुट्टी कैसे? पढेगी नही यह आज?"

"जव खाएगी नही तो पढेगी कैसे? अभी इसका पेट भरा कहाँ है?"

"इसके पेट की वात ··।" भगवती वाक्य अधूरा छोडकर पुन हँसते लगती।

"मैं सव जानती हूँ भगवती! न खाए यह, मुझे भी आज भूख नही है। कहती हुई महिमावती उठ जाती।

हारकर गिरिजाकुमारी उमा को और थोड़ा बहुत खा लेने का संकेत करती।

निरुपाय उमा किसी तरह दो-चार ग्रास और निगलने की कोशिश करती, अथवा आँख मीचकर मुँह मे दूध उँडेल लेती और उठकर काष्ठ के पात्र स्वच्छ करने लगती।

महिमावती तब चैन की साँस लेती। किन्तु उनकी यह मृदुलता दोपहर होते ही छूमंतर हो जाती। आहार के पश्चात् अल्प विश्राम के बाद ही महिमावती सजग प्रहरी के समान नियुक्त हो जाती। प्रथम वे उमा को भगवती के समीप शास्त्र-अध्ययन के लिये भेज देती और उन्हे हजार आवश्यक कार्य होने पर भी नियत समय तक उमा को पढ़ाना पड़ता। उसके बाद वे स्वय उसे अन्य विषयो का अध्ययन करातीं। ठीक चार बजे तक उमा पढती। इस बीच, एक मिनिट भी व्यर्थ खोने, अथवा किसी से बात करने का अवकाश महिमावती उसे नही देती। हा, सायकाल मे भिक्षा लाने के लिये वे कभी-कभी उसे अवश्य अपने साथ ले जाती।

रात्रि को पुन· नित्य-नियम करने के पश्चात् दिवस मे किये अध्ययन को दुहराया जाता। कभी-कभी नीद के कारण उमा को जमुहाइयाँ आने लगती, देखकर गिरिजाकुमारी को दया आ जाती। वे महिमावती से बड़े नरम शब्दो मे कहती—

'इसे नीद आ रही है बहन! अब सो जाने दो। कल याद कर लेगी।'

"नही, यह नही हो सकता।" महिमावती कडा विरोध करती।

"पर अभी इसकी उम्र ही क्या है? बच्ची ही तो ठहरी। धीरे-धीरे अभ्यास करती रहेगी।"

ज्ञानाभ्यास बचपन मे ही होता है भगवती! वृद्धावस्था मे नही। दूसरे हम 'पके पान' है, न जाने कब झड जायँ! फिर कौन इस पर ध्यान देगा?

सुनकर गिरिजाकुमारी मौन हो जाती। गुरु-बहन के स्नेहमय शासन मे व्याघात डालने की उनकी हिम्मत न होती। जागते हुए भी वे चुपचाप महिमावती की लगन और सतर्कता पर विचार किया करती।

उधर महिमावती उमा से पूछती—"नींद आ रही है बिटिया?"

"आ तो रही है आर्या!" उमा सहज भाव से स्वीकार कर लेती।

"पर सो जाने मे कैसे काम चलेगा ? आ, तुझे कोई कथा सुनाऊँ ।"

"आपकी ससुराल की कथा सुना दीजिये। कैसे थे आपके पति ? आपने किस प्रकार दीक्षा अंगीकार की ?"

"दुर पगली ! यह भी कोई सुनाने की बात है ?"

"फिर मेरी नीद कैसे उडेगी ?" वह महिमावती के गले मे अपनी बाँहे डाल देती और अपनी स्वाभाविक परिहास-वृत्ति के कारण आग्रह करती।

"बताइये न ! कैसे थे वे ?"

"बहुत अच्छे, खूब सुन्दर, बहुत धन था उनके पास।"

"ओह, फिर ·· ·· ·····?"

"फिर क्या, धनवानो को क्रोध बहुत आता है। मुझसे भी कभी-कभी झगड पडते, कहते—निकल जाओ मेरे घर से !"

"तब आप क्या कहती थी ? उमा की नीद उड जाती।

"मैं ···? मै और क्या कहती ? छोटी-सी तो थी ही, कह देती—"तुम निकल जाओ।"

"वाह, वाह, उसके बाद क्या होता ?" उमा खिलखिला कर हँसने लगती।

"उसके बाद की बात कल बताऊँगी। आज अब पाठ सुना तू !"

"अच्छा सुनाती हूँ आर्या ! पर कल अवश्य सुनूँगी आगे की बात।"

"हाँ, हाँ, जरूर सुनना !"

इस प्रकार पाँच-सात मिनट परिहास मे व्यतीत होते और उमा की नींद गायब हो जाती। तत्पचाश्त् घटे दो घटे ज्ञान-साधना मे लगाकर महिमावती उसे नन्ही बालिका के समान अपने पास सुला लेती, और थकी हुई उमा कुछ क्षणो मे ही निद्रा मग्न हो जाती।

२६

श्रम सार्थक हुआ

सूर्य उदित होता रहा और अस्त होता रहा। दिवस, सप्ताह, पक्ष, माह और वर्ष बीतते चले। साथ ही चलती रही उमा की अनवरत साधना। स्थान बदलते रहे, ग्राम बदलते रहे और उमा को ज्ञान-दान देने वाले आचार्य बदलते रहे, किन्तु ज्ञान-प्राप्ति के लिये उमा की लगन और प्रयत्नो मे शिथिलता नही आई।

उसने दिन और रात्रि का ध्यान नही रखा, शीत और ग्रीष्म की परवाह नही की, ग्राम और नगर मे अन्तर नही माना। बस एक ही लक्ष्य उसके सामने था—"ज्ञान-प्राप्ति।" उस ओर ही उसके मन और प्राण उन्मुख थे। दीन दुनिया से उसे सरोकार नही था। कौन आया, कौन गया, इसका खयाल नही था। भूख-प्यास की चिन्ता न थी, चिन्ता थी सिर्फ ज्ञानार्जन करने की।

किया हुआ अथक परिश्रम निष्फल नही गया। छ. वर्ष के अल्पकाल मे ही उमा ने नन्दी सूत्र, उत्तराध्ययन, दशवैकालिक, आचाराग, स्थानाग आदि बत्तीस शास्त्रो का गूढ अध्ययन कर लिया। 'सिद्धान्ताचार्य' परीक्षा पास कर ली।

जिस दिन परीक्षा का परिणाम घोषित हुआ, उमा ने आकर भगवती

गिरिजाकुमारी के चरण-स्पर्श किये । गिरिजाकुमारी ने परम हर्ष के साथ अपनी विदुषी शिष्या के मस्तक पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और कहा—

"तुम्हारी ज्ञान-साधना का समस्त श्रेय महिमावती को है उमा! उसने सजग यक्ष की तरह तुम्हारे ज्ञानाभ्यास मे प्रहरी का कार्य किया है। कभी किसी प्रकार का व्यवधान नही आने दिया। चलो उन्हे प्रमाण करो।"

भगवती स्वय उमा को लेकर आवास के भीतरी कक्ष की ओर गई। पुकारा "महिमा बहन! कहाँ हो तुम?"

आर्या महिमावती उस समय अपना रजोहरण बाँध रही थी। भगवती का आव्हान सुनते ही चोककर कक्ष से बाहर आई। अत्यन्त चकित होकर कहा—

"भगवती आपने कष्ट किया? मुझे क्यो न बुलवा लिया?

"तुम्हे बधाई देने आई हूँ बहन! तुम्हारी शिष्या जैनसिद्धान्ताचार्य परीक्षा उत्तीर्ण कर चुकी है।"

शरमाई हुई उमा अब तक महिमावती के परो पर अपना मस्तक रख चुकी थी।

आर्या महिमावती के नेत्रो मे हर्ष के आँसू छलक आए। बडे प्यार से उन्होने उमा को उठाया और भगवती को सम्बोधन करते हुए कहा—

"मैंने क्या किया है भगवती! सदा इसे ताडना ही तो दी है।"

"ऐसा मत कहो बहन, अगर तुमने इसके साथ अहर्निश कष्ट न उठाया होता तो इतनी जल्दी यह शुभ दिन कैसे आता?"

"वाह! क्या सारा श्रेय मुझे ही है? वास्तव मे तो इसकी कुशाग्र बुद्धि ने ही आज इसे इस योग्य बनाया है। अपनी अटूट और तीव्र लगन से इसने सरस्वती की खूब अर्चना की है?"

गिरिजा कुमारी ने प्रत्युत्तर नही दिया किन्तु मन्दस्मित और आन्तरिक प्रसन्नता से उनका चेहरा और भी उज्ज्वल हो गया।

"एक बात कहूँ भगवती?" अचानक ही महिमावती ने कहा।

"अवश्य कहो बहन, क्या बात है?"

"क्यो न हम आज के इस शुभ दिन की स्मृति मे उसका नाम ही अर्चना रख दे ?"

"सुझाव तो उत्तम है। क्यो उमा ! पसन्द है तुम्हे यह नाम ?"

"आप मुझे जैसे भी पुकारेगी, पसन्द आएगा। उमा ने धीरे से उत्तर दिया।

वार्तालाप चल ही रहा था कि, उपाश्रय के सेवक ने आकर नमस्कार करते हुए कहा—

"भगवती ! एक यतिजी पधारे है। आपको स्मरण कर रहे है।" सुनकर गिरिजाकुमारी बाहर आई। देखा, यतिजी खडे है। लम्बा कद, गठा हुआ सुडौल शरीर और उस पर श्वेत रग के वस्त्र। चेहरे पर व्यक्तित्व की झलक स्पष्ट दिखाई दे रही थी, और देखने वाले के हृदय को प्रभावित करती थी।

'आप सब सुख-शान्ति पूर्वक है ?' कहते हुए यतिजी ने सेवक द्वारा लाया हुआ आसन ग्रहण किया।

"आनन्द है, कृपया अपने शुभ नाम से अवगत कीजिये।"

"मुझे आदिसागर कहते है।"

"ओह, आदिसागरजी आप ही है ? आपकी तो मैने इस रण गाँव वालो से वहुत प्रशसा सुनी है। वडी प्रसन्नता हुई आपसे मिलकर। कहिये कैसे अनुग्रह किया आज ?"

"आज मै एक कुण्डली वनाकर लाया हूँ भगवती !"

"कुण्डली ? किसकी कुण्डली ? भगवती ने आश्चर्य पूछा।

"आपकी लघु शिष्या की। क्या नाम है उनका ?"

"उमा, पर आज से 'अर्चना।'

"यह कैसे ?" कौतूहल पूर्वक यतिजी ने पूछा।"

"अपनी अटूट साधना और एक निष्ठ अर्चना से उसने देवी सरस्वती को प्रसन्न किया है, अत हमने आज से ही उसका नाम 'अर्चना' रख दिया है।"

"वहुत सुन्दर, मेरी वनाई हुई कुण्डली भी उनका भविष्य अत्यन्त उज्ज्वल वता रही है।"

"पर आपने उसकी कुण्डली वनाई कैसे ?"

"चाल देखकर।"

"चाल देखकर ही आपने कुण्डली बना ली ?" गिरिजाकुमारी के विस्मय का पार न रहा ।

"सतीजी ! मैं चेहरा अथवा चाल देखकर ही किसी भी मनुष्य की भूत और भविष्य की अनेक बाते बता देता हूँ। कल सायकाल जब आप तीनो जगल की ओर पधार रही थी, मैने पृष्ठभाग की ओर से आर्या अर्चना-कुमारी को देखा । देखकर इतना प्रभावित हुआ कि अपने आपको रोक नही पाया और उनकी कुण्डली भी बना डाली । जीवन भर मे मैंने ग्रह-नक्षत्रो का इतना जबर्दस्त जोड़ कही नही देखा । मैं स्वय इतने उत्कृष्ट लक्षण देखकर आश्चर्य मे अभिभूत हूँ ।"

"यह तो अत्यन्त सतोषप्रद बात है यतिजी ! बताइये, अर्चना का आगामी जीवन कैसा होगा ?" कहते हुए गिरिजाकुमारी ने सेवक से कहा—

"भाई नारायण, जाकर देखो आर्याएँ क्या कर रही है ? अगर किसी आवश्यक कार्य मे व्यस्त न हो तो कहना, मैं स्मरण कर रही हूँ ।"

नारायण उसी क्षण गया और कुछ मिनिटो मे ही महिमावती उमा को लेकर बाहर आई ।

"भगवती, आपने याद किया है ?"

"हाँ बहन, आओ, बैठो ! देखो आज यतिजी अर्चना की कुण्डली बनाकर लाए है ।"

महिमावती गिरिजाकुमारी के समीप बैठ गई और सकुचाती हुई उमा उनके पीछे

"हाँ, अब बताइये यतिजी ! अर्चना के भविष्य की उल्लेखनीय बाते कौन-कौन-सी है ? गिरिजाकुमारी ने वार्तालाप का सूत्र पुन हाथ मे लेते हुए, पूछा ।

आदिनागरजी ने एक बार उमा का चेहरा देखा और कहा—

"तनिक अपना हाथ तो फैलाइए" और उमा के हाथ बढा देने पर उसका अवलोकन करते हुए कहा—

"भगवती ! क्या पहले भूतकाल की कुछ बाते बताऊँ ?"

"नही नही ! भूतकाल की बातो को दोहराने मे क्या लाभ ? आप कृपया आगामी जीवन से सम्बन्धित बाते बताने का कष्ट कीजिए ।"

"अच्छी बात है, देखिये ! अर्चनाकुमारी की बुद्धि अत्यन्त कुशाग्र है, अत: यह अनेक शास्त्रो का तथा समस्त दर्शनो का ज्ञान प्राप्त कर उच्चकोटि की विद्वत्ता हासिल करेगी।"

"इनकी प्रवचन-कला लोगो पर आश्चर्यजनक प्रभाव डालने वाली, अत्यन्त सरस और मर्मस्पर्शी होगी।"

"ग्रहो का भोग बताता है कि यह लम्बे प्रवास करेगी और उस काम मे अनेक अनार्य क्षेत्रो मे भी सफलता पूर्वक धर्म प्रचार करती हुई विचरण करेगी।"

"प्रवास काल मे अनेक बाधाएँ आएँगी। पहाडी प्रदेशो मे कई बार मृत्यु का भय भी आ उपस्थित होगा पर सभी विघ्न टल जाएँगे।"

"साध्वी समाज मे उत्कृष्ट स्थान प्राप्त करते हुए अत्यन्त ख्याति-लाभ करेगी।"

"व्यक्तित्व अति मधुर और विचार उच्च होगे।"

"कहते हुए यतिजी क्षण भर के लिये रुके। लगा कि वे कुछ और कहना चाहते है पर कहने मे झिझक का अनुभव कर रहे है।"

"और क्या बात है यतिजी ! बताइये, आप रुक क्यो गए ?"

"जीवन मे कुछ अप्रिय और कष्टकर बाते भी होती है महादेवी ! जिन्हे कहने मे कुछ संकोच का अनुभव होता है।"

"इसकी आप चिन्ता न कीजिये ! साधु को हर्ष और शोक क्या ? आप निस्सकोच कहिये।"

"अर्चनाकुमारी के मस्तक पर आपका साया अधिक नही है।"

सुनकर उमा चौक पडी, और उसका चेहरा म्लान हो गया। किन्तु गिरिजाकुमारी हँस दी—"ओह, यह कोई अनहोनी बात है यतिजी ? क्या ससार का कोई भी प्राणी चिर काल तक बना रह सकता है ? अच्छा और. ..?"

"और अर्चनाजी को हृदय-रोग का कष्ट जीवन मे प्राय बना रहेगा।"

उमा अब तक मौन भाव से अपने भविष्य की सभी बातो को सुन रही रही थी। मृदु कण्ठ से बोली—

"मै आपसे एक बात और पूछना चाहती हूँ।"

"अवश्य पूछिए !"

"कृपया यह बताइये कि मेरा अन्तिम समय कैसा होगा ?"

"अगर तुम्हे इस यति की बात पर विश्वास है आर्ये, तो निश्चित रूप से यह मानो कि अपने अन्तिम समय मे तुम सैकड़ो व्यक्तियो को बोध देती हुई इस लोक मे प्रयाण करोगी ।"

सुनकर उमा का चेहरा खिल उठा। पर उसी समय यति आदिसागरजी ने जाने को उद्यत होकर भगवती से इजाजत चाही। कहा—"अब आज्ञा दीजिये भगवती ! आपका मैंने काफी समय ले लिया है ।"

"मैं आपकी बहुत कृतज्ञ हूँ महाराज ! पुन कभी कष्ट कीजियेगा !"

"अवश्य उपस्थित होऊँगा ।" कहते हुए भविष्यद्रष्टा यति ने प्रस्थान किया ।

२७

आस्तिक या नास्तिक

प्रात कालीन सूर्य की सुनहली किरणे पृथ्वी पर वरदान के समान आ गिरी थी और मार्ग के दोनो किनारो पर विछी हुई रेत स्वर्ण-कणो के समान चमकने लगी थी। दूर-दूर तक फैली हुई हरियाली पर विछी हुई ओस की श्वेत बूंदे मोतियो की खेती का भ्रम उत्पन्न कर रही थी तथा ऊपर की ओर उडते हुए सैकडो पक्षियो के समवेत स्वर सम्पूर्ण दिशाओ मे सगीत की एक अभूतपूर्व सृष्टि कर रहे थे।

ऐसे मनोरम प्रात काल मे भगवती गिरिजाकुमारी ने महिमावती और अर्चनाकुमारी के साथ नागौर की ओर प्रस्थान किया। मार्ग कटकाकीर्ण और पोप मास की तीव्र शीत के कारण हिम के समान शीतल भी था। तीनो के पैर ठिठुर कर जडवत् हो गए थे किन्तु इस ओर किसी का भी ध्यान नही था। आन्तरिक प्रसन्नता मे मग्न आर्याए अपने पथ पर अग्रसर होती चली जा रही थी।

मार्ग मे जगह-जगह से उपमार्ग निकलते थे अत भूल न हो जाए इस हेतु गिरिजाकुमारी ने एक छोटे से पुल पर विश्राम के लिये बैठे हुए एक सम्भ्रान्त युवक मे अपने गन्तव्य मार्ग के विपय मे पूछा—

"भाई, नागौर जाने के लिये यही मार्ग ठीक है न ?"

"जी हाँ, मैं भी इसी ओर आ रहा हूँ।" कहते हुए उस युवक ने पास आकर आर्याओं को नमस्कार किया।

"धर्म पर दृढ़ रहो बन्धु!" गिरिजाकुमारी ने प्रत्युत्तर में आशीर्वाद दिया।

"पर धर्म को तो मैं मानता नहीं आर्या!"

सुनकर गिरिजाकुमारी अत्यन्त चकित हुईं। उन्हें युवक शिक्षित भद्र और समझदार मालूम हो रहा था। उत्सुकतापूर्वक उन्होंने पूछ लिया—

"क्यों नहीं मानते धर्म को?"

"धर्म है नहीं, इसलिये नहीं मानता। मैं नास्तिक हूँ। नास्तिकों का मत है—

धर्माधर्मौ न विद्येते, न फलं पुण्य-पापयोः।
पञ्चभूतात्मकं वस्तु, प्रत्यक्षं च प्रमाणकम्॥

"अर्थात् न धर्म है न अधर्म है, और न पाप-पुण्य का फल ही भोगना पड़ता है। यह समस्त विश्व पृथ्वी, पानी, आग, वायु और आकाश इन पाँच भूतों में ही समाविष्ट है। इनके अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं है। प्रमाण सिर्फ प्रत्यक्ष ही है।"

"अच्छा पहले एक बात बताओ कि तुमने हमें नमस्कार क्यों किया?"

"क्योंकि मेरा मन कहता है कि आपने बुराइयों का त्याग किया है अतः आप सदाचारी हैं और इस कारण सम्मान प्राप्त करने की अधिकारिणी हैं।

"तो तुम सदाचरण को उत्तम और मनुष्य के लिये आवश्यक मानते हो?"

"अवश्य, सदाचार के सिद्धान्त प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक आश्रम, प्रत्येक वर्ग और प्रत्येक समाज के लिये आवश्यक हैं। यद्यपि यह सत्य है कि कार्य-भेद से सदाचार के सिद्धान्त भी भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी उन सब का सत्य एक ही है। चाहे कोई पठन-पाठन करता हो, या सैनिक कार्य बजाता हो, व्यापार करता हो या दफ्तर में काम करता हो, वैद्यक करता हो या वकालत करता हो, प्रत्येक के लिये सदाचार की मर्यादाएँ हैं, जिनके अनुसार अपने-अपने कर्तव्य का पालन करने से वे सदाचारी कहलाते हैं।

"यही नहीं, सदाचार का क्षेत्र बहुत व्यापक है। सदाचार जहाँ व्यक्ति

के लिये कल्याणकर है वहाँ जातियो के लिये भी अत्यावश्यक है। ससार मे वे ही जातियाँ उन्नति की ओर अग्रसर होती है जिनका आचरण उत्तम कोटि का होता है। मेरे कहने का मतलब यही है कि सदाचार व्यक्ति को उच्च बनाने के लिये उतना ही आवश्यक है, जितना किसी भी पौधे के पनपने मे तथा बढने मे जल आवश्यक है।"

"अच्छा सदाचरण के अभाव मे क्या होता है?" पुन गिरिजाकुमारी ने युवक के हृदयगत भावो को जानने के लिये प्रश्न किया।

"सदाचरण के अभाव मे देश रसातल को चला जाता है।" उस स्पष्ट वक्ता युवक ने उत्तेजित होते हुए कहना शुरू किया।

"भारतवर्ष किसी समय अपने उच्चकोटि के आचरण के लिये विख्यात था। समग्र ससार इसका लोहा मानता था। विदेशो से आने वाले यात्री मुक्तकण्ठ से भारत-वासियो के उच्च आचार की प्रशसा किया करते थे। किन्तु भारत के अतिशय-उज्ज्वल अतीत के प्रकाश मे जब मै इसके वर्तमान को देखता हूँ तो घोर निराशा, विषाद और खेद का अनुभव करता हूँ। आज भारत का चरित्र इतना गिर गया है कि वह अनार्य कहलाने वाले देशो से भी हीन हो गया है। मनुष्य-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे जो अप्रामाणिकता और अनैतिकता दिखलाई देती है उसे देखकर किस सत्पुरुष का हृदय परितप्त नही होता? बडे-बडे व्यापारी और सेठ-साहूकार चोर बाजारी करते है। शासन के उच्चतम पदो पर प्रतिष्ठित-व्यक्ति रिश्वते ले लेकर देश को कलकित करते है। परिणामस्वरूप देश के स्वाधीन हो जाने पर भी जिस चारित्रिक विकास की आशा की गई थी उस पर पानी फिर गया है।"

इतना कहकर युवक कुछ रुक गया और गिरिजाकुमारी की ओर देखने लगा। उमा गिरिजाकुमारी के साथ ही चल रही थी और अपने को नास्तिक कहने वाले उस युवक की बातो को दत्त-चित्त होकर सुन रही थी। सुनते सुनते उसकी परिहास वृत्ति, और अब तक अर्जित किया हुआ ज्ञान सजग हो गया। उसने गिरिजाकुमारी की ओर उन्मुख होकर कहा—

"भगवती! क्या नास्तिकता यही होती है?"

गिरिजाकुमारी युवक की बातो के प्रत्युत्तर मे अब कुछ कहने जा ही रही थी कि उमा की बात सुनकर हँस पडी। उन्हे हँसते हुए देखकर युवक पूछ बैठा—

"आप हँसी क्यो ?"

गिरिजाकुमारी ने उमा के ज्ञान की परीक्षा लेने के लिये वार्तालाप का सूत्र उसके हाथो मे दे देने का विचार किया और प्रत्यक्ष मे युवक से कहा—

"आर्या अर्चनाकुमारी आपकी नास्तिकता के बारे मे सन्देह व्यक्त कर रही है।"

"क्या........ ?" युवक मानो आकाश से गिर पडा। अब तक उसने उमा की ओर दृष्टिपात भी नही किया था। पर अब इतने बडे दोपारोपण के पश्चात् उसने दुग्ध-धवल वस्त्रो मे आवेष्टित सृष्टि की पवित्रता को मानो मानवी के रूप मे देखा और सीधा प्रश्न किया—

"क्या फरमाया आपने ?"

"यही कि आप पूरे नास्तिक नही दिखाई देते।"

"तो क्या दिखाई देता हूँ ?"

"नास्तिकता का बाना पहने हुए पक्के आस्तिक।"

"कौन कहता है ? बालक के समान निश्छल युवक फिर उत्तेजित हो उठा।

"मैं कहती हूँ।" उमा ने दृढतापूर्वक कहा।

"इसका प्रमाण ?"

"प्रमाण यही, कि आप सदाचरण मे विश्वास करते है। यही तो धर्म का प्राण है। अन्यथा आप बताइये कि सद्आचरण के अतिरिक्त कौन-सा धर्म है, जिसे आप नही मानते !"

"मैं उस धर्म को नही मानता जिसके द्वारा आप लोग परलोक मे सुख की प्राप्ति का होना मानते है, जब कि परलोक कुछ है ही नही।"

"किन्तु मै तो धर्म का फल इस लोक और परलोक दोनो मे होना मानती हूँ।"

"वह कैसे ?"

"मनुष्य अपने उत्तम आचरण के द्वारा इस लोक मे आत्म-सतोष, आत्म-शान्ति और आत्म-सुख प्राप्त करता है, साथ ही आचारनिष्ठ होने के कारण दुष्कर्मो मे प्रवृत्त नही होता अत उसके कर्मो का बन्ध नही होता। और जब कर्मो का बन्ध नही होता तो आत्मा अपने शुद्ध स्वरूप को प्राप्त

करती हुई निर्बन्ध अर्थात् मुक्त हो जाती है। इसे ही हम निर्वाण अथवा अक्षय सुख की प्राप्ति होना कहते है।"

"अच्छा अर्चना जी! कुछ देर के लिये आपकी बात मान भी ली जाय तो बताइये कि अक्षय सुख क्या होता है?"

उमा कुछ मुस्कराकर बोली—"आपके प्रश्न का अर्थ शायद यही है कि सुख का स्वरूप क्या है? सारी कामनाओ का अन्त हो जाना ही सच्चा और अक्षय सुख है।"

"लेकिन जब तक मनुष्य जीवित है, उसकी कामनाओ का अन्त कैसे हो सकता है?"

"आप जिसे मनुष्य अथवा प्राणी मानते है, वह है कौन? क्या हमारा और आपका शरीर वह प्राणी है जो जीवित रहता है या मर जाता है? नही, शरीर तो मिट्टी है जो आपके विचारानुसार पच तत्वो का अंश है और उन्ही मे मिल जाता है। किन्तु आत्मा शरीर से पृथक् है। वह जब तक शरीर के बन्धन मे रहती है सुख-दुख का अनुभव करती है। पर अपने शुद्ध स्वरूप मे यह इन्द्रिय गोचर गुणो से सर्वथा मुक्त है। अनादि और अनन्त है। पचेन्द्रियो द्वारा अनुभाव्य सुख-दुख इसे नही व्यापता।

"लेकिन आत्मा जब शरीर के माध्यम से ही प्रकट है तो फिर उसकी मुक्ति कैसे हो सकती है? शरीर है, शरीर की आवश्यकताए और इच्छाए भी है।"

"शरीर और ससार सनातन नही है। आत्मा अपने ही कर्मो से उसे घटाती या बढाती चली जाती है। जैसा कि आप मानते है सदाचरण अथवा सत्कर्म हमारी आत्मा को इस ससार से अलिप्त करते जाते है और अन्त मे एक समय ऐसा आ जाता है, जब हम अर्थात् हमारी आत्माएँ मुक्त हो जाती है। इसके विपरीत हमारे बुरे कर्म हमे शरीर से और ससार से और भी बाँधते चले जाते है। परिणाम यह होता है कि हम बार-बार जन्म लेते है और मृत्यु कष्ट का अनुभव करते है। बस, इसी तरह जन्म-मरण के चक्र मे सदा घूमते रहते है।"

"पर जब तक शरीर है और उसके लिये कर्म करना अवश्य है, तब तक कर्म बन्धन से विहीन कैसे हुआ जा सकता है?"

"यह तो बहुत ही आसान बात है। आप कर्म कीजिये पर राग और द्वेष रहित होकर।"

"द्वेष रहित होकर तो कर्म किये जा सकते हैं किन्तु राग रहित कर्म करना कैसे सम्भव है ? प्राणी कर्म करके इच्छापूर्ति करता है और इच्छा-पूर्ति होने से आनन्द प्राप्त होता है। तो जिस कर्म से आनन्द प्राप्त होता है उसमे राग तो रहेगा ही।"

"ओह, भाई ..... । उमा ने युवक का नाम जानना चाहा।

"मेरा नाम कृष्णचन्द्र है आर्या !"

"तो भाई कृष्णचन्द्र जी ! आप यहाँ भूल कर रहे है। आप जिसे आनन्द मानते हैं, वह वास्तव मे आनन्द का सच्चा स्वरूप नही है, आसक्ति है। अच्छे और आवश्यक कार्य कर्तव्य समझकर किये जाने चाहिये। तभी उन्हे करने से सच्चा आनन्द प्राप्त होता है।"

"किन्तु आसक्ति रहित कार्य कैसे किये जा सकते है ? मै नही समझ पाता।"

"अच्छा एक बात बताइये ! आप क्रोध, मान, माया और लोभ को छोड सकते है ?"

"हा, ये छोडे जा सकते है।"

"और जिद् .?"

कृष्णचन्द्र खिलखिला कर हँस पडा और बोला—"वह भी छोडी जा सकती है।"

"बस, तब फिर इन्हे छोडकर देखिये। आप स्वय अनुभव करेगे कि उस स्थिति मे आप जो भी कर्म करेंगे उसमे सच्चा आनन्द प्राप्त होगा। आसक्ति नही। आसक्ति रहित जो कर्म किये जाएँगे वे सत्कर्म कहलाएँगे। निरन्तर सत्कर्म करने से आत्मा विशुद्ध होती हुई अपने चिदानन्दमय सहज स्वरूप को प्राप्त कर लेगी। और इस प्रकार आप शरीर रहते हुए भी, और कर्म करते हुए भी कर्म के बन्धनो से मुक्त हो सकेंगे।"

"तो आपका यह खयाल है कि मुझ जैसे नास्तिक को भी मुक्ति अवश्य मिलेगी ?"

"हाँ, आप भले ही अपने आपको नास्तिक कहे किन्तु सदाचरण और सत्कर्मो को करते जाने के कारण आपके अनजाने ही आपके हृदय मे धर्म के बीज जमते जाएँगे और कालान्तर मे वे मुक्ति-रूपी फल अवश्य प्रदान करेंगे।"

"इसका मतलब यह है कि आत्मा और परमात्मा को मानने मे ही मेरी भलाई है ?"

"परमात्मा को माने या नही, पर आत्मा को मानने मे निश्चित ही आपका भला होगा। आत्मा के शुद्ध स्वरूप को समझ लेने पर आपका मार्ग सरल और सीधा हो जाएगा तथा आप शीघ्र अपने भव-भ्रमण का अन्त कर अनन्त सुख के अधिकारी बनेंगे।"

"अच्छी बात है ऐसा ही सही!" कृष्णचन्द्र के चेहरे पर अत्यन्त प्रसन्नता और सतुष्टि की झलक दिखाई दे रही थी। पर कुछ क्षण बाद ही उसने सहसा एक और प्रश्न किया—

"आर्या! आपकी उम्र क्या है ?"

"यही कोई बाईस वर्ष।" उमा ने सहज भाव से उत्तर दिया। वह इस युवक के हृदय की सरलता से अवगत हो चुकी थी।

"बस ? फिर इतनी सी उम्र मे आपने इतना ज्ञान और उस पर इतना दृढ विश्वास कैसे प्राप्त कर लिया ?"

"आप जैसे भाइयो से पाला पडने की आशका बनी रहती है, इसलिये शीघ्रता करनी पडी।" उमा ने परिहासपूर्वक उसी क्षण उत्तर दे दिया।

कृष्णचन्द्र ने यह सुनते ही अपनी उन्मुक्त हँसी मे वातावरण भर दिया। गिरिजाकुमारी अब तक तन्मयता से वार्तालाप सुन रही थी पर कृष्णचन्द्र की इस हँसी मे उन्होने भी योग दिया। उनका हृदय अपनी शिष्या की योग्यता पर गर्व से भर गया।

उसी समय कृष्णचन्द्र गिरिजाकुमारी के समीप आया और हाथ जोडकर निस्सकोच बोला—

"भगवती एक प्रार्थना करना चाहता हूँ।"

"कहिये!"

"आप आर्या अर्चनाकुमारी को आज्ञा दे कि वे मुझे जीवन पर्यत अपना भाई माने।"

"साध्वियो के लिये तो सभी व्यक्ति भाई के समान ही होते है।"

"नही, मेरा इन पर विशेष अधिकार होगा।"

"वह कैसे ? गिरिजाकुमारी ने सकौतुक पूछा।"

"देखिये अर्चनाकुमारी जी ने आज मेरे विचारो को नया मोड़ दिया है। इसके अनुसार मैं अनेक जन्म और मरण के दुखो से छुटकारा प्राप्त करूँगा। जब एक बार मरने वाले को बचाने वाला महान् होता है, तब अनेकानेक बार के मरण से छुटकारा दिलाने वाले के उपकार से तो उऋण कभी हुआ ही नही जा सकता। फिर भी मैं आर्या अर्चना जी को गुरु के समान आदर और भाई के समान स्नेह जीवन पर्यन्त अर्पण करके, थोडा बहुत उऋण होना चाहता हूँ।"

"अच्छा ऐसा ही सही!" गिरिजाकुमारी का हृदय इस शिशु के समान पवित्र हृदय वाले युवक के प्रति ममता से भर गया।

लेकिन आर्या अर्चनाकुमारी ने मेरी प्रार्थना स्वीकार की या नही ?" कहते हुए वह उमा की ओर पलटा।

उमा कुछ बोली नहीं, मृदु मुस्कान से ही मानो उसने स्वीकृति दी।

वार्तालाप चलता रहने के कारण मार्ग बडी सरलता से कट गया था। महिमावती कुछ पीछे रह गई थी अत गिरिजाकुमारी उनके आ पहुँचने तक तनिक विश्राम लेने की दृष्टि से एक शिला पर बैठ गई। उमा समीप ही खडी रही।

कृष्णचन्द्र ने दोनो को नमस्कार किया और पुन दर्शन करने की इच्छा प्रकट करते हुए जाने का उपक्रम किया। कहा—

"भगवती! अब इजाजत दीजिये। मैं चलता हूँ।"

"और आपकी नास्तिकता ?" उमा परिहास किये बिना नही रह सकी।

"वह राक्षसी चली गई।" कहकर हँसता हुआ वह आस्तिक नास्तिक चल दिया।

२८

भावना के भूखे ठाकुरजी

कृष्णचन्द्र के पिता श्री दीनानाथ गौड नागौर के एक कुलीन और प्रतिष्ठित खानदान के व्यक्ति के। ५ वडे-वडे राजा-रईस तथा अमीर उनके पूर्वजो के जजमान थे। यज्ञ, विवाह तथा यज्ञोपवीत आदि अनुष्ठानो मे उन्हे वडे सम्मान मे हाथी, पालकी आदि सवारियाँ भेजकर बुलाया जाता था। स्वय दीनानाथ भी विद्वान पडित थे। अपने विशाल मकान के एक हिस्से मे ज्ञानाभिलापी छात्रो को ज्ञान-दान दिया करते थे। वदले मे कोई शिष्य कुछ दे सकता तो दे देता। जो कुछ भी नही दे सकता वह भी अन्य सभी छात्रो के साथ समान रूप मे विद्याध्ययन करता था। दीनानाथ को अध्यापन के वदले मे द्रव्य पाने का तनिक भी लोभ न था। पूर्वजो की अर्जित की हुई सम्पत्ति यथेष्ट थी और व्यय वहुत कम था। परिवार के नाम से वर्तमान मे सिर्फ एकमात्र पुत्र कृष्णचन्द्र और पुत्रवधू राधा थी। पत्नी का स्वर्गवास तीन-चार वर्ष पहले ही हो गया था।

कृष्णचन्द्र का लालन-पालन प० दीनानाथ और उनकी पत्नी ने अत्यन्त प्यार मे किन्तु वडी सतर्कता मे किया था। परिणामस्वरूप पिता के सभी सद्गुण उसमे कूट-कूटकर भर गये थे। पान, वीडी, सिगरेट और भग आदि वस्तुओ का उसने कभी स्पर्श भी नही किया था। किन्तु समय को देखते हुए

दीनानाथ ने उसे स्कूल और उसके पश्चात् कॉलेज मे शिक्षा दिलवानी उचित समझी थी अत सहपाठियो और अध्यापको के समर्ग के कारण निर्व्यसनी और सदाचारी होते हुए भी वह आत्मा-परमात्मा, लोक-परलोक और पुण्य-पाप के फल पर विश्वास खो बैठा था।

उसके विचार कुछ निराले थे। वह परलोक नही मानता था किन्तु अन्य नास्तिको की तरह यह भी पसन्द नही करता था कि—

यावज्जीवेत्सुख जीवेत् ऋण कृत्वा घृत पिबेत्।
भस्मीभूतस्य देहस्य, पुनरागमन कुत. ?

अर्थात् जब तक मनुष्य जीए, खूब सुखपूर्वक जीए। जीवन का आनन्द लूटने के लिये पैसा न हो तो ऋण लेकर घी पीए। यह देह तो भस्म हो जाएगी फिर इसका पुन आना कैसा ?

इसी प्रकार परमात्मा को न मानते हुए भी वह भारत माता का अनन्य भक्त था। भारतीय सस्कृति और गौरव का महान् प्रशसक तथा इनकी उन्नति का इच्छुक था। वक्त आने पर देश के लिये अपना जीवन उत्सर्ग कर देने की भावना रखता था। यही कारण था कि वह अधूरा नास्तिक बन कर रह गया था।

राजनीति मे एम० ए० करके जब कृष्णचन्द्र ने हाईस्कूल मे अध्यापन कार्य शुरु किया, उसके पिता ने एक गरीब किन्तु विद्वान् ब्राह्मण की अत्यन्त सुन्दर और सुलक्षण कन्या से उसका पाणिग्रहण करा दिया। नववधू राधा उस समय सिर्फ चौदह वर्ष की सुकुमारी कन्या थी। किन्तु अपने ठाकुरजी पर वह अचल श्रद्धा रखती थी। एक यही श्रद्धा उसके दरिद्र पिता ने अपनी कन्या को दहेज मे दी थी।

विवाह के समय जब वह ससुराल आई तो उसने बडे आश्चर्य से अपने ससुर की आलीशान हवेली को देखा। कृष्णचन्द्र ने परम स्नेह से अपनी पत्नी से पूछा—

"तुम्हे घर पसन्द आया ?"

"हॉ, पसन्द आया। पर मेरे ठाकुरजी के रहने के लिये पूजा-गृह कहा है ?"

"पूजा-गृह ?"

"हा, हा ! पूजा-गृह ! तुम यह भी नही समझते क्या ?"

कृष्णचन्द्र कहना तो चाहता था कि वह स्वय पूजा नही करता तो क्या हुआ, उसके पिता से लेकर न जाने कितनी पीढियाँ पूजा करते-करते स्वर्ग चली गई । किन्तु अपूर्व सुन्दरी पत्नी के सामने उसे अनभिज्ञ बना रहने मे भी आनन्द आ रहा था । बोला—

"साक्षात् कृष्ण तो तुम्हारे सामने खडे है राधा ! पूजाघर मे और किस भगवान् को विराजमान करोगी ?"

अपनी बडी-बडी आँखे फाडकर राधा बोली—

"यह कैसी बात ? तुम क्या ठाकुरजी से बडे हो ?"

"पता नही, देखू तुम्हारे ठाकुरजी को, कहाँ है वे ?"

"वाह, यह भी नही जानते ? अच्छा आओ मेरे साथ !"

कृष्णचन्द्र मुस्कराता हुआ चुपचाप उसके साथ चला । दूसरी मजिल पर एक छोटे से कमरे मे जाकर देखा कि एक आले मे सोने का सुन्दर सिहासन रखा है । सिंहासन के ऊपर छत्र है और अन्दर एक छोटा झूला । झूले के अन्दर रेशमी वस्त्रो मे लिपटे हुए राधा के ठाकुरजी बैठे है । फिर भी अनजान बनते हुए उसने पूछा—

"कहाँ है ठाकुरजी ? दिखाई तो नही देते ।"

"वे क्या सामने झूले मे विराजमान है !"

"अरे, तुम्हारे ठाकुरजी इतने से ही है क्या ?"

"हाँ इतने से ही है । पर इससे क्या हुआ ? तुम इन्हे प्रणाम तो करो !"

कृष्णचन्द्र ने जूते पहने-पहने ही हाथ जोडे । यह देखकर राधा नाराज हो गई और झुझलाकर बोली –

"यह क्या अनाडियो के जैसे हाथ जोड रहे हो । जूते खोलो न, और तब अच्छी तरह प्रणाम करो ।"

"पर तुम मुझे बताती तो हो नही, फिर कैसे अच्छी तरह प्रणाम करू ?"

"अच्छा मेरे पास आओ ! जैसे मै करू वैसे ही तुम नमस्कार करना ।"

कृष्णचन्द्र यही तो चाहता था । राधा के पास आकर खडा हो गया और जिस प्रकार घुटने झुकाकर और जमीन पर सिर रखकर राधा ने प्रणाम किया, ठीक उसी प्रकार उसने भी किया । मन मे कहा—ठाकुरजी,

अगर वास्तव मे ही तुम हो तो मेरी राधा को जीवन मे कभी कष्ट मत होने देना।"

राधा का प्रणाम हो चुका था अत. वह भी उठकर खडा हो गया और बनावटी गभीरता से बोला—

"राधा, एक बात बताओ ! तुम्हारे ठाकुरजी मुझसे नाराज तो नही हैं ?"

"नाराज क्यो होगे भला ?" वह आश्चर्य मे भरकर बोली।

"इसलिये कि मैंने इन्हे ठीक से नमस्कार नही किया और जूते पहने खडा रहा।"

'लो और सुनो, मेरे ठाकुरजी क्या तुम्हारी तरह एम० ए० पास है, जो हर बात मे मीन-मेख निकालेगे। भूल से गलती हो जाने पर वे माफ कर देते हैं।"

"तो उन्होने मुझे माफ कर दिया ?"

"हाँ कर दिया। पर अब कभी जूते पहनकर मत आना।

"और प्रणाम·........?"

"भगवान् भावना के भूखे होते है। चाहो तो प्रणाम कर लेना, नही तो न सही।"

"तब तो तुम्हारे ठाकुर जी बहुत अच्छे है राधा !"

"झूठमूठ बाते मत बनाओ, चलो अब ! भूख नही लगी है क्या ? पर ठहरो, मैं भी कैसी भुलक्कड हूँ। इतने देर से ध्यान नही आया।" कहते हुए राधा ने झुककर पति के चरणो पर अपना मस्तक रख दिया।

"अरे, अरे, यह क्या किया ?" कहते हुए असीम अनुरागपूर्वक कृष्णचन्द्र ने दोनो कधे पकडकर उसे उठाया और उसके नेत्रो मे झाँकने लगा।

"क्यो क्या हुआ ?" राधा ने भोलेपन से पूछा।

"ठाकुरजी को प्रणाम करना ही तो काफी था मुझे किसलिये ?"

"वाह, ठाकुरजी तो अपनी जगह पर है और तुम· ।"

"कौनसी जगह है मेरी ?"

"मै नही जानती जाओ।" कहती हुई वह भागने लगी पर कृष्णचन्द्र ने उसे छोडा नही। कहा—

"वताओगी तभी जाने दूँगा।"

"हार कर राधा ने मुस्कराते हुए दाहिने हाथ की तर्जनी अपने हृदय पर रखी और क्षण भर मे ही भाग खडी हुई।

सुख मे डूबा हुआ कृष्णचन्द्र कुछ देर निर्निमेष ठाकुरजी की ओर देखता रहा और फिर रसोईघर की ओर चल दिया।

२९

गुरु मिली
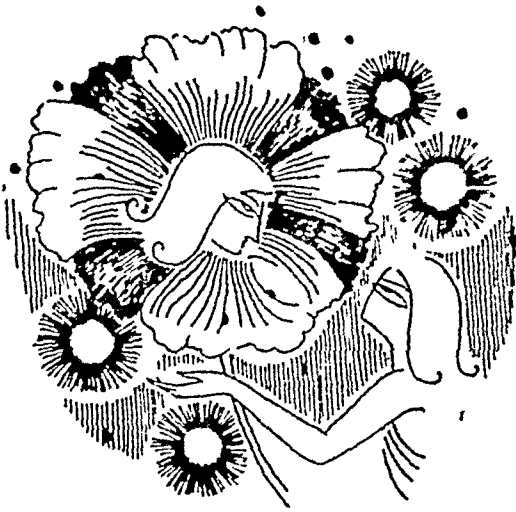
शनै शनै. समय चार वर्प आगे खिसक गया। कृष्णचन्द्र पूरे छब्बीस वर्प का हो गया। दो वर्प उसके पिता का देहान्त हुए भी हो गये किन्तु घर सभालने मे उसे कोई विशेप अभिरुचि नही हुई। घर से स्कूल जाता और वापिस आकर राधा के ठाकुरजी को लेकर छेडखानियाँ करता और वीच-वीच मे अट्टहास करके घर भर देता।

इसके विपरीत, राधा सिर्फ अठारह वर्प की उम्र मे ही पूर्ण गृहिणी वन गई थी। ससुर के देहान्त के वाद तो घर की सारी जिम्मेदारी ही उस पर आ गिरी थी। पर इससे उसे तनिक भी परेशानी न थी। उसके ससार मे दो ही इष्ट थे। एक ठाकुरजी और दूसरे पति। ठाकुरजी की सेवा-पूजा के वाद उसका सारा समय घर की व्यवस्था और पति की शुश्रूपा मे जाता। पति का असीम अनुराग और वच्चो का सा सरल स्वभाव उसे अहर्निश सुख-सागर मे डुवोये रहता। पहले के समान अव वह कृष्णचन्द्र से ठाकुरजी को लेकर तुनकती नही। कह देती—

"तुम्हे मेरे ठाकुरजी के लिए परेशान होने की जरूरत नही। तुम अपने देश की फिक्र करो, ठाकुरजी की चिन्ता तो मैं स्वय ही कर लूँगी।"

लेकिन एक दिन राधा मारे आश्चर्य के हतबुद्धि सी हो गई। धुले वस्त्र पहने हुए जब वह ठाकुरजी की पूजा करके एक हाथ मे चरणामृत और दूसरे हाथ मे गगाजली लेकर पूजा-घर से निकल रही थी कि कमरे की देहरी पर उसने कृष्णचन्द्र को सिर झुकाए हुए देखा। ऐसा लगा मानो कृष्णचन्द्र ने उसी को मस्तक झुकाये हुए कहा था। हैरान होकर राधा बोली—

"अरे, उठो भी! मुझे बाहर आने दो! कोई समझेगा कि तुम मेरे सामने ही सिर झुकाए हुए हो।"

"तो क्या हुआ! ऐसा ही सही। याद है, इस घर मे आने पर प्रथम दिन तुमने ठाकुरजी के सामने मेरे पैरो पर सिर रखा था। आज मैने ऐसा कर दिया तो क्या हुआ?

"छि छि मुझे नरक मे भेजोगे क्या?"

"नही राधा! तुम तो स्वर्ग मे जाओगी ही, साथ मुझे भी साथ ले चलना। ले चलोगी न?

"पर तुम तो स्वर्ग नरक कुछ मानते ही नही हो। क्या इस पृथ्वी पर किसी नये स्वर्ग का निर्माण हुआ है?"

"पृथ्वी पर का स्वर्ग तो हमारा घर है ही, जिसमे मै मानवी अप्सरा के साथ रहता हूँ। मैं तो उस स्वर्ग की बात कह रहा हूँ, जिसमे मनुष्य मरने के बाद अपने पुण्य के बल पर जाता हे।"

"तुम...... ? तुम ऐसा कह रहे हो? क्या बात है आज? तबियत तो ठीक है न?" राधा की आंखे आश्चर्य से फैल गई।

"हा, मै अपने पूरे होश हवास मे बोल रहा हूँ। चिन्ता मत करो। कृष्णचन्द्र राधा की आशका पर हँस पडा और बोला—

"कल से मै भी ठाकुरजी की पूजा करूँगा।"

"मेरा सद्भाग्य, जो तुम पूजा करोगे। ठाकुरजी की शामत थोडे ही आई है। क्या उनके इस घर मे से दिन पूरे हो गये?"

कृष्णचन्द्र खिलखिला कर हँस पडा। पत्नी के समीप आ उसकी ठोडी को अपने हाथ मे ऊँची उठाकर स्नेह-सिक्त स्वर से बोला—

'ठाकुरजी के नही, मेरी नास्तिकता के दिन पूरे हो गये राधा! आज उसका जनाजा निकाल आया हूँ।"

"ऐसे कौन से गुरु मिल गये आज, जिन्होने तुम्हारी बुद्धि फेर दी ?" राधा हैरान होकर बोली।

"गुरु मिले नही, गुरु मिली।"

"क्या ? क्या कहा ?"

"यही कि गुरु मिली।"

"हाय, हाय, क्या हो गया तुम्हे आज ?" राधा रुँआसी हो गई। उसे पक्का विश्वास हो गया कि उसके पति को कुछ हो गया है। गगाजली और चरणामृत एक ओर रखकर वह कृष्णचन्द्र के मस्तक और शरीर पर हाथ फेरकर देखने लगी कि कही उसे तेज बुखार तो नही हो आया है जिसके कारण ये अट-सट बक रहे है।

उसकी घबराहट देखकर कृष्णचन्द्र ने उसे अधिक देर चुलावे मे रखना उचित नही समझा। सहज स्वर से बोला—

"मै सच कह रहा हूँ राधा! चलोगी मेरे गुरु के पास।"

"कौन है वह ?" तनिक आश्वस्त होकर राधा ने पूछा।

"वे एक जैन साध्वी है, परम विदुषी, शान्ति और सन्तोष की साक्षात् मूर्ति। उनकी नैसर्गिक प्रभा देखकर तुम्हे मेरी बातो पर विश्वास हो जाएगा।

"तुम कब मिले उनसे ?"

"आज ही। रूण गाँव मे लौट रहा था। रास्ते मे सौभाग्य से उनसे मुलाकात हो गई। उनकी बातो का मुझ पर बडा प्रभाव पडा। समझ लो दो घटे मे कृष्णचन्द्र की काया पलट गई। चलोगी न उनके दर्शन करने ?

"हाँ चलूँगी। कब ले चलोगे ?"

"जब तुम कहो।"

"अच्छी बात है। पूर्णिमा के बाद ले चलना। पर अब चलकर स्नान करो। मैं जाकर खाना तैयार करती हूँ।"

"हाँ चलो, पर पहले ठाकुरजी का भोग ।"

"उन्हे थोडी देर भूखा रहने दो। तुम उठो अब।" कहती हुई राधा हँस पडी और अपने सौन्दर्य की छटा बिखेरती हुई चल दी।

३०

काल बली ले चला

आर्या गिरिजाकुमारी ने अभी नागौर मे प्रवेश नही किया था, किन्तु उनकी कीर्ति वहाँ पहुँच चुकी थी। फलस्वरूप जन समूह दर्शनार्थ उमड पडा और मार्ग नर-नारियो से भर गया। भारी कोलाहल और जय जयकार के बीच तीनो आर्याओ ने नगर-प्रवेश किया। प्रत्येक व्यक्ति खुशी से फूला नही समा रहा था और नैसर्गिक शान्ति तथा चारित्र्य की प्रतिमूर्तियो को देखकर अपने नेत्रो को सफल मान रहा था।

जन-समुदाय धीरे-धीरे उपाश्रय के समीप आ पहुँचा और गिरिजाकुमारी ने उसमे प्रवेश करने के लिये प्रथम सीढी पर कदम रखा। ठीक उसी समय उमा का दाहिना नेत्र जोरो से फडक उठा। किसी अनिष्ट की आशका से उसका दिल दहल गया। कुछ कहने का अवसर नही था अत. वह चुप रही। जुलूस मे सम्मिलित हुए व्यक्ति उपाश्रय मे यथास्थान बैठे और भावभरी प्रार्थना की गई। आर्या गिरिजाकुमारी ने सक्षिप्त प्रवचन दिया।

उस समय दिवस का द्वितीय प्रहर प्रारम्भ हो चुका था। आर्या महिमावती और अर्चनाकुमारी ने आहार की गवेपणा की और सभी ने स्वल्पाहार किया।

गिरिजाकुमारी आहार से निवृत्त होकर आगन्तुको से वार्तालाप करने मे व्यस्त हो गई । किन्तु कुछ समय पश्चात् जब अर्चनाकुमारी अपना कार्य समाप्त करके बाहर आई तो देखा कि भगवती अपने स्वभाव के विरुद्ध लेटी हुई है और आगतुक सब जा चुके हैं। अर्चनाकुमारी के हृदय मे प्रातः काल ही चोर बैठ गया था। शीघ्रता पूर्वक आकर पूछा—

"भगवती ! आज आप असमय मे ही कैसे लेट गई है ?"

"कोई खास बात तो नही है बेटी ! मस्तक मे कुछ पीडा का अनुभव हो रहा है और लगता है कि शरीर मे भी कुछ भारीपन-सा है।"

चिन्ताग्रस्त होकर अर्चनाकुमारी ने उनके मस्तक पर हाथ रखा। वह उत्ताप से जल रहा था। तीव्र ज्वर के लक्षण स्पष्ट प्रतीत हो रहे थे।

"आपको तो ज्वर हो आया है भगवती !"

"हाँ लगता तो यही है पर क्या हुआ ? ठीक हो जाएगा कल तक। चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?"

पर अर्चनाकुमारी की चिन्ता मिट नही सकी। वह शीघ्रतापूर्वक जाकर आर्या महिमावती को बुला लाई और उन्होंने चिकित्सक को बुलवाने का प्रबन्ध किया।

चिकित्सा प्रारम्भ हुए लगभग दो मास होने आए, किन्तु गिरिजाकुमारी का स्वास्थ्य सुधरा नही। वे क्रमश कृश होती गई। इसी बीच समाचार आए कि आचार्य यशोभूषण नागौर के समीप ही डेह नामक ग्राम मे पधार रहे है। उमा की दीक्षा के पश्चात् से अब तक छः वर्ष के दीर्घकाल मे आर्या गिरिजाकुमारी को आचार्य श्री के दर्शन प्राप्त करने का सुअवसर नही मिल पाया था। अत गुरुदेव के दर्शन की तीव्र इच्छा उनके हृदय मे जागृत हुई।

आचार्य श्री के दर्शनो की इच्छा महिमावती तथा अर्चनाकुमारी के हृदय मे भी कम न थी किन्तु गिरिजाकुमारी के स्वास्थ्य को देखते हुए, कई मील का पैदल-प्रवास करना उन्हे खतरे से खाली न लगा। अत. महिमावती ने विहार का तीव्र विरोध किया। कहा—

"भगवती ! आप विहार करने का आग्रह न करे। अभी आपका स्वास्थ्य ठीक नही है। मैं समझती हूँ कि आपके अस्वास्थ्य के विषय मे ज्ञात होने पर आचार्य श्री स्वय ही इधर पधारने का प्रयत्न करेंगे।"

गिरिजाकुमारी हँस पडी और मृदु स्वर से बोली—

"पगली बहन, ऐसा मुझे क्या हुआ है जो मै चल ही नही सकूँगी और गुरुदेव को कष्ट करके यही दर्शन देने आना होगा। साधुओ मे इतनी सुकुमारता ?"

"लेकिन शरीर का कुछ खयाल रखना तो आवश्यक है भगवती ! आखिर यही तो हमारा सयम-साधना का प्रधान आधार है। इसकी उपेक्षा करना ठीक नही।"

"पर उपेक्षा कहाँ की जा रही है ? चिकित्सा चल रही है, और तुम दोनो इसकी आवश्यकता से अधिक सभाल रखती हो। शरीर का प्राप्य इसे मिल रहा है अब आवश्यकता है मन के प्राप्य की। मन गुरुदेव के दर्शन करना चाहता है तो इसे भी करने दो। अन्यथा शायद यह गुरुदेव के दर्शन मे वचित ही रह जाए।"

"यह आप कह क्या रही है··· ····?"

"ठीक ही तो कह रही हूँ महिमा ! क्या तुम चाहती हो कि अन्त समय मे गुरु दर्शन के बिना ही ये प्राण प्रयाण कर दे ? नही, यह नही होगा। हम कल ही यहाँ से प्रस्थान करेगे। चिन्ता मत करो सब शुभ ही होगा, अर्चना कहाँ है ?"

"मै इधर आपके पास ही तो हूँ भगवती !" गिरिजाकुमारी के सिर-हाने की ओर खडी हुई उमा ने उमडती व्यथा को बल-पूर्वक दबाते हुए कहा।

गिरिजाकुमारी ने मुँह फेर कर उसके सूखे हुए मुँह और डबडबाए हुए नेत्रो को देखा तो अत्यन्त स्नेह से अपनी ओर खीचकर कहा—

"अरे, तुम दोनो तो पागल हो ही, मुझे भी क्या अन्त मे पागल बनाओगी ? अर्चना ! शरीर का नाश तो अवश्यम्भावी है इसके लिये खेद क्या करना ? मृत्यु प्रभु का निमन्त्रण है। वह जब भी आए उसका सहर्ष स्वागत करना चाहिये।" तनिक विश्राम लेकर वह फिर बोली "मुझे तो सन्तोष इस बात का है कि मेरे जीवन काल मे ही सयम-मार्ग पर चलने का तुम्हारा अभ्यास सफल हो गया है। आशा के अनुसार ज्ञानार्जन भी कर लिया है। तुम मेरे न होने पर भी सहस्र-रश्मि सूर्य बनकर जैन धर्म को प्रकाशित करो और अपनी प्रभा मे जन-मानस को चिरकाल तक प्रभावित

करो यही मेरी कामना है । समार मे जीवन और मृत्यु का खेल तो चलता ही रहता है । प्रतिदिन प्राणी आते और जाते रहते है । यह कोई अनोखी बात नही है ।"

"इसलिये बेटी, किसी के सयोग मे राग और वियोग से शोक करना नितान्त अनुचित और निरर्थक है । इसके अतिरिक्त महिमावती के होते तुम्हे किस बात की चिन्ता होनी चाहिये ? वास्तव मे तुम्हारे जीवन को बनाने वाली वही है । उनके हाथो मे तुम्हे सौपकर मैं निश्चित हूँ ।"

कण्ठावरोध के कारण उमा कुछ उत्तर न दे सकी किन्तु आर्या महिमावती ने भगवती को आगे बोलने से रोका—

"बस कीजिये भगवती ! आपको आज क्या हो गया है ? आप शीघ्र ही स्वास्थ्य लाभ करेगी ।"

"अच्छा बहन ! अब कुछ नही कहूँगी । मैने सोचा कि शायद फिर कुछ न कह पाऊँ इसलिये ।"

"बात फिर बीच मे ही रोकनी पडी । आर्या महिमावती ने उन्हे आग्रह पूर्वक हाथ मे दवा थमा दी और जल का पात्र भी ।

अगले दिन प्रात काल ही गिरिजाकुमारी ने सबके आग्रह और अपने स्वास्थ्य पर ध्यान न देते हुए नागौर से प्रस्थान कर दिया । शरीर निर्बल होने पर भी वे मानसिक बल के आधार पर धीरे-धीरे डेह जा पहुँची ।

पुण्यात्मा गिरिजाकुमारी को अपने गुरुदेव का दर्शन करना था । लगता था कि केवल इसीलिये उन्होने अपनी आत्मा को महा-प्रयाण करने से रोक रखा था । गन्तव्य स्थान पर पहुँचते ही उन्होने शय्या ग्रहण की और फिर उसे अन्त तक न छोड सकी ।

दो दिन पश्चात् आचार्य यशोभूषण को डेह पहुँचने पर शिष्याओ के आगमन, और महामती गिरिजाकुमारी के अस्वास्थ्य के समाचार मिले और वे उसी समय मुनि जगतनारायण जी के साथ आर्याओ के निवास-स्थान पर आ पहुँचे । किन्तु तब तक बहुत देर हो चुकी थी और भगवती अनन्त यात्रा के लिये तैयार हो चुकी थी ।

आचार्य के आगमन पर महा-प्रयाण के लिये प्रस्तुत परम-पावन और दिव्य-मूर्ति आर्या गिरिजाकुमारी का चेहरा परम आनन्द मे खिल उठा । अथाह सन्तोष उनके शुभ्र मुख मण्डल पर स्पष्ट दृष्टि-गोचर हो रहा था ।

अपने नेत्रो को धन्य मानते हुए उन्होने उसी समय सम्पूर्ण चराचर जीव-जगत् से क्षमा याचना की। तत्पश्चात् अपने पूज्यपाद आचार्य को धीरे-धीरे दोनो हाथ जोडकर प्रणाम किया तथा समाधि-मरण धारण करने की आज्ञा चाही।

वैराग्यमूर्त्ति आचार्य का हृदय भी इस अचानक अभियान को देखकर द्रवित हो गया और वे शीघ्रतापूर्वक बुझती हुई उस लौ को अपलक निहार रहे थे, लगता था कि उनके अन्त.करण से सतत निकलते हुए अनन्त आशीर्वाद अपनी शिष्या को मूक विदाई दे रहे है।

अन्तिम वार उस पुनीत आत्मा के नेत्र खुले और गुरुदेव पर, मुनि जगतनारायण जी पर, आर्या महिमावती पर, और फिर अन्त मे अर्चनाकुमारी पर आकर टिक गए। किन्तु धीरे-धीरे वे निमीलित हुए और पुन. न खुल सके। उसी क्षण विश्व का कोना-कोना अपने प्रकाश मे उद्भासित करती हुई, सन्ध्या कालीन प्रभाकर की भाँति वे अनन्त की ओर प्रयाण कर गई।

विधि का विधान पूरा हुआ और आदिसागर यति की भविष्यवाणियो मे से एक सत्य साबित हो गई।

३१

शक्ति-संचय

उपाश्रय मे भयानक सन्नाटा छाया हुआ था। आर्या गिरिजाकुमारी को स्वर्ग-प्रयाण किये कई दिवस बीत चुके थे। किन्तु लगता था कि शोक की काली तमिस्रा का अभी अन्त नही हुआ। नर-नारी आते और व्यथापूर्ण हृदय से स्वर्गस्थ आत्मा को भावपूर्ण श्रद्धाञ्जलि देकर चले जाते। उस स्वर्गीय विभूति का अभाव लोगो के हृदयो को अब तक सन्तुलित नही कर पाया था। प्रत्येक प्राणी का मन उस दिवगत आत्मा के लिये बार-बार रो उठता था।

स्वनाम धन्य आर्या महिमावती यन्त्र-चालित की भाँति अपने नित्य-नियम और नित्यक्रिया मे सलग्न रहती। उनके चेहरे की गम्भीरता और वज्र सदृश दृढता के घेरे को कोई तोड नही पाता था। किन्तु फिर भी सहज ही अनुमान लगाया जा सकता था कि उस घेरे के अन्दर व्यथा का कैसा दावानल सुलग रहा है। प्रत्येक आने वाले से वे सहज भाव से बात करती, उनके प्रश्नो के उत्तर देती, किन्तु वाणी के खोखलेपन को वे स्वय भी छिपा नही पाती थी।

सबसे अधिक कठिनाई उन्हे अर्चनाकुमारी को सम्हालने मे हो रही थी। वह विह्वल की भाँति महिमावती की ओर देखा करती। हृदय के भीतर

और बाहर सभी जगह उसे शून्यता दृष्टि-गोचर होती। उसे लगता कि इस अनन्त शून्य को भेदकर प्रकाश की एक किरण भी अब कभी उस तक नही पहुँच सकेगी। भगवती की विद्यमानता मे आठ वर्ष का काल बात करते व्यतीत हो गया था। कितना स्नेह पाया था उनसे, कितनी लगन और तन्मयता मे उन्होंने उसे कुछ योग्य बनाया था। उन्हे मानो बहुत पूर्व ही आभास हो गया था कि इस नर-देह मे उन्हे अधिक समय नही रहना है।

इन्ही भावनाओ मे अर्चनाकुमारी हर समय डूबती उतरती रहती थी। आज भी यह खोई-खोई सी महिमावती के समीप बैठी थी। ठीक उसी समय उसके पिता मुनि जगतनारायणजी ने उपाश्रय मे प्रवेश किया।

उन्हे देखते ही दोनो आर्याएँ ससम्मान उठ खडी हुई उन्हे वदन किया और बैठने के लिये प्रार्थना की। मुनि श्री ने आशीर्वाद देते हुए आसन ग्रहण किया और आर्या महिमावती तथा अपनी पुत्री अर्चनाकुमारी की ओर दृष्टिपात करते हुए मृदुस्वर से कहा—

"गुरुदेव ने आपका कुशलक्षेम जानने के लिये मुझे भेजा है। कहिये आपका मन सुस्थिर है न ?

"हाँ आर्य ! हम प्रयास कर रहे है भगवती के अभाव को सह्य बनाने का, किन्तु लगता है कि अर्चना इसमे सफल नही हो रही है।" महिमावती ने कुछ म्लान होकर उत्तर दिया। अर्चनाकुमारी का हृदय पिता को देखकर भर आया था, पर वह भरसक अपने आपको सम्हालकर मूक बैठी थी।

"क्यो अर्चना ! यह कायरता कैसी ?"

पिता के मधुर तिरस्कारपूर्ण वचनो को सुनकर उसा कपित स्वर से बोली—"प्रयत्न तो बहुत करती हूँ पर सफलता नही मिलती।"

"तो क्या ऐसे ही कमजोर हृदय को लेकर तुम सयम की आराधना करोगी ? ऐसे अस्थिर चित्त से साधना-पथ पर बढ़ोगी ? महादेवी गिरिजा-कुमारी पर अगर तुम्हारी सच्ची श्रद्धा, भक्ति और स्नेह है तो उनके गुणो का स्मरण करो और उनके बताये हुए मार्ग पर अक्षरश चलने का प्रयत्न करो। उनके वियोग मे मन को अशान्त बनाए रखना और आकुल-व्याकुल बने रहना तो मोह का लक्षण है बेटी ! और मोह-ग्रस्त रहकर तुम अपने पथ पर अग्रसर नही हो सकोगी। भगवान महावीर के इस कथन को तुम्हें हमेशा ध्यान मे रखना चाहिये –

"दुक्ख हय जस्स न होइ मोहो"

अर्थात् जिसके मोह नही है, समझो उसका दुःख नष्ट हो गया ।

"सदा स्मरण रखो अर्चना, जब तक मानव मोह और आसक्ति का घर बना है तब तक किसी भी स्थिति मे उसे शान्ति और निराकुलता प्राप्त नही हो सकती । ससार के किसी भी पदार्थ अथवा किसी भी सम्बन्धी के द्वारा मन को सच्चा सुख प्राप्त नही होता । मोही जीव अपने राग-भाव के कारण ही दुख का अनुभव करता है । शरीर तो अस्थिर होता है, इसकी नैसर्गिक बनावट ही ऐसी है कि इसके बदलने मे पल भर भी समय नही लगता । अनादिकाल से ससार मे भटकते जीव ने न जाने कितने परिवार बनाये है । एक भी जीव ऐसा नही है जो अनेक बार इसका आत्मीय न हो चुका हो । पर शरीर बदलते ही सगे सम्बन्धी विराने हो जाते है, आत्मीय पराये हो जाते है । स्वय अपना शरीर भी तो अपना नही रहता ! फिर माता-पिता, गुरु-शिष्य सब कैसे अपने बने रह सकते है ?"

"इसलिये मेरा कहना है कि तुम वस्तु-स्वरूप का चिन्तन करो, तभी राग-भाव से निवृत्ति हो सकेगी । जगत के सच्चे स्वरूप का ज्ञान ही सच्चे वैराग्य का जनक होता है और सच्चा वैराग्य सयम की साधना मे सहायक बनता है ।"

"आपका कथन सत्य है । मुझे अपने मन की कमजोरी पर घोर पश्चात्ताप है । आज आपने मेरे मानस-चक्षुओ को खोल दिया । मै अब मन को सयत रखने का पूरा प्रयत्न करूँगी ।" अर्चनाकुमारी ने मन को आश्वस्त अनुभव करते हुए उत्तर दिया ।

"सुनकर मुझे अत्यन्त सुख हुआ । ईश्वर करे तुम अपने प्रयत्न मे सफल होओ । इससे आर्या गिरिजाकुमारी की आत्मा प्रसन्न होगी । आज उनके अभाव मे तुम्हारा कर्तव्य उनके लिये शोक करना नही, वरन् उनकी कीर्ति मे चार चाँद लगाना है । उनका स्मरण तुम्हारे जीवन को उच्चता की ओर ले जाए, उनके गुणानुवाद करते हुए तुम स्वय भी गुणो का आगार बनो, मैं यही चाहता हूँ । यद्यपि हम साधु भी छद्मस्थ हैं अत· हमारे हृदयो मे मोह भाव पैदा होना अस्वाभाविक नही है किन्तु हमारा प्रयत्न यही होना चाहिये कि हम उसे जड न जमाने दे । तुम जानती ही हो कि महामना 'गौतम' को भी केवलज्ञान की प्राप्ति तब तक नही हुई थी, जब तक उनके हृदय से भगवान् महावीर के प्रति रहा हुआ मोह भाव नष्ट नही हुआ था ।

अर्चनाकुमारी जैसे जाग उठी। उसने अपने पिता मुनि जगतनारायणजी के पैरो के समीप मस्तक झुकाकर विनम्र शब्दो से क्षमा-याचना की। मोह की प्रबल शक्ति का अनुभव कर उसका हृत् पिंड विकंपित हो उठा और अपनी साधना तथा संयम की रक्षा करने के लिये कटिबद्ध हो गई। बोली—

"मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मै अपने अंगीकृत पथ पर सफलतापूर्वक अग्रसर हो सकूँ।"

"ऐसा ही होगा बेटी, ऐसा ही होगा। तुम्हारी आत्म-शक्ति को मैं पहचानता हूँ। मोहवश ही यह कुछ निष्क्रिय हुई है, किन्तु इससे क्या हुआ? आज का तुम्हारा पश्चात्ताप उसे पूर्व की अपेक्षा भी अधिक क्रियाशील और निर्मल बनायेगा। तुम निश्शंक होकर अपने कल्याणकारी पथ पर अग्रसर होती रहोगी। कहते हुए उन भव्यात्मा वृद्ध मुनि जगतनारायणजी ने आर्या महिमावती को सम्बोधित किया—

"आर्या! बहुत विलंब हो गया है। किन्तु मुझे अत्यन्त हर्ष है कि गुरुदेव ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के लिये मुझे भेजा था वह पूरा हो गया। अर्चना का कमजोर मन पुन शक्ति प्राप्त कर चुका है। अब मुझे इजाजत दीजिये। कल प्रातःकाल ही हमे इस शहर से प्रस्थान कर जाना है। आपको भी आचार्य श्री ने स्मरण किया है, सुविधानुसार आने का प्रयत्न कीजियेगा।"

महिमावती अब तक पिता-पुत्री का वार्तालाप सुन रही थी। उसके परिणामस्वरूप परम निश्चितता की सास लेते हुए गद्‌गद होकर कहा—

"मुनिवर! मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। अर्चना को लेकर जो महान् चिन्ता थी वह आपकी कृपा से दूर हो गई है। आप पधारे! हम दोनो अभी आचार्य श्री के दर्शनार्थ आ रही है।"

अर्चना के साथ महिमावती जब आचार्य यशोभूषण के निवासस्थान पर पहुँची, वे किसी दैनिक पत्र को उलट-पुलट कर देख रहे थे। शिष्याओ को देखते ही उनके अंतरतम का गंभीर स्नेह उनके दिव्य चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान के रूप मे झलकने लगा। आर्याओ के नमस्कार के उत्तर मे आशीर्वाद देते हुए उन्होंने पूछा—

"आप प्रसन्न है?"

"आपकी कृपा है गुरुदेव, किन्तु भगवती के अभाव मे हृदय अपने को

व्यथित तथा निराधार अनुभव करता है।" महिमावती के शब्दो मे कातरता थी।

"धर्म का आधार सवसे वडा आधार है आर्या! वही एक ऐसा सम्बल है, जिसे ग्रहण कर लेने पर कोई भी अभाव मन को खेदखिन्न नही वना सकता। इसके अलावा ससार के समस्त पदार्थ परिवर्तनशील है, उनके कारण मनोवल का ह्रास करना वुद्धिमत्ता नही है।"

"यथार्थ है भगवन्!"

"मै सतुष्ट हूँ महादेवी! आपकी सयम-निष्ठा और चारित्रिक दृढता पर मुझे पूर्ण विश्वास और गर्व है। मै आशा करता हूँ कि आप तथा विचक्षण वुद्धि आर्या अर्चनाकुमारी, एक दूसरे के सहयोग से स्वर्गीया गिरिजाकुमारी के अभाव को पूरा करेगी। उनकी समस्त विशेपताएँ ससार आप लोगो मे ही प्राप्त करेगा।" तनिक विराम लेकर आचार्य पुन वोले—

"और आर्या अर्चना! तुम्हारे लिये तो दुविधा का कोई कारण ही नही है। सरल और स्नेहशील आर्या महिमावती तुम्हारे लिये गिरिजाकुमारी के स्थान पर है। इनकी हार्दिक लगन और अथक परिश्रम से तुमने जिस प्रकार उच्च ज्ञान हासिल किया है, उसी प्रकार अव भी इनकी छत्रछाया मे प्रगति करते हुए तुम समाज मे अत्युत्तम स्थान प्राप्त करोगी।"

"आपकी शुभ कामना मेरा मार्ग दर्शन करेगी भगवन्! आपका वरद हस्त मेरे मस्तक पर वना रहना चाहिए।" अपनी वडी-वडी पलको को किंचित् उठाकर अत्यन्त विनम्रता से अर्चनाकुमारी ने प्रत्युत्तर दिया।

"वह तो रहेगा ही वेटी! आखिर शिष्य और शिष्याओ के गौरव से ही तो मैं गौरवान्वित होता हूँ। मेरा अन्त:करण सभी के लिये कल्याण कामना करता है।'

आचार्य के हृदय की उदारता और महानुभावता का अनुभव करती हुई आर्याएँ कुछ क्षण मौन वैठी रही। अन्त मे महिमावती ने मौन तोडा—

"भगवन्! कल प्रस्थान करने का विचार आपने एकाएक ही कैसे कर लिया?"

"वर्पावास के लिये जयपुर पहुँचना है महादेवी! समय अल्प है। उम्र

अधिक हो जाने से मुनि जगतनारायणजी मे अधिक विहार नही होता। अत थोडा-थोडा चलने का ही विचार है।"

पिता का उल्लेख होते ही सहसा अर्चनाकुमारी ने पूछ लिया—

"गुरुदेव ! आपको सतोप तो है उनसे ?"

"सुनकर आचार्य विस्मित हुए। बोले—

"यह कैसी बात है बेटी ? अपने पिता को तुम पहचानती नही ? ऐसे देव पुरुप क्या विश्व मे सहज ही उपलब्ध होते है ? मेरा भाग्य सराहनीय है कि मुझे तुम्हारे पिता के सदृश शिष्य की प्राप्ति हुई। क्या मुझे स्वय ही उनकी प्रशसा करनी होगी ?"

"अपराध क्षमा हो भगवन् ! वैसे ही उत्सुकता जागृत हो आई, उनके भूतपूर्व ऐश्वर्यसम्पन्न और रईसी जीवन का स्मरण हो आने के कारण।"

"तो सुनो ! मुझे तो लगता है कि उस रईसी का स्मरण भी शायद मुनिवर्य को नही है। वस्त्र के स्थान पर शरीर को ढकने के लिये वे मोटे खद्दर को उसी प्रसन्नता से काम मे लेते है, जिस प्रसन्नता से कभी वे अपनी मखमल की पोशाक धारण करते थे। प्रतिदिन नानाप्रकार के व्यञ्जनो को ठुकरा देने वाले जगतमुनि अब समस्त भोज्य पदार्थो को, चाहे वह मिष्टान्न हो, नमकीन हो, दूध हो, दही हो या सब्जी और फुलका हो एक पात्र मे, तुम्हे विश्वास नही होगा बेटी ! एक ही पात्र मे, एक साथ मिलाकर ग्रहण करते है। वह भी दिन मे एक बार। और इसके अलावा बचा हुआ सारा समय उनका, गम्भीर अध्ययन और साधना मे व्यतीत होता है। क्या ऐसा जीवन किसी साधारण प्राणी का बन सकता है ?"

सच्चे साधक के योग्य पिता के त्यागमय जीवन के विपय मे जानकर, तथा स्वय गुरुदेव के मुखारविंद से, उनकी गद्गद होकर की गई प्रशसा को सुनकर अर्चनाकुमारी को आँखो मे हर्षाश्रु उमड आए। वह कुछ बोल न सकी, जडवत् बैठी रह गई। उसकी स्तब्धता तब भग हुई जब पुन आचार्य के कुछ शब्द उसके कानो से टकराए—

"तुम ऐसे महापुरुप की पुत्री हो अर्चना ! इसीलिये तो मुझे तुमसे बडी-बडी आशाएँ है। इस बार आठ वर्ष पश्चात् मै तुमसे मिला हूँ। किन्तु समय को देखते हुए तुमने जो उच्च ज्ञान प्राप्त किया है, उससे मुझे पूर्ण

सन्तोष है और आशा है कि पुन जब साक्षात्कार का अवसर आएगा तुम उच्चता के एक और शिखर को पार करलोगी।"

"अब दर्शन कब दीजियेगा भगवन् ?" कृतज्ञता से भीगी हुई उमा ने पूछा।

"जब विधि का विधान होगा। साधुओ का निश्चित कार्यक्रम तो होता नही बेटी।"

ठीक इसी समय सामने दीवार पर टगी हुई बृहत्काय घडी ने टन्-टन् करके चार बजाए और आर्याओ ने आचार्य श्री को नमस्कार कर सजल नयनो से विदाई ली।

३२

क्या मिलता है तुम्हें ?

समय अपनी अवाधगति से चला जा रहा था। आर्या गिरिजाकुमारी के निधन के पश्चात् अर्चनाकुमारी को समाज से अधिक सम्पर्क वढाना पडा। उनकी उपस्थिति मे तो वह अधिकतर ज्ञानार्जन मे व्यस्त रहती, बहुत कम किसी से परिचय होता। प्रथम तो वह स्वय इस विपय मे अनुत्सुक रहती, दूसरे इसकी आवश्यकता ही नही पडती थी किन्तु अव नित्य प्रवचन देने का भार उन पर आ गया और दर्शनार्थ आने वाले व्यक्तियो को समय देना भी अनिवार्य हो गया।

इससे अल्प-काल मे ही उनकी ख्याति चारो ओर फैलने लगी। सुसस्कृत भापा मे दिये जाने वाले उनके विद्वत्तापूर्ण तथा मार्मिक प्रवचन श्रोताजन मत्र मुग्ध होकर सुनते तथा गभीर से गभीर विपय को भी अत्यन्त सरल तरीके से समझा देने की उनकी शक्ति पर आश्चर्य प्रगट करते। श्रोताओ की सख्या मे दिन प्रतिदिन वृद्धि होती गई। उनमे सिर्फ राजस्थान के ही नही अपितु गुजरात, दिल्ली, यू० पी० तथा पजाव आदि दूरस्थ प्रदेशो के व्यक्ति भी होते थे।

अर्चनाकुमारी कई दिनो से देख रही थी कि प्रतिदिन प्रात काल प्रवचन के प्रारम्भ होते समय घडी मे वजते हुए आठ के टकोरो के साथ ही एक

सुशिक्षित और अत्यन्त सुसस्कृत दिखाई देने वाली युवती आती और वडे मनोयोग से प्रवचन सुनती । वीच-वीच मे अपनी नोटवुक मे वह कुछ नोट भी करती जाती तथा प्रवचन की समाप्ति पर कुछ पास आकर उन्हे वदन करती और तुरन्त ही लौट जाती । यह क्रम वहुत दिनो तक चलता रहा । एक दिन भी उसमे वाधा नही आई । न कभी वह समय मे पहले आती न देर तक ठहरती और न ही किसी से एक शब्द वोलती ।

उम्र करीव सत्ताईस वर्ष रही होगी । उसका ऊँचा कद और सुडौल शरीर सदैव श्वेत साडी मे आवेष्टित रहता । सिन्दूरविहीन प्रशस्त मस्तक, तीखीनाक । पर साथ ही मुरझाए हुए गुलाव के सदृश उदास मुखडा और आकर्षक नेत्र, जिनके आस-पास एक वोझिल हृदय की कालिमा फैली रहती । अधरो की ललाई मानो सकुचित होकर छिप जाना चाहती और नेत्रो की द्रवणशील कालिमा के लिये स्थान रिक्त कर देती । सुप्त कामनाओ से युक्त उसका ज्वलत सौन्दर्य मूक रुदन करता हुआ सा दिखाई देता, और उसकी लम्वी-लम्वी सुन्दर अगुलियो मे थमी हुई लेखनी द्वारा मानो अपनी वेदनापूर्ण कहानी अकित करवाता ।

आर्या अर्चनाकुमारी अनेक वार मुग्ध होकर उसे देखने लगती । प्रवचन के मध्य मे भी उनकी दृष्टि कई वार जाकर उस मनोहारिणी छवि को आपाद मस्तक छू आती । अन्त मे जव उनकी उत्सुकता सीमा लॉघ चली तो एक दिन उन्होने व्याख्यान के पश्चात् नमस्कार करने के लिए आने पर स्वयं ही उसे सकेत द्वारा अपने पास आने का निमत्रण दिया ।

इस आकस्मिक आह्वान पर वह चौंक पडी और तनिक संकोचपूर्वक अर्चनाकुमारी के समीप आ खड़ी हुई । म्लान मुस्कानयुक्त उसके चेहरे पर दृष्टिपात करते हुए अर्चनाकुमारी ने सस्नेह पूछा—

"आपका नाम ?"

"मेरा नाम जानकी है भगवती, पर कृपया मुझे 'आप' कहकर सम्वोधन न करे । केवल जानकी ही कहे !"

"ओह ··!" कहती हुई अर्चनाकुमारी वार्तालाप के प्रारम्भ मे ही व्याघात पाकर कुछ स्तब्ध हो गई, और पुन· वोलने के लिये सूत्र खोजने लगी । कुछ क्षणो के पश्चात् ही उन्होने फिर प्रयास किया—

"अच्छा जानकी ! यह जो तुम प्रतिदिन प्रवचन मे आती हो इससे तुम्हे कुछ मिलता है ?"

"जी वहुत कुछ, अन्यथा मैं आती क्यो ?"

"अच्छा तुम रोज अपनी कॉपी मे लिखती क्या हो ?"

"आपके कथन का साराश।"

"क्या वताओगी आज क्या लिखा ?"

"यही कि अहिंसा जैन धर्म का प्राण है। जैन धर्म के मनोहर, भव्य और विशाल भवन की पहली ईट अहिंसा है। दूसरे शब्दो मे जैनधर्म का दूसरा नाम ही अहिंसा धर्म अथवा दया धर्म है। इसके अलावा भी भारतीय तथा अभारतीय सभी धर्मो ने अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ धर्म माना है। वैदिक, बौद्ध, सिख, मुसलमान और ईसाई आदि सभी धर्मों के प्रतिपादक ग्रन्थो और धर्म नेताओ ने अहिसा की मुक्तकण्ठ से सराहना की है। अहिंसा वह अद्भुत समाधान है जिसके द्वारा परिवार, समाज, देश और विश्व की समस्याएँ सुलझाई जा सकती है। वैर, विरोध और प्रतिस्पर्धा के कारण होने वाले झगडो को मिटाया जा सकता है।"

"किन्तु जानकी ! अनेक व्यक्ति अहिसा को अनाचरणीय, आत्म-घातक एव कायरता की जननी कहते है। वे आरोप लगाते है कि अहिंसा के कारण ही राष्ट्र का अध पतन हुआ है। उनके खयाल से जैनियो की अहिसा ने देश को कायर और निर्वीर्य वना डाला है। हिसाजन्य पाप से भयभीत होकर भारतीय शौर्य और वीर्य को गँवा वैठे, जिसके कारण यहाँ की प्रजा के मानस मे से युद्ध करने की भावना नितान्त नष्ट हो गई और ऐसी स्थिति मे विदेशी आक्रमणकारियो ने इस देश को अपने अधीन कर लिया। इस विपय मे तुम्हारे क्या विचार है ?"

जानकी का गौर चेहरा तमतमा उठा। मानो किसी ने श्वेत गुलाव के पुष्प को हटाकर चुपके से वहाँ लाल-गुलाव रख दिया हो वह आवेशपूर्वक वोल पडी—

"ये आरोप असत्य है भगवती ! ज्ञात होता है कि आरोपकर्ताओ ने भारतीय इतिहास पर गम्भीरता से विचार नही किया है। भारत का इतिहास पूर्णतया सावित करता है कि जव तक इस देश मे अहिंसा के उपासक शासक राज्य करते रहे, तव तक यहाँ की प्रजा मे शौर्य और पराक्रम की तनिक भी कमी नही रही। उन शासकों ने अपने देश की स्वतन्त्रता की रक्षा

के लिये अपने से अधिक शक्तिशाली शत्रुओ के साथ भी वीरतापूर्ण युद्ध किये और कदापि कायरता से मस्तक नही झुकाया। सम्राट् चन्द्रगुप्त और अशोक अहिंसा धर्म के सब से बडे उपासक और प्रचारक थे, किन्तु उनके शासन-काल मे भारत कभी पराधीन नही हुआ। बल्कि उस काल मे ही भारत की सबसे अधिक विशाल सीमाएँ थी।"

"इसके अतिरिक्त प्राचीन इतिहास को छोड दिया जाए तो भी इस आरोप का सही उत्तर गाँधी जी के जीवन से मिलता है। गाँधी जी अहिंसा के उपासक थे किन्तु क्या उन्हे कोई कायर कह सकता है? अहिंसा के दिव्यास्त्र को ग्रहण करके उन्होने शक्तिशाली ब्रिटिश सरकार का डटकर सामना किया और रक्त की एक बूंद भी बहाए बिना उसके पैर उखाड दिये। अहिंसा की शक्ति और प्रभाव से ही सैकडो वर्षो की दासता का अन्त हुआ। गाँधी जी का दृढ और स्पष्ट कथन था कि मेरी अहिंसा के सिद्धान्त मे कायरता और दुर्बलता के लिये कतई स्थान नही है। वे तो यहाँ तक कहा करते थे कि—"एक हिंसक तो अहिंसक बन सकता है, किन्तु कायर कभी अहिंसक नही बन सकता।"

अर्चनाकुमारी चुपचाप मुग्ध भाव मे जानकी का चेहरा देखते हुए उसकी बात सुन रही थी। जानकी कहती गई—

"वास्तव मे अहिंसा का कायरता से कोई सम्बन्ध नही। दोनो मे आकाश पाताल का अन्तर है। अगर अहिंसा से कायरता और हिंसा से शूरवीरता का जन्म होता तो सभी हिंसक व्यक्ति शूरवीर ही होते। किन्तु न तो पूर्वकाल के इतिहास से और न आधुनिक समय को देखते हुए ही यह बात प्रमाणित होती है। सैकडो कांग्रेसी वीरो ने अहिंसा के प्रशस्त पथ का अनुसरण करते हुए निर्भीकतापूर्वक अपने सीने मे गोलियाँ खाई है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि अहिंसा मनुष्य को कदापि कायर नही बनाती। इस प्रचण्ड शक्ति की उपासना करने वाला निर्विवाद रूप से निर्भीक, शूरवीर और तेजस्वी ही बनेगा।"

"अहिंसा को जैन धर्म की बपौती माना जाना भी गलत है। यद्यपि जैन धर्म के उपदेष्टाओ ने अहिंसा के सिद्धान्त को पूर्णता के सर्वोच्च शिखर पर अवश्य पहुँचाया है, और अहिंसा के विशाल प्रागण मे विश्व के समस्त चराचर जीवो का समावेश किया है, अहिंसा को ही मूलभूत धर्म माना है, किन्तु ससार के अन्य किसी भी धर्म ने हिंसा को धर्म के रूप मे अगीकार

नही किया है। अहिसा के बिना कोई भी धम टिक नही सकता। प्रत्येक धर्म आत्मशाति और विश्वशाति के पवित्र उद्देश्य को लेकर ही स्थापित हुआ है, और यह उद्देश्य अहिसा के अभाव मे पूरा हो ही नही सकता। ससार मे अगर कही शाति दृष्टिगोचर होती है और मानव जाति मे दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, सहानुभूति आदि की जो दिव्य भावनाएँ पाई जाती है, वे सव अहिसा की ही तो वहुमूल्य देन है। प्राणीमात्र मे अगर हिसा और द्वेप की भावना जागृत हो जाय और अहिसा की भावना का लेशमात्र भी न रहे तो उस समय ससार की स्थिति क्या नरक तुल्य नही हो पाएगी ? समग्र विश्व को आज अहिसा के अमृत की आवश्यकता है। भीपण महायुद्धो से त्रस्त और ध्वस्त जगत आज शाति की कामना कर रहा है, और वह शाति प्रत्येक धर्म के अनुयायियो को अहिसाव्रत ग्रहण करने से ही मिल सकती है। जैन धर्म द्वारा उपदिष्ट और आधुनिक काल मे गाँधी जी द्वारा व्यवहृत तथा परीक्षित अहिसा का सिद्धान्त ही जगत का त्राण करने मे समर्थ हो सकता है और आजकी भयाकुल मानव जाति विनाश की आग मे झुलसने से बच सकती है। इसलिये अहिसा का सिद्धात सिर्फ जैनियो का सिद्धात न होकर मानव मात्र का सिद्धात और धर्म है।"

जानकी इतना कहकर रुक गई और यह ध्यान आते ही कि वह आर्या अर्चनाकुमारी के समक्ष इतना वहुत वोलती चली गई है, सकुचित होकर मद-मद मुस्कराने लगी।

अर्चनाकुमारी के गभीर और तेजस्वी मुख पर आन्तरिक प्रसन्नता की लहर दौड गई। वोली—

"तुम्हारे विचार अत्यन्त सुन्दर है जानकी ! जैसा शरीर सुन्दर है वैसा ही मन भी ठीक है न ?"

"आप तो परिहास कर रही है भगवती !" भावावेश मे दी गई अपनी स्पीच के कारण जानकी शरमा गई।

"नही, परिहास नही, सत्य कह रही हूँ। पर साथ ही सोच रही हूँ कि इतने दिन हुए यहाँ आते हुए, पर तुमने कभी मुझसे वात नही की। ऐसा क्यो ?"

"मै सोचती थी कि मुझ अकिचन मे आपकी क्या रुचि होगी ?"

"वाह ऐसा कैसे समझ लिया तुमने ?"

"मै देखती हूँ कि वडे-वडे विद्वान और उच्च व्यक्ति आपके दर्शन तथा

प्रवचन का लाभ लेने के लिये आते है, और प्रवचन के पश्चात् आप उनकी नाना प्रकार की समस्याओ को सुलझाने मे व्यस्त हो जाती हैं, इसलिये हिम्मत नही होती ।" जानकी ने सहज भाव मे मन की दुविधा व्यक्त की ।

"अच्छा अब तो यह सकोच नही रहेगा ?"

"नही, अब आपकी सेवा मे उपस्थित होने का प्रयत्न करूँगी । पर अब इजाजत दीजिये काफी देर हो गई है ।" कहते हुए उसने नमस्कार किया और धीरे-धीरे वहाँ से चल दी ।

नेत्रो से ओझल होने तक अर्चनाकुमारी उसे देखती रही । उन्हे आश्चर्य हो रहा था कि नव परिचिता जानकी के प्रति उनके हृदय मे आकर्षण और ममता का अकुर कैसे फूट रहा है ।

३३
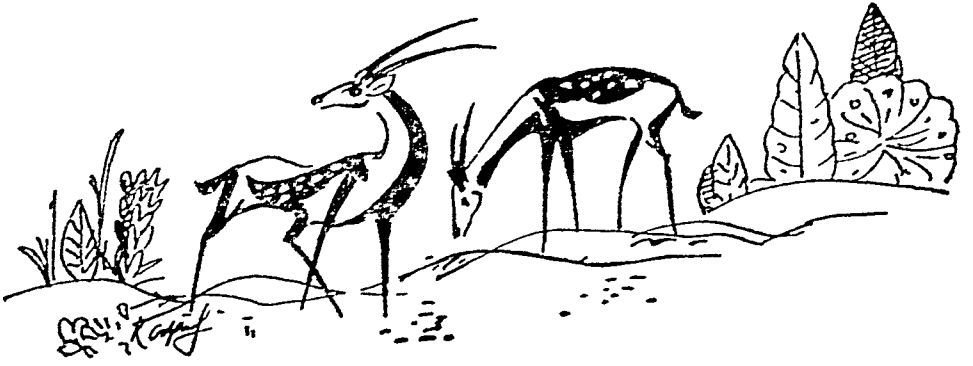
कल्पना सत्य हुई

जानकी जैन समाज के सुप्रतिष्ठित और प्रकाण्ड विद्वान श्री प्रकाशचन्द्र जी की पुत्री थी। चौबीस-पच्चीस वर्ष की अल्प-वय मे ही माग का सिन्दूर धुल-जाने के कारण पिता के यहाँ पर ही रहती थी। प्रकाशचन्द्र जी का परिवार अत्यन्त सुसस्कृत, शिक्षित तथा साहित्यप्रेमी था। जानकी की भी साहित्य के प्रति गहरी रुचि थी। यद्यपि उसने राजनीति विज्ञान मे एम० ए० किया था पर हिन्दी साहित्य उसका परम प्रिय विषय था। वह स्वय कहानियाँ तथा कविताएँ लिखा करती थी और वे समय-समय पर पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहती थी। कभी-कभी वह बृहत् कवि-सम्मेलनो मे अथवा साहित्य गोष्ठियो मे भाग लिया करती थी, किन्तु उसे उनमे भाग लेना रुचिकर नही लगता था। विशेष आग्रह होने पर ही वह ऐसे समारोहो मे शामिल होती, अन्यथा टाल दिया करती। किसी से मिलना-जुलना तथा विशेष परिचय प्राप्त करना उसे नही भाता था। इसका कारण उसकी गहरी भावुकता ही थी। वह सदा अपने मे ही उलझी रहती, अपने मानस का ही मन्थन किया करती और फिर उसे कहानियो, कविताओ और निबन्धो मे उडेला करती। पर किसी के द्वारा प्रशसा के दो बोल सुनते ही मानो उसका मन कछुए की तरह हाथ पैर समेट कर चुप बैठ जाता।

ऐसा लगता था जैसे जानकी इस दुनिया मे नही रहती । उसकी दुनिया इस दुनिया से परे एक काल्पनिक दुनिया थी, जहाँ वह निस्संकोच विचरण किया करती थी । उसे महसूस होता, मानो वह किसी दूसरी दुनिया से आई है । माता, पिता, भाई, भाभी या कि इस संसार से किसी भी व्यक्ति से उसका कोई नाता नही । एक बदली की तरह वह आई है और उसी की तरह शीघ्र उडकर चली जाएगी । रात उसे किसी लम्बे सफर का बुलावा जान पडती और हर सुबह एक विश्राम-स्थल । उसे प्रतिपल अपना मन दुखता-सा जान पडता, कुछ पाने के लिये । वह प्रतीक्षा करती किसी अज्ञात काल्पनिक आत्मा की जो उसे इस दुखमय ससार मे परे ले जाए अपनी बाँहो का सहारा देते हुए मार्गदर्शन करे । उसके काल्पनिक नेत्रों के सामने बार-बार कोई अस्पष्ट आकृति उभर आती, शान्तिमय श्वेत दूधिया चाँदनी के आवरण से आवेष्टित, चन्द्रमा के समान अलौकिक, उगते हुए सूर्य के समान तेजस्वी पर साथ ही पुष्पो के समान कोमल और आकर्षक । अपने नेत्रो को वह बार-बार खोलती और बन्द करती किन्तु उसे पहचान न पाती और न ही अपने समीप ला पाती । असफलता के कारण उसका हृदय निराशा से चीखने-सा लगता और चाहता कि क्षितिज का किनारा वह अपने नाखूनो से फाड डाले और उस मानसमूर्ति को निकट से जी भरकर देख ले, पहचान ले ।

समय इसी प्रकार उसके मन को उद्वेलित करता हुआ बीत चला, और वह अधिकाधिक विरक्त होती गई । कोई भी उसकी व्यथा और मन की अभिलाषा को समझ नही पाया । यद्यपि वह सभी से कोमल व्यवहार रखती, दुनियादारी निभाने मे प्रयत्नशील रहती, पर उसका मन कही भी, किसी मे भी नही रमता । उसके इस उखडेपन को सब महसूस करते पर उसका इलाज किसी की भी समझ मे नही आता । समझने की कोई विशेष कोशिश भी नही करता । ससार के समस्त व्यक्ति सिर्फ उसी प्राणी का खयाल करते है, उसी की ओर ध्यान देते हैं जिससे उन्हे किसी लाभ की आशा होती है । जानकी के द्वारा किसी को किसी लाभ की आशा तो थी नही अत. उसके मन की व्यथा को समझने के लिये कौन परेशान होता ? फलत. दुनिया की दृष्टि मे किसी भी प्रकार के अभाव मे रहित और बडे परिवार से घिरे रहकर भी जानकी अपने को एकाकी महसूस करती । जीवनोपयोगी समस्त सुविधाओं को प्राप्त करके भी, गहरी आत्मीयता के अभाव मे वह

अपने को निराधार समझती और अपने अन्तर्मन की व्यथा को अपने मे ही सजोये रहती।

ऐसी ही मन.स्थिति मे कालचक्र घूम रहा था कि एक दिन जानकी अपनी माता के साथ भगवती अर्चनाकुमारी का प्रवचन सुनने गई। सैकडो महिलाओ के बीच मे बैठी जानकी की ओर अर्चनाकुमारी का ध्यान नही जा सका, किन्तु उच्चासन पर विराजमान अर्चनाकुमारी को देखकर जानकी चौक पडी। उसका हृत्पिण्ड उछलने लगा। प्रथम बार उनके समक्ष पहुँचने पर भी उसे ऐसा लगा कि जैसे वह उन्हे पहचानती है, जन्म-जन्मान्तर मे जानती है। एक अनिर्वचनीय प्रसन्नता की लहर उसके सम्पूर्ण शरीर और मन मे दौड गई।

प्रवचन का एक शब्द भी वह न सुन सकी। रह रहकर उसे अपने कल्पनालोक मे सदा दिखने वाली वह तेजोमयी आकृति नेत्रो के सामने मूर्त रूप धारण किये दिखाई देने लगी। वह बार-बार अपने उत्पल-कमल से नेत्र उठाकर अर्चनाकुमारी को निहारने लगी। शुभ्र चाँदनी के समान श्वेत वस्त्र, आन्तरिक पवित्रता और निर्मलता से दीप्त आकर्षक नेत्र, बाल-रवि सा दमकता हुआ चेहरा, सुडौल हाथ और उन्ही के अनुरूप लम्बी और सुन्दर अँगुलियाँ जानकी विस्फारित दृष्टि से पुन पुन उस छवि को देख रही थी और सोच रही थी—

"यही तो है वह भव्य आकृति, जिसे मैं जन्म-जन्मान्तर से खोज रही हूँ। मेरा तो जनम-जनम का नाता है इसके साथ। यही तो मेरी कल्पना मे बार-बार दृष्टि-गोचर होती है। ओह, कितनी भाग्यवती हूँ मै? लगता है आज मुझे अपने एकाकी पथ का मार्गदर्शक मिल गया, ससार के दु ख रूपी तूफानो से हिचकोले खाती हुई मेरी मानस-नौका को सम्बल प्राप्त हो गया।

जानकी का चेहरा आन्तरिक प्रसन्नता से भर गया। अनिमेष दृष्टि से वह अर्चनाकुमारी की ओर देखती रही। वे कहती थी—"ससारी जीवो ने जिसे सुख समझ रखा है वह परपदार्थावलम्बी है, सान्त है, परिमित है और दुखो का बीज रूप है। वह पारमार्थिक दृष्टि से सुख नही है। सच्चा सुख या आत्मिकसुख वही है जो बाह्य या आन्तरिक किसी भी पदार्थ पर निर्भर न हो, जो काल और परिभाषा से भी सीमित न हो। अर्थात् जो अक्षय और अनन्त हो और भविष्य मे दुख का कारण बनने वाला न हो।"

"आज विश्व का प्रत्येक प्राणी अपनी स्थिति से भिन्न स्थिति के लिये लालायित रहता है, और उसमे सुख मानता है। किन्तु अभिलपित अवस्था प्राप्त हो जाने पर भी वह सुख का अनुभव नही कर पाता। एक इच्छा पूरी होती है या नही, पर अनेक नवीन इच्छाये जागृत हो जाती है। और इच्छाओ को पूर्ण करके सुख पाने की उसकी चेप्टा विफल हो जाती है। आचार्यो ने कहा भी है -

भुक्त्वाऽप्यनन्तशो भोगान्, देवलोके यथेप्सितान्।
यो हि तृप्ति न सम्प्राप्त स कि प्राप्स्यति साम्प्रतम्?

मनुष्य अनन्त-अनन्त वार स्वर्ग लोक मे जन्म ग्रहण कर चुका है, इच्छानुसार वहाँ के भोग-भोग चुका है। फिर भी इसे तृप्ति नही हुई तो क्या अव इस लोक के सुखो से यह तृप्त हो सकेगा?"

"वधुओ! सुख आत्मा का गुण है। गुण सदैव गुणी मे ही रहता है। अतएव सच्चा सुख आत्मा मे ही रहा हुआ है। वाह्य पदार्थो मे उसे खोजना मानव की मूढता है। वही मनुष्य वास्तविक सुख प्राप्त कर सकता है, जो समस्त इच्छाओ का निरोध कर लेता है, तथा वाह्य और आभ्यतर संयोगो का त्याग कर देता है। माता-पिता, पुत्र, परिवार, महल, मकान धन-सम्पत्ति आदि वाहर के पदार्थो का सयोग वाह्य सयोग कहलाता है, और रागद्वेप आदि का संयोग आभ्यतर सयोग कहलाता है। इन दोनो का त्याग कर देने पर जीव, निरीह-निस्पृह वनता है और सवर धर्म का अनुष्ठान करके 'केवल ज्ञान' तथा 'केवलदर्शन' को प्राप्त कर सकता है। मन, वचन तथा काय के योगो का निरोध करके आत्मा शैलेशी अवस्था यानी सुमेरुवत् अकम्प दशा प्राप्त करता है। तव पूर्ण निर्विकार दशा प्राप्त करके सिद्ध गति प्राप्त करने मे समर्थ होता है।"

"अभिप्राय यह है कि सच्चा सुख मुक्त अवस्था प्राप्त करने मे है। जेसे-जैसे आत्मा पर-पदार्थो से अपनी ममता हटाता जाएगा और अपने स्वरूप मे निष्ठ होता जायेगा, वैसे-वैसे वह मुक्त अवस्था और दूसरे शब्दो मे सच्चे सुख की प्राप्ति करता जायेगा। इच्छाओ का निरोध होना उत्कृष्ट सुख है, और इच्छाओ का होना परम दुख। इस तथ्य को समझकर जो प्राणी वीतराग प्ररूपित धर्म का आचरण करेगा वह निश्चय ही कालान्तर मे अक्षय सुख का अधिकारी वन सकेगा।"

प्रवचन समाप्त हुआ, पर । ी की[illegible]मयता भग न हुई। उसका

अन्तर्मन कह रहा था—"यही तो मैं चाहती हूँ, मुक्ति के मार्ग की खोज ही कर रहा है मेरा मन। वह अक्षय सुख प्राप्त करने के लिये ही तो मेरा हृदय वावला है। भगवती! तुम्ही तो मेरी मार्गदर्शिका हो। तुम्हे मै युगो से ढूँढ रही हूँ। मेरा मार्ग दर्शन करो, मुझे रास्ता वताओ……।"

"जानकी, घर चलो अव, प्रवचन समाप्त हो गया।"

मा के शब्द कानो से टकराते ही मानो जानकी की तन्द्रा टूट गई। वह हडवडा कर उठ खडी हुई और चुपचाप चल दी।

उस दिन के वाद प्रतिदिन, प्रवचन आरम्भ होने के ठीक समय पर आना उसका नित्यक्रम वन गया। किसी भी दिन और किसी भी कारण से वह उसमे वाधा नही पडने देती। अर्चनाकुमारी की भव्य आकृति को अपने नेत्रो मे भरे हुए, अत्यन्त मनोयोग से वह प्रवचन सुनती, समझने की कोशिश करती और महत्वपूर्ण वातो को अपनी नोटवुक मे लिख लिया करती। किन्तु आश्चर्य की वात यह थी कि उसने एक दिन भी अर्चनाकुमारी से मिलने की, वात करने की कोशिश नही की। मन ही मन जिनकी आराधना करती थी, जिन्हे अपनी पथ-प्रदर्शिका मानती थी, एक वार भी उनके समक्ष जाने की, उन्हे अपना परिचय देने की इच्छा व्यक्त नही की। उसका स्नेह मानो एक-तरफा था, उस सच्चे भक्त की तरह, जो भगवान् की कृपा प्राप्त न होने पर भी अपनी सेवा-पूजा मे त्रुटि नही करता, अपनी ओर से असीम स्नेह प्रदान करने पर भी आदान की आकाक्षा नही रखता था।

किन्तु हार्दिक और सच्चा स्नेह कभी निष्फल नही जाया करता। जानकी की ओर से प्रयत्न न करने पर भी भगवती अर्चनाकुमारी की दृष्टि मे उसकी भाव-विभोर अवस्था आये विना न रह सकी और उसके मूक स्नेह ने उन्हे जानकी को अपने पास वुलाने को विवश कर दिया। उनके हृदय मे भी उसके प्रति एक अभूतपूर्व भाव आखिर उमड ही पडा।

३४

पति और परमेश्वर

"नमस्कार…… · ….।"

"कौन कृष्णचन्द्रजी ?" अर्चनाकुमारी तनिक चौक उठी। वे उस समय वडे मनोयोग मे किसी वृहत्शास्त्र के पन्ने उलट-पुलट कर उसमे कुछ खोज रही थी।

"जी हाँ, मैं कृष्णचन्द्र ही हूँ, पर आप चौक क्यो पडी ?"

"कृष्णचन्द्र के इस सहज और भोलेपन से पूछे गए प्रश्न को सुनकर अर्चनाकुमारी हँस पडी। शास्त्र का गूढ विषय उनके दिमाग से अन्तर्धान हो गया।"

"वहुत दिनो वाद अचानक आप आये है न ! इसीलिये।"

"ओह, गलती हुई मुझसे, कृपया क्षमा कर दीजिये या कोई सजा दे दीजिये। मै वहुत भुलक्कड हूँ।"

"उसके पश्चात्ताप का परिमाण देखकर अर्चनाकुमारी के सम्पूर्ण चेहरे पर वात्सल्य भाव फैल गया। हँसते हुए वोली—

"अव इस एक अपराध की सजा जमा रहने दीजिये। दो-चार और गलतियाँ करने पर इकट्ठी ही सजा दे दूँगी।"

"क्या मै जानबूझ कर गलतियाँ करता हूँ ?"

"जानबूझ कर ही तो इतने दिनो बाद आने की गलती की है ।"

"नही, मै भूल गया था । कह चुका हूँ, फिर भी आप मानती नही !"

अच्छा ऐसा ही सही, कृष्णचन्द्र की तनिक सी बात मे उत्तेजना देखकर अर्चनाकुमारी पुन हँस दी । सोचने लगी—"इस मनुष्य को क्रुद्ध करना कितना सरल है ।"

"बाहर राधा खडी है !"

"राधा ? कैसी राधा · ·· ?" अर्चनाकुमारी ने आश्चर्य और उत्सुकता से पूछा ।

"इसी कृष्णचन्द्र की राधा, जीवित और सशरीर ।" कृष्णचन्द्र ने शान्ति से अपनी ओर इशारा करते हुए कहा ।

पलक मारते ही अर्चनाकुमारी समझ गई और अत्यन्त उद्विग्न होकर झुझलाती हुई बोली—

"कैसे आदमी है आप ? पत्नी को बाहर खडा कर आये और यहाँ बातो मे मशगूल हो गये । उन्हे अपने साथ अन्दर क्यो नही लाये ?"

'मैं क्या करता ? वह कहने लगी—आप पहले जाकर देख आइये कि भगवती अन्दर है या नही ?"

"ओह, तो आपने देखा नही क्या अभी तक मुझे ? जाइये, लेकर आइये उन्हे यहाँ । क्या सोच रही होगी वह इतनी देर से बाहर खडी हुई ?"

'अच्छा' कहकर कृष्णचन्द्र चल दिया और कुछ क्षणो के पश्चात् ही राधा के साथ पुन लौटा । अर्चनाकुमारी की दृष्टि राधा की ओर उठ गई । करीब इक्कीस वर्ष की उम्र, छरहरा सुडौल शरीर, रग न अधिक गोरा और न अधिक काला ही, पर चेहरा अत्यन्त आकर्षक । मस्तक पर सिंदूर की बडी गोल बिन्दी, तीखी नाक और नुकीली ठोडी तथा इन सबको भी मात कर देने वाले बडे-बडे नेत्र वह जरी-किनारी की बसन्ती रग की सुन्दर साडी पहने हुए थी जिसके चौडे पल्ले पर जरी की ही बडी सुन्दर कैरी कढी हुई थी । मस्तक पर साडी का पल्ला तनिक आगे को खिचा हुआ था । अत्यन्त सकुचित और शरमाती हुई राधा ऐसी लग रही थी मानो प्रथम बार ही ससुराल मे कदम रख रही हो । भोलापन उसके चेहरे पर बिखरा पड़ा था ।

"राधा ! यही है मेरी गुरु और वहन, नमस्कार करो ।"

पर कृष्णचन्द्र के कहने से पहले ही राधा ने झुककर अर्चनाकुमारी के चरणो पर अपना मस्तक रख दिया था ।

"अपने धर्म का पालन करो वहन !" भगवती ने आशीर्वाद दिया ।

"कौनसा धर्म ? ठाकुरजी की पूजा ? वह तो राधा वरावर करती है । उसके लिये आशीर्वाद देने की जरूरत नही है ।" कृष्णचन्द्र वीच मे ही वोल पडा ।

"ठाकुरजी को लेकर मजाक नही करते कृष्णचन्द्रजी !" अर्चनाकुमारी ने सस्मित समझाते हुए कहा ।

"क्यो न करूँ मजाक ? ठाकुरजी मेरे प्रतिद्वन्द्वी जो है । उनके भोग लगने से पहले मुझे खाना नही मिलता । उनके शयन करने से पहले मै सो नही पाता और उनके जागने से पहले मुझे चाय नही मिलती ।"

"वापरे ! कितने झूठे हो तुम … …?" अत्यन्त भोलेपन से अपनी वडी-वडी आँखे नटेरती हुई राधा वोली । लगा कि वह अर्चनाकुमारी को उपस्थिति ही भूल गई ।

"कौन कहता है मै झूठा हूँ ?"

"मै कहती हूँ । ठाकुरजी कभी तुम्हारे किसी काम मे वाधा देते है ?"

"हाँ देते है वाधा । कल ही मैं उनको उठाकर किसी मन्दिर मे रख आऊँगा ।"

"आहा … हा ! वडे आये मन्दिर मे रखने वाले छूकर तो देखो ठाकुरजी को !"

"जरूर छूऊँगा और विना नहाए छुऊँगा ।"

"कैसे वहुरुपिया हो जी तुम ! अभी उस दिन तो कह रहे थे कि अव ठाकुरजी की पूजा करूँगा ।"

"हाँ, तो पूजा कर आया करूँगा मन्दिर मे ही ।"

तुम और मदिर तक जाओगे ? दुनिया ही न उलट जाएगी ? कितनी वार कहा तव तो आज मुझे लेकर यहा तक आ पाए हो ।"

"वाह, मैने कव मना किया था ? तुम्ही ने तो कहा था कि पूनम के बाद जे चलना ।"

"पर मैने यह कब कहा था कि तीन पूनम निकल जायें तब चौथी पूनम को चलूँगी ?"

"अभी तीन पूनम निकल गई क्या उसके बाद ?"

"नही जी ! तुम्हारी पूनम तो अभी एक वर्ष बाद आयेगी ।"

अर्चनाकुमारी अब अपने पर जब्त न रख सकी और यह मधुर कलह देखकर हँस पडी । वे सोच रही थी—दोनो ही एक सरीखे है । कितना बचपन है इनमे अभी तक । पूछ बैठी—

"राधा बहन, क्या कृष्णचन्द्रजी तुमसे सदा इसी तरह झगडते रहते है ?"

"आप देख तो रही है भगवती ! इसी तरह परेशान करते है ।" राधा शरमा कर बोली ।

"परेशान करता हूँ मैं ?" कृष्णचन्द्र कपाल पर आँखे चढाकर बोला— और यह राधा क्या कम बोल रही थी ? देख तो लिया आपने नमूना ।"

"नमूना तो दोनो का देख लिया । भगवान ने आप लोगो की जोडी खूब मिलाई है । पर आप राधा बहन के ठाकुरजी को लेकर हँसी क्यो करते है ?"

"भगवती ! आज आप इनको मेरे ठाकुरजी का नाम लेने का त्याग करवा दीजिये ।" राधा ने शरारत भरी बकिम निगाह कृष्णचन्द्र की ओर डालते हुए आर्या अर्चनाकुमारी से आग्रह किया ।

"पर इससे पहले आप इससे पूछिये तो सही कि इसके ठाकरजी बडे है या मैं ?" कृष्णचन्द्र कहाँ चूकने वाला था ।

मृदु मुस्काराहटपूर्वक आर्या अर्चनाकुमारी ने राधा से कहा—

"राधा बहन ! तुम वास्तव मे ही पति-परायण सती साध्वी राधा हो, यह मै जान गई हूँ । तुम्हारे सरल और भोले निष्कपट हृदय का परिचय मुझे मिल गया है । ठाकुरजी के प्रति तुम्हारी अनन्य भक्ति तुम्हारे गौरव को बढाती है । फिर भी तुम्हे प्रतिमा, पति ओर परमेश्वर इन तीनो के महत्व तथा उनमे रही हुई भिन्नता को समझ लेना चाहिये ।"

"अवश्य, मुझे अवश्य समझाइये भगवती !" कहती हुई राधा ने अपने विशाल नेत्रो मे जिज्ञासा लाते हुए अर्चनाकुमारी से आग्रह किया ।

"देखो बहन ! प्रतिमा ठाकुरजी की, या राम, कृष्ण बुद्ध अथवा महावीर किसी की भी हो, वह केवल जड वस्तु मात्र होती है । उसका महत्व है,

और वहुत है, पर सिर्फ इस दृष्टि से कि जिस महान आत्मा का वह प्रतीक है उसके जीवन का, उसके महान गुणो का, उसके महान कार्यो का उसे देखकर स्मरण किया जाए। अन्यथा कोई पूजा और अर्चना करने से कुछ लाभ हो, ऐसा नही लगता। वह सिर्फ आत्म-ज्ञान विहीन श्रद्धालु भक्तो के मनस्तोप के लिये ही रह जाती है।

"जड होने के कारण उसमे राग द्वेप आदि चैतन्य प्राणियो मे रहने वाले गुण-दोप नही होते। इसलिये भक्ति तथा सेवा-पूजा के अभाव में वह रुष्ट नही होती और किये जाने पर तुष्ट भी नही होती। न उससे शाप दिये जाने का ही भय होता है और न वरदान पाने की आशा ही रहती है। उसकी अवज्ञा और उपेक्षा होने पर भी उसे दुख अथवा कष्ट नही होता। आवेश या क्रोध नही आता, पर इसके विपरीत ।"

"इसके विपरीत क्या महादेवी ?" राधा की आतुरता वढ रही थी।

"इसके विपरीत, पति की सेवा, शुश्रूपा मे असावधानी होने पर और तनिक भी उसके विपरीत चलने पर उसे कष्ट होता है, दुख होता है और असन्तोप होता है। क्योकि वह हाड-माँस का वना हुआ चैतन्य प्राणी होता है। पत्नी पुरुप की पूरक होती है। पुरुष के सभी अभाव उसे पाकर स्वयमेव भर जाते है। प्रतिमा को सिर्फ पूजा-अर्चना की आवश्यकता होती है किन्तु पति को पत्नी के हार्दिक सहयोग की आवश्यकता रहती है। और इसी प्रकार ससार मे रहने पर पत्नी को भी पति पर आश्रित रहना होता है, उसी के द्वारा जीवनोपयोगी समस्त सुविधाओ को प्राप्त करना पडता है। लता जिस प्रकार वृक्ष का अवलम्व लेकर वढती है, फूलती है, फलती है उसी प्रकार नारी भी पुरुप का सहारा लेकर अपनी जीवन-नौका को इस ससार-सागर मे आगे वढाती है। पुरुप के असन्तुष्ट होने पर नारी का जीवन कभी सुखमय नही हो सकता, निराकुल नही वन पाता।"

"इसके अतिरिक्त वेद-पुराणो और धर्म ग्रन्थो मे पति को परमेश्वर की सज्ञा दी गई है। पतिव्रता नारी के लिये पति ही परमेश्वर है, पूज्य है और परम सुख-प्रदाता है। किसी ने कहा है—

भर्तु शुश्रूपया नारी लभते स्वर्गमुत्तमम्।
अपि या निर्नमस्कारा निवृत्ता देव पूजनात्॥

देवताओ की पूजा और वन्दना से दूर रहने पर भी जो स्त्री अपने स्वामी की सेवा मे लगी रहती है, वह उस सेवा के प्रभाव से उत्तम स्वर्ग

लोक को प्राप्त करती है। इसलिये राधा वहन, अपने ठाकुरजी की पूजा-उपासना करते हुए भी तुम्हारा कर्त्तव्य है कि अपने पति की... ।"

"पूजा ज्यादा मन लगाकर किया करो !" कृष्णचन्द्र वीच मे ही खुश होकर वोल पडा । "सुन लिया न राधा ! अव चौवीस घन्टे ठाकुरजी की पूजा करने की जरूरत नही है । मुझे खुश रखा करो यही तुम्हारे लिए काफी है । भगवती ने निर्णय कर दिया ।"

"किन्तु परमेश्वर ··?"

'परमेश्वर और क्या' ? पति ही तो परमेश्वर होता, जैसे तुम्हारे लिये मै ?"

"हॉ, हॉ, वडे परमेश्वर हो न तुम ! तुम्ही तो दुनिया को वनाते और विगाडते हो। तुम्ही ससार के प्राणियो को उनके कर्मो के अनुसार फल देते हो, तुम्हारे अलावा और तो परमेश्वर है ही कहाँ ?" राधा ने पति को चिढाया ।

"यह क्या वात है भगवती ! राधा को तो अभी अकल आई ही नही ।" कृष्णचन्द्र ने मुँह वनाया ।

"राधा सच कहती है कृष्णचन्द्रजी ! परमेश्वर को पाना आसान नही है । इसके लिये ससार के समस्त पदार्थों पर से आसक्ति हटानी पडती है । प्रत्येक प्राणी के प्रति रहे हुए मोह को त्याग देना होता है । इस ससार के वार-वार जन्म और मरण के दुखो से छुटकारा पाने के लिये मुयुक्षु प्राणी को धन, वैभव, स्वजन, परिजन सभी से नाता तोडकर विरक्ति भाव अपनाना पडता है ।"

"वस, वस भगवती ! राधा को कृपा करके यह शिक्षा मत दीजिये, अन्यथा मै वे-मौत मर जाऊँगा ।" कृष्णचन्द्र का चेहरा दयनीय हो आया और मुँह से शब्द निकल पडे—

"इससे तो अच्छा यही है कि राधा पूर्ववत् अपने ठाकुरजी की पूजा किया करे । मै वाधा नही डालूँगा ।"

"पर ठाकुरजी को तो तुम कल मन्दिर मे रख आओगे न !" राधा ने ओठ दवाकर मुस्कुराहट को छिपाते हुए वनावटी गम्भीरता से कहा—

"नही, नही ले जाऊँगा । वल्कि उनसे और वडे तथा सुन्दर ठाकुरजी खरीद लाऊँगा ।"

राधा खिलखिलाकर हँस पडी। साथ ही पति के अगाध स्नेह का अनुभव कर उसका मन-मयूर नाच उठा। गौरव और गर्व से दीप्त उसका आकर्षक चेहरा अनेकगुनी शोभा विखेरने लगा।

अर्चनाकुमारी उस अद्भुत और पारस्परिक स्नेह से ओत-प्रोत युगल को देखकर विमुग्ध हो गई।

"अच्छा भगवती! अव इजाजत दीजिये। राधा के ठाकुरजी वहुत देर से अकेले है, घवरा रहे होगे।"

'पर तुम तो साथ हो न! ठाकुरजी से भी वडे।" पति परायण राधा ने अपनी सलज्ज पलके उठाकर आँखो ही आँखो मे मुस्कराते हुए कहा।

"नही राधा रानी! मेरी तो छोटा रहने मे ही कुशल है।" उसकी मुख-मुद्रा देखकर अर्चनाकुमारी भी अपनी हँसी नही रोक पाई। वोली—

"अव कव आइएगा आप दोनो?"

"जव ठाकुरजी की आज्ञा मिलेगी।" हँसते हुए कृष्णचन्द्र ने राधा की ओर दृष्टिपात किया। किन्तु राधा ने उसकी ओर न देखते हुए भगवती को नमस्कार किया।

"पुन. आना वहन!"

"अवश्य भगवती! पर अवकी वार इन वडे ठाकुरजी को साथ नही लाऊँगी।"

"क्या · ? क्या कहा···· ?" कृष्णचन्द्र की आँखे फिर कपाल पर चढी।

"कुछ नही, चलो अव।" राधा आँचल से हँसी दवाती हुई चल पडी।

३५

भावुक जानकी

अगले दिन महावीर जयन्ती मनाई जाने वाली थी। जनता बडे उत्साह उल्लास से इस दिन की प्रतीक्षा मे थी। प्रात: काल ब्राह्म मुहूर्त मे ही सैकडो नवयुवक इकट्ठे हो गए और प्रेरणाप्रद मधुर गान गाते हुए प्रभात फेरी के लिये निकल पडे। व्यावर नगर की प्रत्येक सड़क और गली उनके गीतो से गूँज उठी।

प्रभात फेरी के समाप्त होते ही लोग भगवती अर्चनाकुमारी का प्रवचन सुनने के लिये उपाश्रय मे आकर अपना अपना स्थान ग्रहण करने लगे। प्रवचन भवन खचाखच भर गया और सबकी उत्सुक निगाहे बार बार भगवती के लिये नियत किये हुए ऊँचे मच की ओर उठने लगी। धीरे-धीरे घडी ने आठ के टकोरे लगाने शुरू किये किन्तु वे पूरे भी न हो पाए थे कि अर्चनाकुमारी की गरिमामय भव्य आकृति पर लोगो की श्रद्धापूरित दृष्टि पडी। वे अपनी दो शिष्याओं के साथ मथरगति से मच की ओर बढ रही थी। नर-नारियो ने खडे होकर उच्च स्वर से जय-जयकार किया और मस्तक झुकाकर श्रद्धा भेट की। उस तुमुल घोष के साथ ही उन्होने आसन ग्रहण किया तथा अपना दाहिना हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया। उस उठे हुए हाथ मे मानो सबको शात हो जाने का मूक आदेश भी था उसके कारण

कुछ क्षणो मे ही गम्भीर शाति व्याप्त हो गई। स्त्री-पुरुषो के नेत्र भगवती की सौम्य आकृति का सतत दर्शन करने के लिये और कान उनकी मधुर वाणी को श्रवण करने के लिये जागरूक हो उठे।

छोटी सी एक प्रार्थना के बाद ही अर्चनाकुमारी ने अपनी मजी हुई भाषा मे भगवान महावीर की विशेषताओ पर और उनके जन-कल्याणकारी सिद्धान्तो पर विस्तृत प्रकाश डालना प्रारम्भ किया। उन्होने बताया—

"इस विशाल भूतल पर असख्य महापुरुष, अवतार माने जाने वाले विशिष्ट पुरुष तथा जन-मानस पर छा जाने वाले तीर्थंकर भी हुए है। किन्तु भगवान महावीर के समान तपस्वी, अपरिमित धैर्य, साहस, क्षमता और सहिष्णुता का आदर्श उपस्थित करने वाला महापुरुष दूसरा नही हुआ। गोशालक, शूलपाणि यक्ष, सगमदेव, चण्डकौशिक भुजग और अनार्य लोगो द्वारा दी गई रोमाचकारी पीडाओ के समय भी वे सुमेरु के समान अडिग और अडोल रहे। उन्होने महावीर नाम प्राप्त किया।

"महावीर इस पृथ्वी पर एक अद्वितीय क्रातिकारी महापुरुष के रूप मे आए। किसी एक क्षेत्र मे ही नही, वरन् उन्होने सर्वतोमुखी क्राति का बिगुल बजाया। उन्होने ही उस काल के तापसो के बाह्य क्रियाकाड को निरर्थक बता कर उन्हे आभ्यतर तपस्या की ओर प्रेरित किया उसका महत्व समझाया। परस्पर खडन-मडन मे अपनी शक्ति को व्यय करने वाले दार्शनिको को अनेकान्तवाद का महामत्र दिया। जन्मगत जातिवाद, जो कि मानवीय सद्गुणो की अवगणना करता था, उसके स्थान पर महावीर ने गुणो तथा कार्यों को महत्व प्रदान किया। यज्ञ के नाम पर असख्य मूक पशुओ का जीवनान्त कर देनेवाले क्रूर क्रियाकाड का विरोध करके मोक्ष का सही मार्ग सुझाया। उस समय, जबकि नारियो की महत्ता को लोग भूल गए थे, उन्हे उपेक्षा की दृष्टि से देखा जाने लगा था, उन्होने ही 'साध्वी-सघ' का निर्माण करके पुन नारियो को प्रतिष्ठा प्रदान की।"

"महावीर की वाणी मे शाश्वत सत्य था जिसने जन-मानस मे क्राति उपस्थित करदी। विश्व मे हिसा, शोषण और कदाग्रह के स्थान पर, अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त की पीयूष धाराएँ वह निकली।"

"आज विज्ञान के इस विनाशकारी युग मे इन सिद्धान्तो के प्रचार और प्रसार की अनिवार्य आवश्यकता है। तभी आपका मानव-समाज पूर्ण स्वस्थ और प्रसन्न बन सकता है। हमे चाहिये कि हम भारतीय सस्कृति के इन

मूल-भूत सिद्धान्तो को अपनाएँ और समाज तथा राष्ट्र मे सर्वत्र सुख और शाति का सचार करे। तभी हमारा भगवान महावीर को स्मरण करना तथा उनकी जयती मानना सार्थक होगा।"

प्रवचन करीव एक घटे तक चलता रहा। उसके समाप्त होने पर जनता प्रमुदित होकर अपने गन्तव्य की ओर चल दी। धीरे-धीरे भवन खाली हो गया, किन्तु जानकी मन्त्रमुग्ध की तरह वैठी रह गई। उसका ध्यान तव भग हुआ जव अर्चनाकुमारी मच से उतर कर रवाना हो गई। प्रतिदिन के विपरीत आज वह भी उठी और घर जाने के वजाय भगवती के साथ चल कर उपाश्रय मे आई।

लगातार वोलने के कारण कुछ थकी हुई अर्चनाकुमारी ने अपना आसन विछाकर उस पर बैठते हुए कहा—

"आओ जानकी बैठो।"

"जी आप विराजिये।" कहते हुए उनके वैठ जाने पर वह भी समीप ही बैठ गई।

"कहो, प्रसन्न हो न?"

"जी हाँ,।" जानकी ने सक्षिप्त उत्तर दिया किन्तु अर्चनाकुमारी ने लक्ष्य किया कि उसके सदा अव्यक्त और उदास दिखाई देने वाले चेहरे पर एक अभूतपूर्व आतरिक आह्लाद की आभा विखरी हुई थी और नेत्रो मे अवर्णनीय प्रसन्नता की चमक थी। देखकर उनके मन को अत्यन्त सतोप हुआ। परम स्नेह से उन्होने कहा—

"काफी वक्त हो गया जानकी! तुम्हे भोजन करना होगा अब।"

"और आप... ...?"

"मै उपवास करूँगी आज।"

"मै भी उपवास कर लूँगी।"

"क्यो? तुम क्यो कर लोगी?

"यो ही... ।"

"वाह! हम साधु है, यथाशक्ति तपस्या हमे करनी ही चाहिये। पर तुम क्यो करोगी?"

"इसलिये कि आप कर रही है।"

"यह भी कोई वात है! तुम जाओ अव!"

"मन जो नही करता जाने को।" कहते हुए जानकी के चेहरे पर कोई परिवर्तन दिखाई नही दिया किन्तु लगता था कि उसका मन मुस्करा रहा है।

"नही करता मन तो न सही। पर तुम जिद क्यो कर रही हो ? जाती क्यो नही ?" उसके भूखी रह जाने की कल्पना मे उद्विग्न होकर भगवती ने स्नेहसिक्त झुझलाहट से पुन. उसे चले जाने को कहा।

जानकी का चेहरा पलक मारते ही उदास हो आया, बोली—"क्या मेरा आपके समीप अधिक देर ठहरना आपको अच्छा नही लगता ?"

"कैसी पगली हो तुम ! मै क्या ऐसे मन से तुम्हे जाने को कह रही हूँ ?"

"तब कैसे मन से कह रही है आप ?"

"जैसे राम ने वन जाते समय सीता से अयोध्या मे रहने को कहा होगा।"

"फिर सीता रही क्या अयोध्या मे ?"

"नही ....।"

"तब फिर मै ही क्यो आपके कहने से चली जाऊँ ?" अब जानकी का चेहरा मुस्कराहट को छिपा न सका।

अर्चनाकुमारी भी हँस पडी—"अच्छा बाबा, मत जाओ ! तुम जीत गई बस ? पर जानकी ! क्या तुम्हरा मन सीता के समान दृढ है ?" कौतूहल वश उन्होने पूछ लिया।

"इसकी परीक्षा समय आने पर आप स्वय कर लीजियेगा। पर आज तो मैं आपसे कुछ अध्ययन करने की शुरुआत करना चाहती हूँ।"

"अवश्य, यह तो बडी प्रसन्नता की बात है जानकी ! बोलो, तुम क्या पढना चाहती हो ?" भगवती ने अत्यन्त हर्ष और उत्साहपूर्वक कहा।

"मेरी मद बुद्धि जो चीज ग्रहण कर सके वही शुरु करवा दीजिये !"

"कैसी बात करती हो ? बुद्धि मद होती तो तुम एम० ए० कैसे कर लेती ?"

"मैं सत्य ही कह रही हूँ भगवती ! भौतिक ज्ञान मे रट-रटाकर एम० ए०-बी० ए० कर लेना कोई बडी बात नही है। बुद्धिमानी तभी साबित हो सकती है जब आध्यात्मिक ज्ञान हासिल करके उसे आत्मसात् किया जाए। मुझमे इतनी योग्यता कहाँ है ? इसलिये तो मेरा मन बडा व्यथित रहता है। आप कृपा करके मुझे मार्गदर्शन कीजिये जिससे मैं जीवन और

जगत के रहस्य को समझ सकूँ और इस आत्मा की मुक्ति के लिये कुछ कर सकूँ।"

"पराये दुख से पलमात्र मे दुखी हो जाने वाली अर्चनाकुमारी ने दयार्द्र होकर जानकी का कोमल और सुडौल हाथ अपने हाथ मे ले लिया तथा उसे सान्त्वना देते हुए कहा—

"इतनी निराशा क्यो जानकी ! ज्ञान प्राप्ति के लिये जब तुम्हारे हृदय मे इतनी वेकली है तो तुम क्यो नही प्राप्त कर सकती ?"

"लेकिन यह तभी हो सकता है, जबकि मेरे इस थामे हुए हाथ को छूकर, आज के शुभ दिन आप वचन दे कि जीवन मे कभी भी और किसी भी कारण से आप मुझसे विमुख न होगी !"

अर्चनाकुमारी स्तब्ध हो गई। इतने दिनो मे वे जान गई थी कि जानकी अत्यन्त भावुक है, किन्तु उसकी भावुकता इतनी अधिक और सीमातीत है, यह उन्होने आज ही जाना। कुछ क्षणो तक वे कुछ न बोल सकी पर उसके बाद हृदय की गहराई से निकलते हुए उनके एक-एक शब्द को जानकी ने सुना। वे कह रही थी—

"साधुओ का कथन मात्र ही वचन के सदृश होता है जानकी ! हम साधुओ का तो ससार के समस्त प्राणियो के प्रति मदभाव होता है तुम भी उन्ही मे से हो न ! फिर आशका किस बात की ?"

"मेरा मन वेसहारा है भगवती ! अवलवहीन ।"

'ऐसा क्यो कह रही हो ? माता पिता, भाई-भतीजे, भरा-पूरा पीहर और फिर धन-सम्पत्ति तुम्हारे पास प्रचुर मात्रा मे है। किस बात की कमी है तुम्हे ?"

"हाँ, सभी कुछ है और सभी कोई है, पर मुझे लगता है कि मेरा कोई नही है। मेरा कुछ भी नही है। ऐसा क्यो लगता है, मुझे नही मालूम, पर लगता है आप मुझे सहारा दीजिये। मेरे मन को, मेरी आत्मा को, मुझे आपके सभी तरह के सहयोग की अपेक्षा है भगवती ! कहिये प्रदान करेगी ?"

आर्या अर्चनाकुमारी समझ नही पा रही थी कि क्या कहे ? ससार मे रहकर भी अकेलापन महसूस करने, और परिवार के बीच रहकर भी अपने को निराधार मानने वाली भावुक जानकी को वे कैसे सान्त्वना दे ? मोह-

कर्म का कम से कम वध हो, सतत इस प्रयत्न मे रहने वाले उनके मन मे भी छद्मस्थ होने के कारण ममता का ज्वार उमड पडा। इच्छा हुई कि वे जानकी को अपने हृदय से लगाकर एक मासूम बालक के समान थप थपाकर शान्त करे, येन केन प्रकारेण उसे सतुष्ट करे। किन्तु अपनी इच्छा को उन्होने मन ही मन मे रखकर कहा—

"इतनी अधीरता किसलिये जानकी ? तुम समझदार, बुद्धिमती और सुशिक्षित हो। अपना और अपनी आत्मा का हित किसमे है, यह समझने मे समर्थ हो। फिर इतनी चिन्ता और परेशानी किस बात की ? मेरे द्वारा अगर किसी भी प्रकार का सहयोग तुम्हे मिल सकता है तो मै प्रस्तुत हूँ। मेरा अथवा किसी भी सन्त का जीवन अपने और दूसरो के कल्याण के लिये ही होता है, भटके हुए या दुखी मनुष्यो के लिये आश्रयस्थल होता है। साधु-पुरुष दूसरो के दुख से दुखी और उनके सुख से सुखी होते है।"

"इसके अलावा जानकी! तुम्हे सहयोग और साथ ही तुम जैसी विदुषी का ससर्ग पाकर मुझे भी तो परम प्रसन्नता होगी न! जीवन के इस दीर्घ राज-पथ पर प्रत्येक प्राणी, चाहे वह साधु हो या कोई भी साधारण व्यक्ति, एकाकी नही चल पाता। सहयात्री की अपेक्षा रखता है। अपने अनुरूप साथी पाकर वह अपने मार्ग को सुगम महसूस करता है, और सरलता से चल सकने की क्षमता अपने मे अनुभव करता है। निस्वार्थ सहयोग, जिसे हम मित्रता कहते है, उसमे एक अनूठा ही माधुर्य होता है। सु-मित्र का समागम पथ की बाधाओ को सरल करते हुए उसमे होने वाले कष्टो को आधा करता है, यही नही, वह आनन्द को चौगुना बढा भी देता है।"

"भगवती! आप सच कह रही है ? क्या मेरा साथ आपको रुचिकर होगा ? मेरे निर्बल और अशक्त मन को आप अपने साथ आगे बढा सकेगी ? मैं भार रूप नही लगूँगी आपको ?' असीम जिज्ञासा और व्याकुलता से भरे हुए अपने मीन-सदृश नेत्र जानकी ने अर्चनाकुमारी के शान्त और सौम्य चेहरे पर टिका दिये। उसके प्राण मानो उस समय आँखो मे ही आ बसे थे, और कान भगवती का निर्णय सुनने के लिये अधीर हो रहे थे।

अर्चनाकुमारी किंकर्तव्यविमूढ-सी हो रही थी। कुछ क्षणो तक उनके मुँह से बोल निकल ही नही पाए। उन्हे लग रहा था, मानो जानकी की आत्मा जनम-जनम से स्नेह की, आत्मीयता की भूखी है। अत्यन्त विगलित होकर उन्होने जानकी को अपने पास खीच लिया और उसके सिर और पीठ

पर अपना वात्सल्यपूर्ण हाथ फेरने लगी। उस ममतापूर्ण स्पर्श का विद्युत् की तरह असर हुआ और वह अनिर्वचनीय सुख तथा सन्तोप का अनुभव करती हुई अपनी आश्रयदात्री की गोद मे मुँह छिपाकर पड गई। उसकी आँखो से आँसू बह चले।

कुछ क्षण इसीप्रकार बीते। अर्चनाकुमारी ने उसके मन को हलका होने दिया। कोई बाधा नही डाली। कुछ समय बाद जब जानकी सुस्थिर हुई, तो उन्होने परम स्नेह से उसके अश्रुसिक्त चेहरे को ठोडी के सहारे ऊँचा उठाया और आखो के द्वारा उसके हृदय की अबूझ गहराई को छूते हुए कहा—

"तुम मुझे भार-रूप क्यो लगोगी जानकी! अपना मार्ग तुम अपने ही साहस और शक्ति से तो पार करोगी। जीवन-पथ पर चलना तो प्रत्येक प्राणी को स्वय ही पडता है। पर होता यह है कि सशक्त और साहसी व्यक्ति प्रसन्न वदन बना रहकर सरलतापूर्वक अपना मार्ग तय करता है और कमजोर मन का व्यक्ति उत्साह रहित होने के कारण बडी कठिनाई से मजिल की ओर चल पाता है। किन्तु ऐसे निर्बल प्राणियो की यात्रा भी सुगम हो जाती है, अगर उन्हे सच्चा साथी और सहयोगी मिल जाए।"

"जानकी! सहयात्री के बिना यात्रा कठिन हो जाती है। उसके अभाव मे प्राणी न पूरी प्रसन्नता का अनुभव कर पाता है और न दु.ख के बोझ को ही हलका कर सकता है। हर्ष और दुख दोनो का बँटवारा करने वाला साथी ही होता है। सच्चा मित्र है भी वही, जो अपने मित्र के सुदिन और दुर्दिन मे समान रूप से काम आए।"

"इसलिये, तुम मुझ पर विश्वास रखो, मेरे द्वारा तुम्हे जितना भी सहयोग मिल सकता है अवश्य मिलेगा। तुम्हे निराश होने की तथा अपने को निर्बल मानने की तनिक भी आवश्यकता नही है। तुम्हारा सम्पर्क मुझे अत्यन्त प्रिय और रुचिकर होगा। भला तुम-सी सुसस्कृता और उच्चमना का साथ मिलने पर किसे प्रसन्नता नही होगी? अपने आपको हीन मत समझो। तुम्हारी आत्मा मे भी वैसी ही ज्वलत शक्ति छिपी हुई है जैसी मुझमे और ससार के अन्य प्राणियो मे विद्यमान है। सिर्फ उसे जगाने की आवश्यकता है। और यह तुम्हारे लिये तनिक भी कठिन नही। मै प्रयत्न करूँगी कि तुम उसे पहचान सको और आत्मकल्याण मे सहायक बना सको।"

भगवती के आश्वासनपूर्ण वचनो को सुनकर हर्षातिरेक से जानकी विह्वल हो गई। उसका सुन्दर चेहरा कुन्दन के समान दमक उठा और आँखो से अदम्य उत्साह की किरणे फूट पडी। उसे लगा, मानो आज से उसका नव-जीवन प्रारम्भ हो रहा है। प्रत्येक वस्तु उसे नवीन दिखाई देने लगी।

"भगवती ।" जानकी ने कुछ कहना चाहा पर उसका कण्ठ रुक गया, वह कुछ कह न सकी।

"तुम्हे कुछ भी कहने की आवश्यकता नही है जानकी ! मैंने तुम्हारे मन को पढ लिया है। प्रसन्न होओ और अपने मे साहस का सचार करो। तुम जानती हो न, "मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।" अब आओ ! आज से मैं तुम्हे 'तत्वार्थ सूत्र' पढाना प्रारम्भ करती हूँ।

आज्ञाकारी वालक की भाति जानकी उठ खडी हुई और भगवती के चरण-स्पर्श कर प्रसन्नवदन पाठ लेने बैठ गई।

३६

देख ली दिवाली

देखते-देखते छ मास बीत गए। जानकी एक के बाद एक कई धर्म-ग्रन्थ पढ गई। अर्चनाकुमारी के सान्निध्य मे उसकी कमजोर आत्मा शक्तिसचय करती रही और आध्यात्मिक ज्ञान उसके हृदय मे घिरे अवसाद को हटाता गया। अलौकिक आह्लाद से परिपूर्ण उसका मन मानो नया जन्म लेकर अतीत के गह्वर से भाग चला। भगवती के स्नेह का सम्बल उसके निर्बल मन को सबल बनाने मे अतीव सहायक सिद्ध हुआ। निर्बाध शान्ति और सन्तोष उसके चेहरे पर कान्ति बिखेरने लगे। लगता था कि सदा प्रफुल्लित रहने वाला उसका सहज स्वभाव बहुत दिनो की निद्रा के पश्चात् जाग उठा है।

आर्या अर्चनाकुमारी जानकी मे यह परिवर्तन देखकर अत्यन्त प्रसन्न थी। उन्हे उसका सरल और निष्कपट व्यक्तित्व बहुत ही भाता था। जानकी नित्य आती थी, और उसके आते ही उन्हे लगता था मानो उपाश्रय मे मधुरिमा फैल गई हो। उसका पढना, बोलना, हँसना, मुस्कराना या शिशु के समान तनिक-सी बात पर रूठ जाना सभी प्रिय था। पूर्व मे सदा गमगीन बना रहने वाला उसका आकर्षक चेहरा अब कमल के समान विहँसता हुआ दिखाई देता था। किन्तु पन्द्रह दिन बाद ही चातुर्मास समाप्त होने वाला

था और उन्हे वहाँ से प्रस्थान करना था। जानकी के मन पर उसकी क्या प्रतिक्रिया होगी ? कैसे उसे समझाया जायेगा ? दीपावली की शाम को यही सोचती हुई वे बैठी थीं कि उनके कानो मे सुपरिचित मधुर स्वर टकराए।

"भगवती !"

जानकी के गद्गद स्वर से उनकी तन्मयता भग हो गई। देखा, वह चुपके से आई और पैरो पर मस्तक झुकाकर उनकी गोद मे अपनी दोनो कुहनियाँ टिकाकर हथेलियाँ अपने चेहरे पर रखे हुए बैठ गई। उसे इतना पास आकर बैठते हुए और मुस्कुराती हुई दृष्टि से अपनी ओर देखते हुए देखकर अर्चनाकुमारी ने बड़े स्नेह से उसकी बिखरी हुई अलको को समेटते हुए कहा—

"आ गई तुम ?"

"और नही तो क्या बिना आए ही आपके पास बैठी हूँ ?"

जबाब सुनकर अर्चनाकुमारी हँस पड़ी। बोली—

"आज बहुत प्रसन्न हो जानकी ! क्या बात है ?"

"बात तो कुछ नही।"

"फिर ?"

"आज दीपावली है न !"

"तो क्या हुआ ?"

"तो क्या हुआ ? कुछ भी नही ? छोटे से दो प्रश्नो मे से ही ढेर सारे प्रश्न पूछती हुई जानकी ने उलाहने के स्वर मे कहा।

"साधुओ के लिये तो सभी दिन समान होते है जानकी !"

"क्यो होते है समान ? क्या उनके मन नही होता ?" जानकी नाराज होकर बोली।

"मन तो होता है पर उसमे होली, दीवाली के लिये स्थान नही होता।"

"जगह तो आपके मन मे मेरे लिये भी नही थी पर मैंने बनाली या नही ? ऐसे ही दीवाली के लिये भी बन जायेगी। चलिये उठिये न अब !" जानकी ने अर्चनाकुमारी का हाथ खींचकर उन्हे उठाने की कोशिश करते हुए कहा।

"पर कहाँ ...?" उसकी उतावली पर मुस्कुराते हुए भगवती ने आश्चर्य से पूछा।

"ऊपर छत पर। वहाँ से देखेंगे।"

"तो तुम देख आओ जाकर।"

"नहीं आपके साथ चलूँगी।"

"पर मुझे दिवाली यहीं से दिखाई दे रही है।"

"यहाँ से ? कहाँ ? मुझे तो कुछ भी नहीं दिखाई देता ?"

जानकी के व्यग्रतापूर्ण भोलेपन पर हँसते हुए अर्चनाकुमारी ने कहा— "कल्पना के नेत्रों से देखो। असख्य जलते हुए दीपक, रग-विरगे बल्बों मे जगमगाती हुई दुकानें, कानों के पर्दे फाड देने वाले पटाखे, और सुन्दर-सुन्दर वस्त्राभूषणों मे सजे और लदे हुए नर-नारी, और क्या देखना है बताओ ?"

"कुछ नहीं देखना, देख तो लिया सब।" कहते हुए वह भगवती से दूर हटकर चुपचाप बैठ गई।

"अरे, तुम नाराज हो गई क्या ?"

"क्या होगा नाराज होकर।" बहुत ही धीमे स्वर मे जानकी ने उत्तर दिया।

"अच्छा चलो दिवाली देखें।" कहकर अर्चनाकुमारी ने उसे उठाने का प्रयत्न किया किन्तु हाथों पर आसुओं की गरम-गरम बूँदे गिरते ही वे चौंक पडीं।

"अरे, तुम तो रोने लगी जानकी! मैंने तो मजाक किया था। दीपावली के शुभ दिन मे कोई रोता है ?"

"आपके लिये शुभ और अशुभ दिन क्या ? सभी तो समान है। और फिर कल्पना मे दिवाली देख ही ली, अब क्या देखेंगी चलकर ?"

जानकी का गुस्सा बडा प्यारा लग रहा था पर आँसुओं का गिरना नहीं, अत अर्चनाकुमारी एक तरह से उसे खींच ले गई।

छत पर पहुँचते ही उसकी रोती हुई आँखें हँसने लगीं। और वह खुश होकर जगमगाते हुए दीपकों को देखती रही। आज उसे दिवाली देखने मे जो खुशी हो रही थी, वह अवर्णनीय थी। दीपक की प्रत्येक लौ उसके हृदय मे खुशी का ज्वार ला रही थी। चारों ओर बिखरे हुए समग्र प्रकाश को उसके नेत्र अपने मे समाए ले रहे थे। धीमे स्वर मे वह कुछ गुनगुना उठी।

अर्चनाकुमारी का ध्यान रोशनी की ओर नहीं था। वे एक खम्भे के

सहारे खडी हुई शून्य दृष्टि से किसी एक ही ओर निहारे जा रही थी, पर जानकी की धीमी गुनगुनाहट ने उनका ध्यान खींच लिया।

"क्या गा रही हो जानकी ?"

चोरी पकडी गई जानकर जानकी शरमा गई, बोली—

"गा कहाँ रही थी भगवती ! यो ही ..."।

"पर सुनाओ न ! तुम कविताएँ लिखती हो पर मुझे आज तक एक भी न सुनाई। आज सुनानी पडेगी।" अर्चनाकुमारी ने आग्रहपूर्वक कहा और वही छज्जे के नीचे बैठ गई।

छुटकारे का रास्ता न पाकर जानकी उनके समीप ही बैठ गई और गाने का साहस बटोरने लगी। कुछ क्षणो बाद ही उसके सधे हुए कठ से स्वर बह चले—

जल रहे दीप अगणित सभी ओर, पर,
आज मै देखती हूँ तुम्हे ही तुम्हे !
मौन सदेश इनको सभी दे रहे, मै,
मगर कह रही हूँ तुम्हे ही तुम्हे !
इक नई ज्योति जो जल उठी प्राण मे,
शान्ति जो यह अनोखी वसी प्राण मे,
आज नूतन जनम मिल गया है मुझे,
औ, नई चाह भी जग गई प्राण मे।
मत इन्हे अब भुलाना कभी प्राण तुम !
अब न मन को सताना कभी प्राण तुम !
स्नेह दीपक जलाया बड़ी साध से,
अब न इसको बुझाना कभी प्राण तुम !
पास आकर न अब दूर जाना कभी,
बस यही आज मैं कह रही हूँ तुम्हे !

अर्चनाकुमारी मुग्ध होकर सुन रही थी। गीत समाप्त होते ही सराहना किये बिना न रह सकी—

"बहुत सुन्दर गाती हो जानकी ! कितनी भावुक हो तुम ? तुम्हारा अन्तर और बाह्य दोनो ही अनुपम है।"

"पन्सद आया आपको—? जानकी ने सकुचित होते हुए वात काटी।"

"क्यो नही, वहुत पसन्द आया। पर अव चलो, जल्दी, कल का पाठ सुना दो, और नया याद करने के लिये ले लो।"

"आज तो जी नही चाहता ··· ··।"

"तो तुम्हारा जी आखिर चाहता क्या है ?" अर्चनाकुमारी ने मीठी झिडकी दी।

"आपकी गोद मे चुपचाप लेटे रहना। आज दिवाली है न ?"

"पागलपन मत करो जानकी! साधुओ का किसी पर अधिक मोह रखना ठीक नही" लेकिन तव तक जानकी भगवती की गोद मे मस्तक रख कर लेट चुकी थी। उनके वात्सल्य मे भीगी हुई परम-सुख का अनुभव करती हुई वह लापरवाही से वोली—

'क्यो ? क्या साधुओ के मन मे स्नेह भी नही होता भगवती!"

"होता है, किन्तु उस पर ससार के प्रत्येक प्राणी का अधिकार होता है। किसी एक पर ही अपनी ममता उडेल देने से साधु अन्य प्राणियो को समान भाव से स्नेह दान करने के अपने कर्तव्य का पालन नही कर सकता।"

"तो न सही। ससार मे असख्य साधु महात्मा है। हिन्दू, मुमलमान, वौद्ध, ईसाई, सिख आदि सभी जातियो मे साधु सन्तो की कमी नही, उनमे से एक आप ही सिर्फ अपने कर्तव्य का पूरी तरह से पालन न कर पाएँ तो क्या फर्क पडेगा ?"

"वाह, यह कैसी वात है तुम्हारी ? कल को तुम यह भी कह दोगी कि ससार के अनेक साधु-सन्त तो मोक्ष मे जाएँगे ही, एक आप ही मुक्ति प्राप्त न कर पाए तो क्या फर्क पडेगा ?"

जानकी खिलखिलाकर हँस पडी और वडे लाड से अर्चनाकुमारी के गले मे अपनी वाँहे डालते हुए वोली—

"यह कैसे कहूँगी भगवती! मुक्ति प्राप्त करना और स्नेह देना क्या एक ही वात है ? मुक्ति तो प्राणी को अपने ही परिश्रम से प्राप्त करनी पडती है, पर स्नेह तो विना परिश्रम किये भी मिल जाता है। और वह भी एक से नही तो दूसरे से और दूसरे से नही तो तीसरे से प्राप्त किया जा सकता है।"

"आज तुम्हे हो क्या गया है ?" धीरे से जानकी के हाथो को अपने गले मे से निकालते हुए अर्चनाकुमारी ने कहा।

"कहाँ ? कुछ भी तो नही हुआ ।"

"फिर ये उल्टी सीधी वाते क्यो कर रही हो । छ महीने मे यही सब पढा है क्या मुझसे ?"

"नही, पढा तो सब सीधा ही है, पर आज दीपावली के कारण उस सबसे छुट्टी ले रखी है ।"

"छुट्टी ? छुट्टी तो पन्द्रह दिन बाद तुम्हे यो ही मिल जाएगी ।"

"क्या मतलब ?" जानकी ने चौंकते हुए पूछा ।

"मतलब यही कि पन्द्रह दिन बाद चातुर्मास समाप्त हो जाएगा और हम यहाँ से चल देगे ।"

"क्या ? क्या कहा आपने ?"

"कहा तो जानकी ! कि हमे चातुर्मास के समाप्त होते ही यहाँ से विहार करना होगा ।"

"नही, यह नही हो सकता, कभी नही हो सकता ।" जानकी तडपकर बोल उठी ।

अर्चनाकुमारी उसकी उत्तेजना देखकर पल भर को सहम गई । पर फिर धीरे से उसका हाथ अपने हाथो मे लेकर समझाने का प्रयत्न करती हुई बोली—

"जानकी, शान्त होकर मेरी बात सुनो !"

"नही ! मै कुछ भी सुनना नहीं चाहती ।"

कहते हुए तीव्र झटके से अपना हाथ छुडाकर वह सतर होकर बैठ गई । मारे आवेश के उसका चेहरा लाल हो गया और आँखो की पुतलियाँ आँसुओ मे डूब गई ।

"मुझे समझने की कोशिश करो जानकी ! इतनी बुद्धिमती होकर भी जरासी बात पर नाराज होना तुम्हे शोभा देता है क्या ?" अर्चनाकुमारी के स्वर मे अनुनय का पुट था ।

"यह जरा सी बात है आपकी ? आज का दिन ही मिला आपको प्रस्थान का शुभ समाचार सुनाने के लिये ? मुझे तो क्रोध करना शोभा नही देता पर आपको यह निष्ठुरता दिखाना शोभा देती है ? और देगी क्यो नही, आप साधु जो है । साधुओ के हृदय मे उपेक्षा, विरक्ति और कठोरता के अलावा और क्या हो सकता है ? स्नेह और कोमलता का बीज ही जब तक भस्म न हो जाय तब तक आप साधु कैसे ?"

असह्य क्रोध के कारण जानकी आपे से बाहर हो गई। छोटे बडे का, गुरु और शिष्य का भेद-भाव ही उस समय उसके दिमाग से निकल गया। वह भूल गई कि जिनको आज वह जली कटी सुना रही है, उनसे कुछ मिनिट वार्तालाप करने के लिये भी दुनिया तरसती है। जिसके हाथो मे से उसने तेजी से हाथ खीच लिया है, उनके चरणों को एक बार छूने के लिये भी प्राणी लालायित रहते है। और जिनका उसने इतना समय बरबाद किया है उनके क्षणभर दर्शन कर पाने को ही अपना सौभाग्य मानते है। बुद्धि और ज्ञान सब उसके हृदय के किसी अज्ञात कोने मे अपना म्लान मुँह लेकर जा छिपे।

मोह-कर्म की यह करामात देखकर भगवती अर्चनाकुमारी दग रह गई। कुछ क्षण किकर्तव्यविमूढ की सी स्थिति मे गुजारने के पश्चात् वे पश्चात्ताप-पूर्ण स्वर से बोली—

"मुझसे वास्तव मे भूल हुई जानकी! मैंने असमय मे विहार की बात कहकर तुम्हारे कोमल मन को दुखाया। इसके लिये तुम मुझे क्षमा करो। मैं अपनी गलती के लिये स्वय भी प्रायश्चित्त करे लेती हूँ।"

अबकी बार दग रह जाने की बारी जानकी की थी। भगवती के शब्दो से चमत्कृत होकर पूछ बैठी—

"कैसा प्रायश्चित्त ... ...?"

"आज की सम्पूर्ण रात्रि इसी आसन पर बैठकर ध्यान और स्वाध्याय करके गुजारूँगी।" अत्यन्त शान्ति और स्निग्धतापूर्वक अर्चनाकुमारी ने उत्तर दिया।

जानकी पानी-पानी हो गई। समस्त रोष आँखो की राह बह चला। घोर पश्चात्ताप की आग मे जलकर उसका मन मोम हो गया। भगवती को कहा हुआ एक-एक शब्द स्वय उसे सालने लगा। विगलित होकर उसने दोनो हाथो से उनके चरण पकड लिये और रुँधे हुए कण्ठ से बोली—

"मुझे क्षमा कीजिये भगवती! दोष मेरा ही है। मेरे अपराध के लिये आपको प्रायश्चित्त करने की जरूरत नहीं। और अगर आपने ऐसा किया तो मै भी घर नही जाऊँगी। यही इसी तरह आपके पैर पकडे बैठी रहूँगी। आगे वह बोल नही सकी। पैरो पर टप-टप गिरते हुए आँसू ही आगे की बात अर्चनाकुमारी से कह चले।

अत्यन्त उद्विग्न होकर करुणामयी भगवती ने उस स्नेह की भूखी जानकी को हृदय से लगा लिया और उसके भीगे कपोलो पर से बहते हुए आँसुओ को पोछती हुई बोली—

"तुम तो सचमुच ही पगली हो जानकी ! क्यो रोई इतनी ?"

"आपने क्यो कहा जाने के लिये ?" जानकी रूठे हुए स्वर मे कह उठी ।

"मैंने भूल की, पर उसकी सजा भी तो तुमने कम नही दी ।" अर्चना कुमारी ने उसकी ठोडी उठाकर मुस्कराते हुए कहा ।

"मैं तो मूरख हूँ·· · ···।" कहती हुई जानकी ने पुन. उस ममतामयी गोद मे मुँह छिपा लिया ।

३७

कब....?

समय वीतना था, वीत चला। चातुर्मास समाप्त होना था, हो गया। किसी को सुख होता है या दुख इसकी परवाह काल ने कभी की नही, तो उस वार जानकी के कारण वह अनवरत गति मे व्यक्तिक्रम क्यो डालता ? अनन्त पथ का वह पथिक कदम वढा चला और भगवती के प्रस्थान की वेला आ पहुँची।

महामहिम वसुन्धरा पर प्रथम वार नयन उघाडने से लेकर अव तक के जीवन मे अर्चनाकुमारी ने अगणित उलट-फेर देखे। प्रत्येक वार उन्होने अपना मार्ग चुना, और दृढता से उस पर कदम वढाए। वे अडिग चरण कभी थमे नही, हारे नही। वढते रहे, चलते रहे। पर समस्त वाधाओ को ठोकर मार कर हटा देने वाले उन धीर चरणो मे इस वार जानकी का स्नेह वेड़ी वन गया, जिसे हटाना असभव तो नही, पर कठिन अवश्य था। वज्रमयी वेडियाँ सरलता से तोडी जा सकती है किन्तु कुसुमवत् कोमल स्नेह-पाश तोडना देवताओ के लिये भी मुश्किल है। मानव की तो फिर विसात ही क्या है। हाँ, साधु इसके लिये अपवाद होते है और इसीलिये अर्चनाकुमारी अपने निर्दिष्ट समय पर प्रस्थान करने के लिये उद्यत हो गई।

इस वीच अर्चनाकुमारी के पिता महामुनि श्री जगतनारायण जी का,

तथा महिमामयी आर्या महिमावती का स्वर्गवास हो चुका था। वडो का साया धीरे धीरे उनके मस्तक पर से हट जाने पर नवीन शिष्याओ के लिये वे स्वय छत्र-छाया वन गई। गुरुता के गौरव को धारण किये हुए अपनी दो शिष्याओ सहित उन्होने राजस्थान की राजधानी जयपुर की ओर कदम वढाए। असख्य नर-नारी काफी दूर तक उनके साथ रहे और अन्त मे भाव-भरी विदाई देकर लौट चले।

जानकी चुपचाप चल रही थी। कई दिनो से उसकी जवान पर मानो ताला लग गया था। उसके सौम्य चेहरे पर से हँसी लुप्त हो गई थी, और हृदय मे प्रफुल्लता के स्थान पर विषाद ने घर कर लिया था। आज भी वह एक शव्द भी उच्चारण किये बिना यन्त्रवत् चल रही थी। उसके शुष्क चेहरे और वुझी हुई आँखो की ओर देखकर भगवती का हृदय व्यथा से परिपूर्ण हो गया। दवे हुए स्वर से उन्होने पुकारा—

"जानकी !"

"जानकी ने कोई उत्तर नही दिया। उसने सुना ही नही। लगता था कि उसकी इन्द्रियाँ उसकी इच्छा से काम नही कर रही थी, उनसे वलपूर्वक काम लिया जा रहा था। अर्चनाकुमारी ने तनिक समीप आकर पुन. कहा—

"जानकी सुनो ! अव तुम भी लौट जाओ। सव लौट जा रहे हैं।"

इस वार जानकी ने सुन लिया और उसी क्षण भगवती के चरण छूकर जाने को उद्यत हो गई। वोली कुछ नही।

अर्चनाकुमारी दिग्मूढ की तरह उसे देखने लगी। सोच रही थी, यह आज्ञा पालन कैसा ? न शिकवा, न शिकायत और नही शीघ्र लौटने का आग्रह। भारी कठ से उन्होने स्वय कहा—

"जानकी, प्रसन्न रहना ! हम वापिस जल्दी लौटेंगे।"

"कव.......?

जलती हुई आँखो, और सूखे हुए गले से पूछा गया यह दो अक्षरो का प्रश्न वन्दूक की गोली की तरह अर्चनाकुमारी के दिल और दिमाग मे धँसता चला गया। क्या जवाव दे इसका, सूझा ही नही। वह कैसे कहती कि उनका साधु जीवन है। एक एक कदम चलकर ही जमीन नापनी पडती है। ट्रेन या वस मे वैठकर तो जा नही सकते, ऊपर से लम्वी यात्रा। जयपुर देहली और पजाव होते हुए सभवत वे काश्मीर की ओर निकल जाएँ। और इतने

मे तो दो-चार वर्ष भी लग सकते है। तो क्या इसी को जल्दी लौटना कहा जाएगा? अपनी जवान से निकाले हुए शब्दो पर पश्चात्ताप करता हुआ उनका हृदय मन-ही-मन सिर धुनने लगा। जानकी की एकटक देखती हुई झिझक हीन निगाहो की ओर देखने मे उन्हे भय मालूम हो रहा था। साथ मे आए हुए समस्त स्त्री-पुरुषो को क्षण भर मे मगल-मत्र सुनाकर विदा दे देने वाले उनके हृदय मे एक शब्द 'कब' उथल-पुथल मचा रहा था। उसका समाधान किये विना कदम कैसे बढते? मानो वही थम गए। मन की इस उलझन से परास्त होकर वे समीप ही पडे हुए शिलाखण्ड पर बैठ गई और खीचकर जानकी को भी बिठा लिया। टूटती-सी देह लिये जानकी अर्चनाकुमारी के समीप बैठ गई।

"अपने मन को सम्हालो जानकी!" अत्यन्त नरम स्वर से कहते हुए भगवती ने जानकी का मुँह अपने हाथ से ऊँचा उठाया पर देखा कि उसकी पुतलियाँ अश्रुओ मे तैर रही थी।

"छि यह क्या....? तुम तो रो रही हो।"

"जानकी कुछ बोली नही, उसने अपना मुँह नीचे की ओर झुका लिया। आँसू झर-झर कर हृदय को हलका करने लगे।

अर्चनाकुमारी ने सतोष की सास ली। वे जानती थी कि गहरी से गहरी व्यथा को भी आँसू अपने साथ बहाकर मन को हलका कर देते है। वे कुछ कहने ही जा रही थी कि सहसा घोडे की टापो की आवाज सुनाई दी। मुडकर देखा तो मालूम हुआ कि एक तागा आ रहा है और उसमे कृष्णचन्द्र अपनी पत्नी राधा के साथ बैठा हुआ है। कुछ क्षणो मे ही तागा समीप आ गया और दपती नीचे उतरे। देखकर अर्चनाकुमारी के चेहरे पर बरबस तनिक-सी मुस्कान फैल गई और जानकी के आँसू व्याघात पाकर थम गए। उन्हे पोछकर वह सतर्क होकर बैठ गई।

"भगवती! नमस्कार। आपने तो अचानक ही प्रस्थान कर दिया।"

"अचानक कैसे भाई? चातुर्मास समाप्त हुआ, और चातुर्मास के पश्चात् साधुओ को भ्रमण तो करना ही चाहिये।"

"क्यो .....?"

"क्योकि भ्रमण किये विना वे अधिक से अधिक लोगो के सम्पर्क मे नही आ सकते। साधुओ का जीवन सिर्फ अपने कल्याण के लिये नही होता। उनके हृदय मे मानव मात्र के कल्याण की कामना होती है। अपना परिवार,

अपना मोहल्ला और अपना नगर ही उनके लिये अपना नहीं होता, सारी सृष्टि उनकी अपनी होती है। इसके अलावा आज शहरों की अपेक्षा छोटे-छोटे गाँवों मे जाकर जहाँ शिक्षा का प्रचार और प्रसार अधिक नही होता तनिक-तनिक सी बात पर लोग मरने और मारने के लिये तैयार हो जाते है, ऐसे अज्ञानियो को सन्मार्ग पर लाना साधुओ का कर्तव्य है, और उसे पूरा करने के लिये भ्रमण करना अनिवार्य है।"

"लेकिन आप तो काश्मीर की ओर जाने का विचार कर रही हैं जहाँ के अधिकाश लोग मासाहार पर जीते है, धर्म किस चिडिया का नाम है, यह भी नही जानते। ऐसे लोगो के बीच आप किस प्रकार निर्दोष आहार प्राप्त कर सकेंगी, और कैसे उनको धर्म का मर्म समझा पाएँगी ? हिंसा करना जिनके लिये युगो से एक सहज और स्वाभाविक क्रिया बनी हुई है, ऐसे पापियो के लिये मार्ग के अनेकानेक कष्ट आप क्यो सहेगी भगवती ?"

"आप भूल कर रहे है कृष्णचन्द्र जी ! जागे हुए को जगाने की अपेक्षा सोए हुए को जगाना अधिक जरूरी होता है। धर्म तो अधम-उद्धारण है। पापियों को उपदेश की आवश्यकता धर्मात्मा लोगो से अधिक है। जिन लोगो को किसी ने करुणा, दया और क्षमा का महत्व नही समझाया, मानव-धर्म क्या है यह नही बताया, ऐसे लोग अगर हिंसा तथा अन्य पाप करते हैं तो उसमे उनका क्या दोष है ? वे हमारे लिये दया के पात्र हैं, घृणा के नहीं। दूसरी बात है निर्दोष आहार प्राप्त होने की, इसके लिये आप चिन्ता न करें। जैसा कि आपने कहा, उधर अधिकाश व्यक्ति मासाहारी होते हैं। ठीक है, पर सब तो नही न ? फिर क्या ? मिलेगा ही कुछ न कुछ। सयम मार्ग पर चलने वाले प्राणी भूख-प्यास की परवाह नही करते। और इसीलिये रूखा-सूखा खाकर और अनेक बार फाके करके भी अपना आचार शुद्ध बनाए रखते है।"

"आप धन्य है भगवती ! ईश्वर आपके महान उद्देश्य की पूर्ति करे। हमारी शुभ कामनाएँ आपके इस सुदूर प्रवास मे साथ रहेंगी। आप जिस महान् लक्ष्य को लेकर इस लम्बी यात्रा पर निकल रही हैं, आपकी दृढता उसमे निश्चय ही सफलता प्राप्त करेगी।"

"आपकी शुभ कामनाओ को मैं सदा याद रखूँगी कृष्णचन्द्र जी ! पर अब आठ बज गए है। धूप तेज हो जाने से हमे चलने मे दिक्कत होगी।

अत अव रवाना होना चाहिये।" कहते हुए अर्चनाकुमारी उठ खडी हुई पर राधा पर दृष्टि पडते ही उन्होने सस्नेह पूछा—

"राधा वहन, अच्छी हो न ? आज कुछ वोली नही तुम ?"

"भगवती ! मै आप लोगो की वात सुन रही थी।" राधा ने आदरपूर्वक उत्तर दिया। पर कृष्णचन्द्र जल्दी से वोल पडा—

"मै वताता हूँ भगवती ! इसके न वोलने का असली राज। इसके ठाकुर जी चोरी चले गए।"

"अरे.. ! यह कैसे ?" अर्चनाकुमारी चकित हुई।

"ऐसा हुआ कि चोर ठाकुरजी का सोने का सिहासन चुरा ले गया। उसी मे ठाकुरजी सोये हुए थे। छोटे से तो थे ही, उसी मे चले गए।

"फिर. ....?"

"फिर क्या मैंने वहुत कहा कि दूसरे वडे और अच्छे ठाकुरजी ला देता हूँ। पर यह कहती है, अव ठाकुरजी लाने की जरूरत नही। तुम तो हो उनकी जगह।"

"राधा अव चुप न रह सकी। गुस्से से आँखे तरेरती हुई वोली—

"फिर झूठ वोले ! मैने कव कही ऐसी वात ? तुम्ही ने तो कहा था कि अच्छा हुआ चोरी चले गए, ऐसे ठाकुरजी किस काम के जो अपनी रक्षा स्वय न कर सके।"

"तो यह वात क्या गलत है भगवती ? ठाकुरजी तो मै लाऊँगा ही, नही तो उनके भोग के वहाने वना हुआ स्वादिष्ट प्रसाद मुझे कैसे मिलेगा ?"

"तो वढिया खाने को मिले, इसलिये लाओगे तुम ठाकुरजी ?" राधा ने स्नेह मिश्रित क्रोध से आँखे नचाते हुए पूछा।

"और नही तो क्या, मै सुवह शाम उनकी आरती उतारूँगा ? उनके सामने घटा वजाऊँगा ?"

"कैसे उलटी सीधी वाते कर रहे हो ? तुम प्रतिदिन उनकी पूजा करते हो आरती उतारते हो, और घटा वजाते हो। पर भगवती के सामने यह सव स्वीकार करने मे शायद शर्म आ रही है।"

'वाह, मुझे शर्म किस वात की ? पर वह सव तो मैं तुम्हे खुश करने के लिये करता हूँ वरना.. ।"

"वस, वस, रहने दो । ज्यादा सफाई देने की जरूरत नहीं । भगवती को देर हो रही है ।"

"पर मैं तो भगवती के साथ कुछ दूर तक पैदल जाऊँगा । तुम जानकी वहिन के साथ तांगे पर लौट जाओ ।"

"ठीक है, चलो वहन !" राधा ने जानकी को अत्यन्त स्नेह पूर्वक अपने साथ चलने का आग्रह किया ।

जानकी उठ खड़ी हुई और उसने भगवती अर्चनाकुमारी से नमस्कार किया ।

म्लान मुस्कराहट पूर्वक उन्होने आशीर्वाद दिया और कहा—

"प्रसन्न रहना जानकी । कुशल समाचार देती रहना ! कभी-कभी हमसे मिलने आओगी न ?"

"जी . . !" प्रयत्न करूँगी । वह अधिक वोल न सकी ।

अर्चनाकुमारी ने क्षण भर के लिये उसे आपादमस्तक देखा और घूमकर चल दी ।

जानकी निर्निमेष दृष्टि मे, जव तक भगवती नेत्रो से ओझल न हो गई उनकी ओर देखती रही और अन्त मे एक गहरा नि श्वास छोडकर भारी हृदय मे राधा के साथ तांगे मे आकर वैठ गई ।

३८
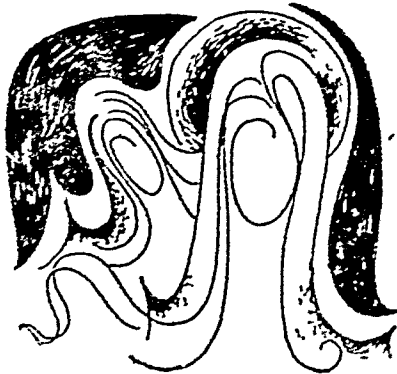
गोली मार दूँगा !

"अजी सुनते हो·· ·· ?"

"क्यो क्या बात · ··· है ?"

"बात और क्या होगी, चार बज गए । मैं रसोई चढा रही हूँ । तुम अब सिलवट्टे के पास से उठो न ! नहाने धोने जाओ ।"

"उठता तो हूँ ठकुरानी ! तग मत करो । साली कुछ असर ही नही करती । एक लोटा पी गया पर लगता है चखी ही नही । आज फौज मे होता तो गोली मार देता । पर होता कैसे ? सरकार अधी जो है । उसे दिखाई कहाँ देता है कि साठ साल का हो गया हूँ फिर भी बिना हथियार के शेर को मार सकता हूँ, इतनी ताकत है मुझमे । साली पैंशन क्या देती है मुझे, हाथ पैर तोड कर रख दिये । क्या करूँ पैंशन का जब अपनी ताकत आजमाने का मौका ही नही मिलता ।"

"क्यो नही मिलता मौका ? यह क्या रोज सिलवट्टे पर ताकत आजमाया करते हो ।" ठकुरानी रूपा ने ओढ़नी का पल्ला मुँह से कुतरते हुए कह दिया ।

"देखो भागवान ! मजाक मत किया करो, नही तो गोली मार दूगा ··।"

"कैसे मार दोगे ? बन्दूक है भी · · ?"

"नही है तो न सही । तुम्ही बताओ मैं क्या करूँ, मेरे हाथ पैरो मे जग लगी जा रही है और तुमको हँसी सूझती है । असली राजपूत हूँ बजरग, हाथ पर हाथ धरे कैसे बैठा रहूँ ?"

"तभी तो कहती हूँ कही नौकरी कर लो ।"

"फिर तुमने नौकरी का नाम लिया । ठाकुर बजरग किसी की नौकरी करेगा ? गुलामी ?"

"तो फौज मे और क्या करते थे····?"

"वह देश का काम था, दुष्टो को सजा देने का । अच्छे काम के लिये मर मिटना गुलामी नही, बहादुरी कहलाती है । सिर हथेली पर लिये रहना पडता है । उस समय मुझे जो सुख था उसका हजारवाँ हिस्सा भी आज नही है । इससे तो अच्छा होता कि मैं तभी किसी लडाई मे काम आ जाता ।"

"हाय, हाय, ऐसा मत कहो ! काम आते तुम्हारे दुश्मन ।" रूपा ने विकल होकर पति के मुँह पर हथेली रख दी ।

"मैं क्या झूठ कहता हूँ रूपा ! बहादुर होकर घर मे बैठा रहूँ, यह मेरे लिये शोभा की बात है क्या ? इसी दुख को भुलाने के लिये तो थोडी-सी छान लेता हूँ । लेकिन ससुरी यह भी अब असर नही करती ।" ठाकुर बहकने लगा—

"तीन तीन ब्याह किये पर भगवान की कृपा न होने से औलाद भी नही हुई । साली एक भी हो जाती तो गोली मार देता····।"

"किसे गोली मार देते ? औलाद को ?" रूपा जोर से हँस पडी ।

"क्या कहती हो तुम ? कोई अपनी औलाद को भी गोली मारता है या मैं ही मार देता ?" ठाकुर का नशा क्षण भर के लिये मानो हिरन हो गया ।

"मै क्या जानूँ ? तुम्ही कह रहे थे अभी !" ठकुरानी ने वार्तालाप मे आनन्द लेते हुए फिर उसे छेडा ।

"मै कह रहा था तो ठीक ही तो कह रहा था । कोई झूठ बोला है मैंने ? ऐसी औलाद किस काम की जो कभी पैदा ही न हो । मैने तो सुना है कि भगवान के राज्य मे देर हो सकती है पर अधेर नही । यहाँ तो अधेर ही

अधेर है। साठ साल का हो गया पर मिट्टी का एक पूत भी देखने को न मिला। अच्छा ही हुआ साले पैदा होते तो सबको फौज मे भेज देता।"

"हाँ, और क्या करते तुम···?" रूपा ठकुरानी फिर हँस पडी।

"क्यो ? मै क्या कुछ कर नही सकता ? अब भी लडाइयाँ लड सकता हूँ, बात की बात मे कइयो को जमीन पर सुला सकता हूँ। मेरा अचूक निशाना देखा है तुमने ? गई हो तुम कभी फौज मे ?"

"मै क्यो जाने लगी फौज मे ? अपनी पहले वाली दोनो बीवियो को क्यो नही ले गए ?" रूपा ने चिढाया।

"कैसे ले जाता, दोनो ही बीमार रहती थी। एक को तपेदिक हो गया था दूसरी को मिरगी। वही मैदान मे गो-गो करने लगती।"

"तो क्या मै ही फालतू हूँ फौज मे ले जाने के लिये ?"

"अरे, कौन साला ले जाता है तुम्हे फौज मे ? एकाध गोली लग जाए तो वही भगवान को प्यारी हो जाओ। और इधर बुढापे मे मेरी मिट्टी पलीद हो। निकम्मी औलाद भी तो कोई नही है। होती तो कुछ बात भी थी। पर मुझे क्या ? मरने दो सालो को नही है तो। मै क्या परवाह करता हूँ किसी की ? होते भी तो साले कोई फौज मे जाते ? आजकल के लडके सब हरामखोर होते है। हाथ पैर ही नही हिलते उनके। मुझे ही बैठाकर खिलाना पडता। कोई साला ठडाई बाँट कर भी नही देता।"

"अरे तो गालियाँ क्यो देते हो बिचारो को ?" हँसमुख रूपा ने पति के नशे का पूरा आनन्द लेना चाहा।

"क्या करूँ गालियाँ नही दूँ तो ? मेरे बुढापे मे भला वे किस काम आए बताओ ? यह तो गनीमत है कि मेरे शरीर मे अब भी हाथी जितनी ताकत है, नही तो वह आलसी की औलाद मेरे किस काम आती आज ? मुँहजला एक भी तो आसरे का नही हुआ।"

रूपा अब जब्त न कर सकी। पति की उलटी सीधी बातो को सुनकर वह हँस हँस कर दोहरी हो गई।

"तुम इतना हँस क्यो रही हो ठकुरानी ? क्या अपनी औलाद को कोई कुछ कहता नही ? जी जलने लगता है तो मुँह से कुछ निकल ही जाता है। इसमे इतना हँसने की क्या बात है ? पर देखो तो, दूर सडक पर कौन आता हुआ दिखाई दे रहा है ? कोई साधु-साध्वी है क्या ?" अचानक ही सडक की ओर देखते हुए ठाकुर ने कहा।

रूपा चौंक कर उठ खड़ी हुई। उसका मैका किशनगढ मे था जहाँ साधु-साध्वियो का आना-जाना बना ही रहता था। राजपूत होने पर भी बचपन से ही वह सतो को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होती थी और कभी कभी उनके दर्शन करने जाया करती थी। उसके पिता साधुओ के परम भक्त थे और अनेक बार वे सतो को भिक्षा देने के लिये घर लाया करते थे। ठाकुर की बात सुनते ही उसने सडक पर आँखे फैलाई और अत्यन्त प्रसन्न होकर बोल पडी—

"हाँ ठाकुर ! यह तो जैन साध्वियाँ हैं। हमारे धन्य भाग जो आज हमे इनके दर्शन होगे।" रूपा कुछ और कहने को थी पर पति की गम्भीर मुख-मुद्रा देखकर चुप हो गई। देखा—क्षण भर मे ही ठाकुर का नशा गायब हो गया था, और चेहरे पर कठोरता आ गई थी। वह बोला—

"देखो ठकुरानी, मै कितनी ही बार कह चुका हूँ कि तुम्हे साधु-साध्वियो से सम्पर्क रखने की जरूरत नही। पर तुम हो कि मानती ही नही। जाओ अन्दर जाकर खाना बनाओ।"

रूपा सहम गई, पर बोली कुछ नही। पति के स्वभाव को वह जानती थी। चुपचाप मन मारकर भारी कदमो से अन्दर चली गई।

ठाकुर बजरग बचपन से साधु-साध्वियो के प्रति उपेक्षा रखता आया था। उसके पिता, दादा, परदादा सभी फौज मे रहे थे। वह भी अपनी युवावस्था से ही पल्टन मे भरती हो गया था। मरने, मारने और लडने के अतिरिक्त और कोई विचार उसके दिमाग मे उन दिनो नही आते थे। जीवन भर फौज मे रहने के कारण उसे रिटायर हो जाने पर भी फौज के ही सपने आते रहते थे। हर समय बन्दूक, गोली और लडाई ही उसके दिमाग पर छाई रहती। दुर्भाग्य से शादी होने के बाद साल भर मे ही उसकी पहली पत्नी मर गई और दुबारा शादी करने के करीब दो वर्ष मे दूसरी भी चल बसी। पिता ने तीसरा ब्याह भी कर दिया। तीसरे ब्याह की रूपा अत्यन्त खुशमिजाज और भगवान तथा साधु-सतो मे भक्ति रखने वाली सुन्दर युवती थी। बजरग ठाकुर इस दृष्टि से विपरीत विचारो वाला था। भक्ति नाम की भावना उसके हृदय मे कभी पैदा नही हुई। साधु-साध्वियो के नाम से ही उसे चिढ थी, और इसीलिये ऐसे सयोग आ पडने पर वह ठकुरानी रूपा से नाराज हो जाता। जीवन मे इसे दो प्रकार मे दुख महसूस होते थे। एक तो फौज से छुट्टी मिल जाना, और दूसरा कोई संतान न होना। दोनो ही दुखो को

भूलने के लिये वह प्रतिदिन भग पिया करता। तीसरी पत्नी रूपा ही उसके बुढापे का एकमात्र आधार थी। उसके विमुख हो जाने के भय से वह उसे भरसक भगवद् भक्ति और साधु-समागम से बचाने का प्रयत्न करता।

जयपुर से छ माइल दूर छोटे से गाँव मे, ठीक सडक पर ही उसका पुश्तैनी छोटा सा मकान था। फौज की नौकरी छूट जाने के बाद से वह घर मे ही रहता और अधिकतर बाहर बरामदे मे बैठा हुआ सडक की चहल-पहल देखा करता। आज भी उसी स्थान पर बैठे हुए उसे दूर से ही अपनी शिष्याओ सहित आती हुई भगवती अर्चनाकुमारी दिखाई दे गई। उन्हे देखते ही ठाकुर का मन खिन्न हो गया। विरक्त भाव से चुपचाप बैठा हुआ वह शायद फौज और लडाई की कल्पना करता रहा।

शनै शनै अर्चनाकुमारी समीप आई। पीठ और कन्धे पर पहनने, ओढने और बिछाने के साधारण वस्त्रो को बाँधे हुए तथा हाथो मे काष्ठ के पात्रो की झोलियाँ लिये हुए उन तीन आर्याओ को ठाकुर देख रहा था। भगवती को देखकर उसे लगा मानो शान्ति और सन्तोप ही मूर्तिमान होकर उसके सामने खडे हो। सोचने लगा—'ऐसा दिव्य चेहरा तो शायद उसने जिन्दगी मे देखा ही नही। कैसा अनोखा व्यक्तित्व है यह ?' पर शीघ्र ही इन विचारो को एक झटके से हटाकर उसने अपनी उपेक्षा और विरक्ति की भावनाओ को उभारा और सतर होकर बैठा रहा। अर्चनाकुमारी तब तक समीप आ चुकी थी और पूछ रही थी—

"भाई ! क्या तुम्हारे मकान मे हमे रातभर ठहरने के लिये स्थान मिल सकेगा ? कल प्रात काल ही हम जयपुर के लिये रवाना हो जाएँगी।"

ठाकुर के घर मे पाँच, छ कमरे थे और रहने वाले सिर्फ दो ही प्राणी। सहज ही स्थान दिया जा सकता था किन्तु ठाकुर बरसो की आदत कैसे छोड देता। उसके मुँह से निकल ही गया—

"यहाँ तो जगह नही है !"

"नही है ? तो कोई बात नही। सूर्यकुमारी ! चलो, वह सामने खण्डहर दिखाई दे रहा है। हम उसी मे ठहर जाएँगे।" अर्चनाकुमारी ने अपनी बडी शिष्या को सम्बोधन करते हुए कहा, और उसी सहज सौम्यता को लिये हुए उस ओर चल दी। उनके चेहरे पर रही हुई प्रफुल्लता तनिक भी कम न हुई और न ही एक भी शिकन आई।

ठाकुर यह देख रहा था। वह आशा कर रहा था, उनके पुनः आग्रह करने की और फिर भी स्थान न मिलने पर निराश और परेशान हो जाने की। पर कहाँ ? कुछ भी तो नहीं हुआ। स्थान मिलने पर जो खुशी होती, न मिलने पर भी वैसी ही खुशी उन सभी के चेहरे पर दिखाई दे रही थी। ठाकुर झुंझला उठा और बहुत देर तक बुत बना बैठा देखता रहा कि किस प्रकार सामने के जीर्ण और नष्टप्राय. खण्डहर मे आर्याओ ने अपना सामान रखकर रात्रि व्यतीत करने की व्यवस्था की है। वह सोच रहा था, सॉप बिच्छू और अन्य विषैले जन्तुओं के भय से जिस श्मशानवत् जगह मे वर्षो से किसी ने पैर नहीं रखा था उस स्थान पर साध्वियाँ कैसे रहेंगी ? पर रहेंगी, यह तो निश्चित हो ही गया था।

ठाकुर को अपने मन की कमजोरी पर आश्चर्य हुआ। वह परेशान हुआ कि सदा से साधुओं के प्रति नफरत पूर्ण बनी रहने वाली भावनाओं के स्थान पर उसके दिल मे ये कोमल और उनके दुख-दर्द को महसूस करने वाले विचार कहाँ से उदित हो रहे हैं ? वह सोचने लगा—कितना अच्छा होता, अगर मैं इस समय फौज मे होता। तब ये विचार मेरे दिमाग मे क्यो आते ? मुझे क्या मतलब होता, आर्याओ के दुख-कष्ट से। पर अभी भी मैं क्यो परवाह करूँ ? मुझे क्या लेना-देना है इनसे ? ठकुरानी नाराज हो, तो हो।

रूपा का स्मरण होते ही वह फिर गुस्से से भर गया। वह क्यो इन लोगो पर भक्ति रखती है ? मेरे नाराज होने पर क्यो वह एक भी शब्द कहे बिना गुस्सा करके अन्दर चली गई ? गई तो जाय मुझे क्या ? पर यह क्या ? सहसा उसने देखा कि दोनो छोटी साध्वियाँ हाथो मे झोली लिये उसी के घर की ओर आ रही है। शायद भिक्षा के लिये।

ठाकुर किंकर्तव्यविमूढ था। नशे की झोक मे उसका क्रोध बढ रहा था। पलक मारते ही वह एकाएक एक अजीब काण्ड कर बैठा। बिना अनुचित उचित का विचार किये वह उठा और फटाक से दरवाजा बन्द करके अन्दर हो गया। पर दुर्दमनीय कौतूहल को न रोक सकने के कारण खिडकी की जाली मे से अपनी करतूत की प्रतिक्रिया देखने लगा।

आर्याएँ बरामदे की सीढियो तक आ पहुँची थी। पर ठाकुर को तीव्र-गति से उठकर अन्दर जाते और दरवाजा बन्द करते देखकर वे पलभर के लिये ठिठक कर ही सहज और स्वाभाविक भाव से लौट गई। ऐसे लौट गई

जैसे कुछ हुआ ही न हो। ठाकुर देखता रहा। उसने यह भी देखा कि उसके घर से लौटकर आर्याएँ अन्य किसी घर की ओर नहीं गई। अपने स्थान पर ही जाकर सम्भवतः कुछ पठन-पाठन मे लग गई।

यह खूब रही '। ठाकुर को और ज्यादा गुस्सा आया। क्या मेरे घर के अलावा और कोई घर इन्हे भिक्षा लेने के लिये नहीं मिला? इसका मतलब यह है कि ये आज कुछ खाएँगी नही। भूख तो लगी ही होगी, न जाने कितनी दूर से तो चलकर आईं हैं। मैंने दरवाजा बन्द कर लिया तो क्या हुआ? भूखी रहकर क्या ये मुझे सजा देगी? अकेले मेरे घर का ठेका तो है नही। कुछ ही दूर पर और भी तो घर है। वहाँ क्यों नही गई? देर हो गई होगी शायद? हो जाए मेरी बला से! मुझे क्या दुख होगा? मैं तो खूब खाऊँगा ही। मुझे तो साला एक जून भी खाने को न मिले तो हाथी जितनी शक्ति घटकर चूहे जितनी रह जाती है। यह सब इस शिवजी की बूटी की कारस्तानी है। इसके मारे भूख और खुल जाती है। मेरा वश चलता तो इसे भी गोली मार देता। पर शिवजी भी इसके बिना नही रह सकते तो फिर मै क्या चीज हूँ? ठकुरानी नाराज हो गई तो हो जाने दो, मेरा क्या बिगाड लेगी। मैं परवाह नही करता किसी की' किसी की भी '''। बडबडाता हुआ ठाकुर दरवाजा खोलकर फिर बाहर आ गया। बैठ गया अपने उसी स्थान पर। उठा ही नही।

अबेर होती देखकर ठकुरानी रूपा बाहर आई, गम्भीर और उदास चेहरे से बोली—

"चलो खाना खालो!"

"मुझे भूख नही है '' ''''।"

"भूख नही है '''''?" रूपा आश्चर्य से मुँह बाए खडी रह गई। ऐसा तो कभी सुना नही। पूछा—

"क्यो नही है भूख''''?"

"यो ही ''।"

"पर खालो न थोडा-सा!" रूपा ने आग्रह किया। पति आखिर पति है। हजार मन के खिलाफ चले पर भारतीय नारी उस पर सदय हो ही जाती है। रूपा के हृदय मे भी कोमल भावनाएँ जाग उठी।

पर ठाकुर खिन्न था। झुँझला पडा—"मै नही खाऊँगा ठकुरानी! जिद मत करो।"

"आखिर वात क्या हुई··· ?" रूपा समझ नही पाई।

"वात और क्या होगी ? सारी दुनिया मेरी दुश्मन है। जी चाहता है सवको गोली से उडा दूँ।"

"हाँ उडा देना गोली से, पर अभी-अभी दुनियाँ ने क्या विगाड दिया है तुम्हारा ?"

"विगाड़ क्या सकती है मेरा ? मैं क्या परवाह करता हूँ किसी की ? कोई भूखा रहे या प्यासा, ठाकुर वजरंग का क्या जाता है ? भूखे रहकर सव कोई डराना चाहते है मुझे।"

"पर कौन भूखा रहकर तुम्हे डरा रहा है ? मुझे समझाकर वताओ तो सही !"

"इसमे समझने की क्या वात है ? भूखे रहने का मतलव भी क्या तुम समझती नही हो ठकुरानी ? नही समझने लायक क्या वात कही है मैंने ? मैं कोई पढा लिखा हूँ कि वडी ऊँची और न समझ मे आने वाली वात कहूँगा ? मैं तो लडना और वन्दूक चलाना ही सिर्फ जानता हूँ।"

"पर कौन है भूखा ? मै तो सदा ही तुम्हारे वाद खाया करती हूँ।"

"आहा-हा ! जैसे मैं तुम्हारी भूख से ही व्याकुल हो रहा हूँ। तुम खाओगी, यह क्या मैं जानता नही ?"

"तव फिर किसकी वात कर रहे हो ?"

"उनकी, जो उस सामने वाले खण्डहर मे ठहरी हुई है। उन आर्याओ की।"

"पर तुम्हे क्या मालूम कि वे भूखी है ?" रूपा ने चौक कर कहा।

"मुझे नही तो और किसे मालूम होगा ? अपनी आँखो से क्या मैं देख नही रहा था ? मेरे सामने ही तो वे झोली लेकर इधर आई थी, और मैंने दरवाजा वन्द कर लिया तो उलटे पैरो लौट गई। सीधी उसी स्थान पर।"

रूपा समझ गई। एक गहरी सास उसके कलेजे को चीरती हुई निकल आई। कई क्षणो तक दिग्मूढ की भाँति वही खडी रही। एक शब्द भी मुँह से नही निकला। अपने निष्कपट किन्तु आदत से लाचार पति से वह कहती भी तो क्या ? यही तो एक उसकी कमजोरी थी। अन्यथा ठाकुर के समान सरल और निष्पाप व्यक्ति दुनिया मे विरले ही होते होगे, यह वह जानती

थी । पति की उस विचित्र दशा पर उसे बडी दया आई । शाम भी फिर आई थी अत. आजीजी करते हुए बोली—

"अब जो कुछ हो गया उसे भूल जाओ ! उठो, खाना ठण्डा हो रहा है ।"

"हो जाने दो ठण्डा, सब रख दो उठाकर, मैं अभी कुछ नही खाऊँगा । तुम जाओ अपना काम करो, नही तो ' ।" ठाकुर ने वाक्य पूरा नही किया और गुम्म होकर बैठ गया ।

जिद करने से कोई लाभ नही होगा । रूपा इस बात को जानती थी । अत. नि शब्द धीरे-धीरे हृदय पर मानो मन भर बोझ लिये हुए वह अन्दर चली गई । उसने भोजन के पदार्थ ढँककर रख दिये और चौका-बासन समेटने मे लग गई । करीब घण्टे भर मे सारे कार्य निपटाकर उसने भीतर कमरे मे ठाकुर का बिस्तर बिछाया और अपना भी थोड़ा-सा फैलाकर दीवाल से टिककर बैठ गई । ठाकुर बाहर ही बैठा था । यह कोई नई बात नही थी । सदा ही वह बहुत रात बीते तक बरामदे मे बैठा रहता और इक्के-दुक्के राहगीरो को देखते हुए समय व्यतीत करता था । पर आज रूपा चिन्तित और व्यथित थी । ठाकुर की अशान्ति के कारण को जानकर वह उद्विग्नता के मारे छटपटा रही थी । पर कोई उपाय भी तो नही था । उसकी जिद वह जानती थी और इसीलिये वह जान गई थी कि आज वह किसी भी हालत मे भोजन नही करेगा । आर्याओ के लिये ठाकुर के हृदय मे कोमल भाव नही था, किन्तु उसकी आँखो के सामने कोई भूखा सोए, मानवता के नाते यह वह बर्दाश्त नही कर सकता था । कोई भी अभावग्रस्त व्यक्ति उसके दरवाजे पर आकर खाली हाथ लौट जाए यह सम्भव नही था । नालायक, निकम्मा, आलसी और इसी तरह की अनेक गालिया देकर तथा गोली से उडा देने की बात कहकर भी वह भूखे को भोजन और नगे को वस्त्र अवश्य देता । साथ ही जब जरूरत हो तब पुन आ मरने के लिये भी कहना नही चूकता ।

ऐसे ठाकुर को रूपा अब क्या कहकर समझाती ? दीन-दरिद्रो को देखकर भी जब उसका सूखा हृदय पिघल जाता था तो आज तो उसके द्वार से समाजशिरोमणि और मानव-मात्र के लिये पूज्य साध्वियाँ आकर लौट गई थी । पति की मानसिक दशा का अनुभव करती हुई, किन्तु उसके ठीक करने का कोई उपाय न पाकर मन ही मन उमडती हुई वह बैठी रह गई और कुछ देर बाद उसे दिन भर के शारीरिक और मानसिक श्रम के कारण झपकी आ गई ।

३९

परिवर्तन

रात्रि अधिक व्यतीत नही हुई थी । मुश्किल से आठ बजे होगे । अचानक ही रसोईघर मे कुछ खडखडाहट की आवाज हुई और रूपा की अलसाई पलके खुल गई । यह समझकर कि बिल्ली चौके मे घुस गई है, वह शीघ्रता से दौडी । सोच रही थी कि ठाकुर ने अभी तक खाना नही खाया है और बिल्ली अगर खाना बिगाड देगी तो वे भूखे रह जाएगे किन्तु रसोईघर के दरवाजे पर पहुँचकर वह भौचक्की रह गई । देखा ठाकुर ने एक थाली मे काफी मात्रा मे भोजन परोस रखा है और दूसरी थाली से उसे ढककर उठाने की तैयारी मे है । रूपा ने अस्फुट शब्दो मे पूछा—

"क्या कर रहे हो यह · ?"

"देख तो रही हो खाना लगा रहा हूँ ।" ठाकुर ने उदासीनता से जवाब दिया ।

"यह तो मै ही कर देती, मुझे पुकारा क्यो नही ? पर इसे ले कहाँ जा रहे हो ? कहाँ जा रहे हो ?" परेशान रूपा की जबान से कई प्रश्न एक साथ निकल पडे ।

"जा रहा हूँ जहन्नुम को, और वही डग भी ले जाऊँगा। जमाना ही वैरी है, मेरा वश चले तो सबको 'शूट' कर दूँ।"

"क्या बक रहे हो यह सब ? भूख लग आई होगी, अब शान्त होकर खाना खालो।" रूपा रुँआसी हो गई।

"हाँ, मैं तो बकवास करता ही रहता हूँ। नशा करता हूँ न ! दुनिया को यही दिखाई देता है और 'हटो रास्ते से ! कहता हुआ ठाकुर थाली उठाकर चल दिया।

वह कहाँ जा रहा है यह रूपा समझ गई। पर वह कह भी नही पाई कि आर्याएँ रात को खाना तो दूर ! जल भी ग्रहण नही कर सकती। बेचारी दिग्मूढ की तरह दरवाजे पर आकर खडी हो गई और अँधेरे मे निगाह फैलाए ताकती रही।

लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ ठाकुर आर्याओ के निवासस्थान पर पहुँच गया। क्षणिक हिचकिचाहट के बाद उसने गम्भीर स्वर से सडक पर खडे-खडे ही आवाज लगाई।

"महाराज जी . . !"

सदा सजग और सतर्क रहने वाली अर्चनाकुमारी पुरुष-कठ की आवाज सुनकर चकित हुई और धीरे-धीरे बाहर आकर खण्डहर की किवाड रहित देहरी पर खडी हो गई।

"कौन हो भाई ! क्या बात है " अधेरा होने के कारण वे ठाकुर को पहचान नही पाई।

"मै हूँ ठाकुर बजरग, सामने ही सडक के उस तरफ रहता हूँ।"

"अर्चनाकुमारी निमिष भर मे ही पहचान गई और उन्हे ठाकुर के अपने मकान मे स्थान न देने की, तथा आहार के समय दरवाजा बन्द कर लेने की बात स्मरण हो आई। अत्यन्त मधुर स्वर से उन्होने पूछा—

"क्या बात है ठाकुर ? इस समय कैसे आना हुआ ?"

"जी, मै खाना लाया हूँ आप लोगो के लिये।"

"खाना. ..? हमारे लिये खाना लाये हो ?"

"हाँ, नही तो क्या करता ? आप लोग मुझसे नाराज होकर भूखी जो रह गई।"

"नाराज तो हम जरा भी नही है ठाकुर !"

"कैसे नही है, मैं क्या जानता नही इस बात को ? नशा करता हूँ तो क्या हुआ, मेरी जानने समझने की शक्ति थोडे ही नष्ट हो जाती है। मैंने दरवाजा बन्द कर लिया, तो आर्याएँ बन्दूक की गोली की तरह सीधी यहाँ आ गई। क्या इस गाँव मे मैं ही अकेला बेवकूफ रहता हूँ ? और कोई घर नही था क्या यहाँ पर ? यह नाराजी की बात नही तो क्या खुश होने की बात है ? अब आप यह भोजन लीजिये। तब मैं चैन से सो सकूँगा।"

"पर हम रात को तो खाती नही ठाकुर !"

"रात को नही खाती .. ?" ठाकुर करीब करीब चीख पडा -

"हाँ, और दिन को जो कुछ खाती है वह भी अपने आप लाया हुआ। हमारे स्थान पर कोई कुछ लाकर दे तो वह हम नही खा सकते। किन्तु तुम इतने परेशान क्यो हो ठाकुर ? एक वक्त अगर हमने नही भी खाया तो क्या हो गया ?"

"आप तो कहती है क्या हो गया ? पर जो कुछ हुआ वह सिर्फ मैं ही जानता हूँ। मैं क्या इन्सान नही हूँ ? लडाई मे मनुष्यो को आँखो के सामने मरते देखकर भी दुख नही होता था पर आपके इस प्रकार भूखे रह जाने मे जी चाहता है फिर जाकर युद्ध के मैदान मे सो जाऊँ। पर क्या करूँ भाग्य ही मेरा ऐसा है कि वापिस जा नही सकता। और अब ठकुरानी कहती है कि किसी की नौकरी कर लो। उसकी बात पर ऐसा गुस्सा आता है कि उसे गोली से उडा दूँ। भला आप ही बताइये, जीवन भर देश के लिये लडने वाला सिपाही क्या किसी की नौकरी कर सकता है ?

अर्चनाकुमारी ठाकुर की निष्कपटता और सरलता से बहुत ही प्रभावित हुई। इस बहादुर व्यक्ति पर उन्हे बडी दया आई। बोली—

"तुम्हारी बात सच है ठाकुर ! तुम किसी की गुलामी नहीं कर सकते, पर ऐसा क्यो न करो कि तुम हमारे साथ रहो। हमे सकटपूर्ण मार्गों से और बियाबान जगलो मे से भी गुजरना पडता है। अनेक कठिनाइयो का सामना करना पडता है। तुम साथ रहकर हमे मार्गदर्शन कराया करना और आपत्तियो से हमारी सहायता करना।"

"ओह. . । आप क्या सच कह रही है भगवती ? मैं आपके साथ रह सकता हूँ ?" उसे भगवती की बातो पर विश्वास नहीं हो रहा था। कुछ करते रहने की भूख से मरा हुआ उसका मन मानो पुन जीवित हो उठा।

ऐसी महान आर्याओ के साथ रहने का, तथा उनकी सहायता करने का कार्य पाकर मारे हर्ष के उसकी आँखो मे आँसू आ गए। वह फिर पूछ बैठा—

"आप सत्य कह रही है अम्बे ?"

"मै असत्य भाषण नही करती ठाकुर! तुम चाहो तो सचमुच ही हमारे साथ रह सकते हो।"

"और ठकुरानी का क्या होगा ?" ठाकुर तनिक चिन्ता मे पड गया।

"क्यो, वह भी तो हमारे साथ रहेगी। नही तो उसे अकेली कहाँ छोड जाओगे ?"

"हाँ, यह ठीक रहेगा भगवती! वह यहाँ अकेली कैसे रहेगी ? तीसरे ब्याह की स्त्री है वह मेरी, औलाद तो एक भी नही हुई।"

"औलाद तुम मुझे ही समझ लेना! तुम्हारी उम्र मेरे पिता के बराबर होगी। मै तुम्हे उनके समान ही समझूँगी।"

सुनकर ठाकुर हर्ष और विस्मय से भर गया। उसे ऐसा लगा मानो अचानक ही वह चिन्तामणि रत्न पा गया हो। कुछ क्षणो तक वह प्रसन्नता के उस सागर मे डूबता-उतरता रहा पर अन्त मे होश आते ही बोला—

"तो भगवती! मै ठकुरानी को यह शुभ समाचार सुना दूँ जाकर ?"

"हाँ, हाँ, पर यह तो बताओ ठाकुर, कि तुमने आज भोजन किया या नही ?"

"नही, नही किया भगवती! और आज करूँगा भी नही।"

"क्यो ? हमारी वजह से तुम भूखे रहोगे तो हमे पाप लगेगा!"

"लगेगा तो लगने दीजिये। मुझे क्या कम पाप लगा है आज ? उसका यही प्रायश्चित्त करना चाहिये। मै तो अब कल आपके भोजन करने के बाद ही करूँगा। जाता हूँ अब, ठकुरानी परेशान हो रही होगी। वह आज मुझसे बहुत नाराज है।"

"सो क्यो ?" अर्चनाकुमारी ने मुस्कराते हुए प्रश्न किया।

'तो आप नही जानती इस बात को ? बचपन के सस्कार, और भग के नशे मे आकर आज मैने आपका बहुत अपमान किया है भगवती। इसी से वह नाराज हो गई है। कहती तो कुछ नही पर मै जान जाता हूँ।"

"तो ठाकुर तुम नशा भी करते हो ?"

"हाँ करता हूँ, पर आप चिन्ता न करे। मै आज से ही उसे गोली मार दूँगा. .। और नशा नही करता तो क्या करता आप ही बताइये ? मै जिन्दगी भर फौज मे रहा। तब दिन रात व्यस्त रहता था अत. कोई लत ही नही पड पाई। मगर सरकार ने मेरी शक्ति न देखकर उम्र के कारण मेरी पेंशन करदी। मेरे जैसा काम-काजी आदमी फिर क्या करता ? कैसे समय विताता बस, इसी कारण थोडा समय इस कम्बख्त के सहारे गुजारने लगा। पर अब तो मै बेकार नही रहूँगा। आपकी सेवा मे मेरा वक्त आनन्द से गुजर जाएगा। फिर इस समुरी को याद ही क्यो करूँगा मैं ?"

"पर ठाकुर एक बात और है। हमारे साथ तुम्हे भी बहुत कष्ट उठाने पडेगे। कम से कम मे गुजर करना, वक्त बेवक्त खाना, पैदल चलना. .।"

"आप कह क्या रही है भगवती ?" अर्चनाकुमारी की बात को बीच मे ही काटकर ठाकुर उत्तेजित होकर बोल पडा—"लडाई के मैदान मे क्या मेरे लिये हर वक्त रथ तैयार रहता था चलने के लिये ? या कि दोनो समय मेरे लिये छत्तीस व्यञ्जनो का थाल परोसा जाता था ? क्या सामान होता था उस समय मेरे पास ? कधे पर एक थैला ही तो। फिर क्या मैं आपकी बात से भयभीत हो जाऊँगा ? कभी नही, मै ठाकुर बजरग हूँ। मुसीबतो से कभी घबराया नही, और न ही घबराऊँगा। अच्छा अब जाता हूँ। प्रात काल आपके दर्शन करूँगा। ठकुरानी मेरी जान को रो रही होगी। उससे कहूँगा, तैयारी करो, अब ठाकुर को उसकी मनपसद नौकरी मिल गई।" कहते हुए ठाकुर ने थाली उठाई और भगवती को नमस्कार करके चल दिया।

घर जाकर देखा कि रूपा किवाड की चौखट थामे उसी प्रकार खडी है, जैसी वह छोड गया था। उत्साह पूर्ण हृदय से ठाकुर ने आते ही उससे कहा—

"अरी, भागवान ! अब नाराज क्यो हो ? खुशियाँ मनाओ ! आज ऐसा समाचार तुम्हे सुनाऊँगा जैसा कभी जिन्दगी मे भी नही सुना होगा।"

रूपा ने कोई जवाब नही दिया। उसका हृदय आतक से भरा हुआ था। सोच रही थी - आर्याओ ने भोजन तो ग्रहण किया ही नही होगा, और उसके कारण ठाकुर उन्हे न जाने क्या क्या कह आया होगा, न जाने कितना अपमान किया होगा। नाना प्रकार की आशकाओ के मारे उसका चित्त उद्विग्न हो रहा था, और जब ठाकुर ने आकर इस प्रकार अपनी प्रसन्नता

जाहिर की, तब तो उसे अपनी कल्पना पर पूरा विश्वास हो गया। धडकते हुए हृदय से वह किसी अशुभ बात को सुनने की प्रतीक्षा करने लगी। किन्तु जब उसने ध्यान से ठाकुर के चेहरे को देखा तो उसे, उसके सहज और स्निग्ध चेहरे को देखकर अपनी अशुभ आशकाएँ लोप होती दिखाई दी। ठाकुर ने आते ही रूपा के कधे पर हाथ रख दिया और बोला—

"चलो, ठकुरानी! अब झटपट तैयारी करना शुरू करो।"

"किस बात की…?" रूपा समझ न सकी।

"अरे, किस बात की क्या? यहाँ से चलने की।"

रूपा फिर परेशान हो गई। सोचने लगी— ठाकुर ने आज गहरी छान ली है शायद, उसी के नशे मे बेतुकी बाते कर रहे है। तनिक उदास होकर कहा—

"अब सो जाओ ठाकुर! तुम्हारी तबियत ठीक नही है।"

"मेरी तबियत सोलह आना ठीक है। यह मत समझो कि मैं नशे मे बोल रहा हूँ। हमे सवेरे ही यहाँ से चल देना है।"

"पर कहाँ ?"

लो, यह मै क्या जानूँ कि कहा चलना है? मै खुद भी यह नही जानता, फिर तुम्हे कैसे बता सकता हूँ? कोई देवता हूँ मैं?"

"तुम्हारे हाथ जोडती हूँ ठाकुर! मुझे परेशान मत करो। कब चलना है, कहाँ चलना है, किसके साथ चलना है और क्या क्या सामान लेना है, यह सब जाने बिना मै क्या तैयारी करूँ?" रूपा को तनिक भी विश्वास नही हो रहा था ठाकुर का।

"अरे, देवी! हमे भगवती के साथ चलना है। तुम कहती हो न कि नौकरी करलो, नौकरी करलो। तो अब मैं नौकरी पा गया हूँ उनकी। उन्ही की सेवा मे जिन्दगी बिताऊंगा। सारी दुनिया झख मारेगी।"

"पर वे साधु है, कहाँ से देगी तुम्हे…?"

ठाकुर नाराज हो गया और बीच मे बात काट कर बोल पडा—

"तुमको कब समझ आएगी ठकुरानी! मैं क्या उनसे तनख्वाह लूँगा? फिर यह जो पैंशन मिलती है उसका क्या होगा? कौन सी औलाद पैदा की है तुमने, जिसके लिये जोडूँगा? निठल्ला बैठा रहता था, अब भगवती के सत्सग मे रहकर शाति, सतोष और उनकी सेवा मे दिन बिताऊँगा।"

"पर तुम रह सकोगे उनके साथ ? न जाने क्या क्या तकलीफे उठानी पडेगी। कही ऐसा न हो कि चार दिन मे ही भाग आओ।"

ठाकुरने रूपा की बात सुनकर अपने अट्टहास मे घर भर दिया बोला—

"भगवान ने सचमुच ही स्त्रियो को मर्दो की परीक्षा लेने के लिये दुनिया मे भेजा है। चालीस वरस सिपाही रहकर जगलो, पहाडो और घाटियो मे न जाने कितना समय बिना सोये और बिना खाए मुसीबतो के बीच मे बिता आया हूँ। पर उन सारी परीक्षाओ मे पास होकर भी ठकुरानी ! मैं तुम्हारी परीक्षा मे पास नही हो सका। बिचारे सुदामा को तभी तो कहना पडा था—

सिच्छक हो सिगरे जग को तिय,
ताको कहा अब देती है सिच्छा।
जो न हिये हरि के पद पकज,
बार हजार ले देख परिच्छा।

"तो ठकुरानी ! फिर ऐसा ही करो। मेरी जैसे चाहो पूरी परीक्षा ले लो। अगर पास हो जाऊँ तो तैयारी कर लेना चलने की, क्योकि कल ही तो चलना है।"

रूपा बिचारी, ठाकुर के बात करने के ढग से अत्यत शर्मिदा हो गई, पर साथ ही उसे विश्वास हो गया कि वह सिर्फ नशे की झोक मे नही, पर सच-मुच ही चलने के लिये कह रहा है ? सकुचित होते हुए वह बोली—

"चलो हटो ! कैसी बाते कर रहे हो ? इस तरह बोला जाता है कही ? बताओ, क्या क्या तैयारी करनी है ? क्या क्या साथ मे लेना है ?"

"ओ हो, तुम तो ऐसे पूछ रही हो, जैसे हमारा सामान मोटर-गाडी मे जाएगा। अरे दो पोटलियाँ बाँध लो। दो जोडी कपडे, दो चादरे, एक दो मेरी किताबे, और कुछ रुपये पैसे। बस, और क्या···?"

"और सिल-बट्टा ? उसे भी रख दूँ तुम्हारी पोटली मे ?" रूपा ने प्रसन्नता से चुटकी ली।

"अरी बावली ! क्या साध्वियो की सगत मे रहकर भी मैं नशा करूँगा। गोली मारो उसे आज से ही। समय काटने के लिये मैं नशा करता था। अब उसके लिये समय निकालने की जरूरत नही।"

"अच्छा तो अब तुम खाना खालो, भूखे हो।"

"खाना तो अब मैं अपने उन दुश्मनो के खाने के बाद ही कल खाऊँगा। हाँ तुम खालो जाकर !" कहता हुआ ठाकुर सरलता से हँस पडा।

रूपा स्निग्ध नेत्रो से पति को देखने लगी। मानो मूक भाषा मे कह रही हो, मैने कभी तुमसे पहले खाया भी है ? और कुछ क्षणो बाद ही दोनो प्राणी उल्लसित हृदय से अपने अपने बिछौने पर जा लेटे। प्रात॰ काल होते न होते घर मे ताला लगाकर एक-एक पोटली लिये हुए भगवती के समक्ष जा पहुँचे।

अर्चनाकुमारी अपनी शिष्याओ सहित वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी मे ही थी। ठीक उसी समय ठाकुर-दपती को देखकर प्रसन्न हुई।

एक ही रात मे ठाकुर का यह कायाकल्प देखकर उनका मानस विस्मय से ओत-प्रोत हो गया। अत्यन्त स्नेह पूर्वक उन्होने उस युगल की अभ्यर्थना की और पाच प्राणियो का वह छोटा सा काफिला आगे बढ गया।

४०
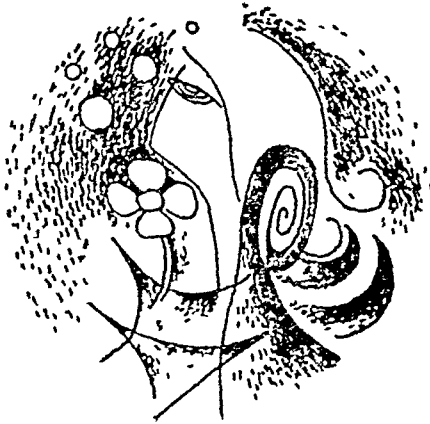
चोरी करने आया था

ठाकुर बजरंग और ठकुरानी रूपा का साथ होने से मार्ग सुगमतापूर्वक कटने लगा। आत्मा-परमात्मा, जीवन और जगत तथा सार और असार के रहस्य को सहज ही समझा देने वाली परम विदुषी आर्या अर्चनाकुमारी बालोचित सरलता से ठाकुर से युद्धो की लोमहर्षिणी घटनाओ के विषय मे पूछती रही और ठाकुर अपने फौजी जीवन के अनुभवो को एक-एक करके सुनाता चला गया।

चलते-चलते दोपहर होने को आया और उस दिन जयपुर पहुँचना सभव नही रहा। अत मार्ग मे स्थित एक छोटे से गाँव मे ही रात्रि को ठहरने का विचार किया गया। ठाकुर ने घर-घर जाकर ग्राम-निवासियो को आर्याजी का परिचय दिया और अपने थोडे बहुत ज्ञान से आहार पानी की शुद्धता के विषय मे बताया। उसने निश्चय कर लिया था कि अपने पिछले दिन के पाप का वह इसी प्रकार जीवन भर प्रायश्चित्त करेगा।

दिन बीता और रात्रि ने अपनी काली चादर फैलानी शुरू की। जहाँ भगवती ठहरी थी वह स्थान लक्ष्मीनारायण के मदिर से लगा हुआ और काफी बडा था। दो कमरे, बरामदा, उसके बाद आँगन और आँगन के अन्त

मे बडा सा दरवाजा। सूर्यास्त के पश्चात् आर्याओ के भीतरी भाग की ओर पुरुष को प्रवेश निषिद्ध होने के कारण ठाकुर ने बडे दरवाजे के पास ही बने हुए एक छोटे से चबूतरे पर अपने सोने का इन्तजाम किया और ठकुरानी अन्दर भगवती के कमरे के पास सो गई।

रात्रि ज्यो ज्यो अधिक व्यतीत होती गई, निस्तब्धता भी बढती गई। ठाकुर सोया था पर उसकी निद्रा एक सिपाही की निद्रा थी। तनिक सी आहट होते ही वह चौकन्ना हो उठता। करीब एक बजे का समय होगा। अचानक ही ठाकुर को किसी मनुष्य के पद-चाप सुनाई दिये। तुरन्त ही उसके कान खडे हो गए। धीमे-धीमे पद-ध्वनि समीप आई। ठाकुर को लगा कि आगत व्यक्ति के पैर कुछ लडखडा रहे है। उस समय तक वह उठकर बैठ चुका था और अधेरे मे आँखे फाडकर देखने की कोशिश कर रहा था। कुछ क्षण बाद ठाकुर ने देखा कि एक भीमकाय व्यक्ति की आकृति उसके सामने है।

"कौन हो तुम...? क्या चाहिये?" ठाकुर ने अपनी रोबीली आवाज से पूछा।

"कुछ नही, जरा पानी पिलादो।" उस पहाड जैसे व्यक्ति ने धीरे से कहा। लगता था कि उसके मुँह से शब्द बडी कठिनाई से निकल रहे है।

क्रोध-पूर्ण हुकार करते हुए ठाकुर ने समीप रखा पानी का लोटा उठाया और उस व्यक्ति को बनाई हुई अजुलि पर डालना शुरू किया। घबराए हुए व्यक्ति ने दो-चार घूँट पानी पिया और बिना कुछ कहे ही मुडकर चल दिया। ठाकुर उसे जाते हुए देखता रहा, पर उसे यह देखकर कुछ आश्चर्य हुआ कि वह व्यक्ति दस-बीस कदम लडखडाता हुआ चला पर उसके बाद उसके कदमो मे तेजी आ गई। ठाकुर ने इसे पानी का प्रभाव समझा और उस पर विशेष ध्यान न देकर लेट गया।

पर उसके भाग्य मे उस दिन शायद सोना नही लिखा था। तीन बजते न बजते फिर उसे किसी के कदमो की आहट आई। निस्तब्ध रात्रि मे ठाकुर ने भली-भाँति जाना कि आने वाला व्यक्ति दूर से तो अपनी स्वाभाविक चाल से चलता आया है किन्तु कुछ पास आते ही उसके पैर लडखडाने से लगे है। जैसे उसे कुछ दिखाई ही न देता हो। पद-चाप समीप आती जा रही थी। ठाकुर उत्तेजना के वशीभूत हो, उठकर गरज उठा—

"कौन है ……? खबरदार एक कदम भी आगे बढा तो गोली मार दूँगा।" ठाकुर सोच रहा था –काश ! आज उसके पास बन्दूक और उसमे भरी हुई गोली होती ।

आने वाला व्यक्ति रुक गया और दयनीयता से बोला—"थोडा पानी और ‥।"

"अच्छा तो तुम वही नालायक हो ? प्यास मिटी नही तुम्हारी ? तो जाकर किसी कुए तालाब मे क्यो नही कूद पडे ? बार बार यही क्यो आकर मरते हो ?" ठाकुर का क्रोध सीमा लाँघ गया । किसी तरह अपने को जब्त करके बोला—

"चलो ! उठाओ वह लोटा और पियो पानी । तुम्हारा नौकर नहीं हूँ मैं, जो रातभर हाथ मे लोटा लिये बैठा रहूँ और तुम्हारे जैसो को पानी पिलाता रहूँ। ढेर कर देता यही, पर राजपूत पानी पीने आए हुए को मारता नही । खडे क्यो हो ? लोटा उठाकर पानी पीओ और निकलो यहाँ से ।" ठाकुर इतनी बातें कह गया पर यह देखकर हैरान हो गया कि उस भीमकाय और बडी बडी आँखो वाले व्यक्ति ने लोटा उठाने का प्रयत्न ही नही किया । मारे क्रोध के उसके मुँह से गालियाँ निकल पडी—

"साले, हरामी के बच्चे ! तू क्या कही का नवाब है, जो अपने हाथ से पानी भी नही पी सकता ?"

'पर कहाँ है लोटा · ?" वह व्यक्ति भीत स्वर से बोला—

"वह रखा तो है खभे के पास । क्या तुझे दिखाई नही देता ! रात रात भर घूमने के लिये आँखे है पर पानी का लोटा उठाते नानी मरती है । चलो मैं ही पिलाता हूँ शाहजादे को पानी ! नही तो तौहीन हो जाएगी इनकी ।" कहते हुए ठाकुर ने पुन लौटा उठाया और उस सहमे हुए व्यक्ति को पिलाना शुरू किया । पूरा लौटा खाली हो जाने के बाद उस व्यक्ति ने एक गहरी साँस ली और धीरे-धीरे वहाँ से चला गया ।

ठाकुर का मन अशात हो गया था, और आशका के मारे उसने पिछली रात्रि मे बिलकुल न सोने का निश्चय किया । बैठा-बैठा वह अपनी रुद्राक्ष की माला के मनके सरकाता हुआ राम-नाम जपने लगा ।

किसी तरह वह रात्रि व्यतीत हुई और प्रात काल की मधुर बयार आकर उसके उत्तेजित मन को शात करने लगी । ज्योही नभचर पक्षियो की

चहचाहट कानो मे पडी, वह अँगड़ाई लेकर उठ खडा हुआ । किन्तु उसी क्षण मारे विस्मय के हतवुद्धि हो गया, यह देखकर कि रात को दो वार पानी पीने के वहाने आने वाला वह वृहत्काय व्यक्ति उसके समक्ष खडा है ।

ठाकुर उछलकर दो कदम आगे वढ आया और करीव-करीव चीख कर वोला—

"तो" ... तुम ही वह महापुरुष ? जो एक ही रात मे तीसरी वार दर्शन देने आए हो ।"

"मुझे क्षमा करो ।" वह व्यक्ति वोला ।

"क्षमा ?.... 'क्षमा किस वात की........? और वह भी मुझसे ? बडे आश्चर्य की वात है, क्या ठाकुर वजरग एक रात मे ही ऐसा महापुरुष हो गया कि लोग उससे आकर क्षमा-याचना करे !"

"क्या वात है ठाकुर ? किससे झगड रहे हो सुवह सुवह ?" सहसा ही यह वीणा-विनन्दित मधुर स्वर दोनो व्यक्तियो के कानो से टकराए, और वे पलटकर उस मृदु स्वर-लहरी की दिशा की ओर देखने लगे ।

शीतल जल की वूँदे डालते ही जिस प्रकार उफनता दूध शांत हो जाता है, ठीक उसी प्रकार ठाकुर का क्रोध तेजी से उतरने लगा । चेहरे का तनाव मिटकर अपनी स्वाभाविक स्थिति प्राप्त करने लगा ।

किन्तु आगतुक व्यक्ति की आँखे विस्मय से फैल गई । वह विस्फारित दृष्टि मे दरवाजे के वीच मे खडी उस आकृति की ओर अपलक देखता रहा । उसे लगा, मानो शुभ्र परिधान मे आवेष्टित साक्षात हसवाहिनी सरस्वती ही उसको दर्शन देने के लिये मृत्युलोक मे आ गई है । वैसी सौम्यता, सरलता और दिव्यता पूर्ण छवि तो उसके जीवन मे कभी दृष्टिगोचर हुई ही नही थी । मारे आश्चर्य और हर्ष के वह जडवत् हो गया और मत्र से वधे सर्प की भाति विना हिले डुले उस पवित्र सौन्दर्य को आँखो मे अकित करता रहा । पर शीघ्र ही उसकी वह दिग्मूढ दशा वदली, जवकि उसने पुन उस पवित्रता की प्रतिमा के होठ हिलते हुए देखे और उनसे फिर कुछ शब्द झकृत हुए—

"क्या हुआ है ठाकुर ! कौन है यह ?"

'यह आपके मेहमान हैं भगवती ! रात भर मे तीसरी वार दर्शन देने आए है ।"

"और तुम मेहमान का इस प्रकार स्वागत कर रहे हो ? गुस्सा तो वडा

जबर्दस्त है तुम्हारा ! कहती हुई भगवती हँस पडी और नवागन्तुक की ओर उन्मुख होकर बोली—

"आओ भाई ! डरो नही, कौन हो तुम·· ? किसलिये आए थे रात को ?"

"जी, मै चोर हूँ । चोरी करने के लिये आया था ।"

"चोरी करने आए थे ? फिर कुछ चुराया नही ···?

"चुराता कैसे ? बजरग ठाकुर क्या मर गया ?" ठाकुर का पारा एक डिगरी फिर चढ गया ।

"नही भगवती ! ठाकुर से मैं नही डरता । आज तक ऐसे कितने ही ठाकुरो को मै सदा के लिये सुला चुका हूँ । किन्तु आपके प्रभाव से मैं डर गया ।"

"वह कैसे ? मैं तो अन्दर थी ।"

"हाँ आप अन्दर थी, किन्तु आपका प्रताप बाहर था । उसी के कारण मै जब जब भी आया कि अजीब तरह की घबराहट और भय मेरे दिल और दिमाग पर छा गए । चोरी करना चाहकर भी मैं कुछ नही कर सका । और और तब मुझे विश्वास हो गया कि निश्चय ही किसी पवित्र आत्मा का यहाँ पर निवास है । उसी के दर्शन करने मै सुबह सुबह चला आया और मेरा अनुमान असत्य नही निकला । आप जैसी महान आत्मा के मुझे दर्शन हो गए ।" कहता हुआ वह व्यक्ति आगे बढा, भगवती अर्चनाकुमारी के समक्ष जमीन पर घुटने टेक कर बैठ गया । बोला—

"मुझे क्षमा करे भगवती ! मै चोरी जैसा हीन काम करता आया हूँ । पर अब आपके सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से जीवन पर्यन्त यह काम नहीं करुँगा । मुझे आशीर्वाद दीजिये कि मैं अपने वचनो का पालन कर सकूँ ।"

"ईश्वर तुम्हे शक्ति प्रदान करे ।" कहते हुए भगवती ने अपना दाहिना हाथ उठाकर उसे आशीर्वाद दिया और चेहरे पर वही अनिर्वचनीय सौम्यता लिये हुए मथर गति से चल दी ।

उस व्यक्ति ने भगवती के पृष्ठभाग की ओर देखते हुए पुन दोनो हाथ जोडकर उन्हे नमस्कार किया और फिर ठाकुर की तरफ मुडकर बोला—

"अच्छा ठाकुर ! अव मैं चला, तुम भी मुझे क्षमा करो !"

ठाकुर एकदम कुछ वोल नही सका पर उसने गद् गद् होकर उस व्यक्ति के दोनो हाथ अपने हाथो मे थाम लिये। कुछ क्षणो वाद उसने कहा—

"अपना नाम वताते जाओ दोस्त !"

"मेरा नाम भीमसिंह है, शरीर के ठीक अनुरूप।"

दोनो हँस पडे और शीघ्र ही भीमसिंह विना इधर-उधर दृष्टिपात किये, लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वहाँ से चला गया।

४१

आत्म-शक्ति

भगवती अर्चनाकुमारी ने जिस समय जयपुर मे प्रवेश किया, जनमेदिनी उमड पड़ी। दर्शनार्थियो का ताता लग जाने के कारण उन्हे उपाश्रय तक पहुँचना कठिन हो गया। उनका विचार जयपुर मे सिर्फ दो ही दिन ठहरने का था, किन्तु उनके प्रवचनो से मुग्ध हुई जनता ने किसी भी तरह उन्हे जाने नही दिया। परिणाम यह हुआ कि पूरा एक सप्ताह उन्हे वहाँ ठहरना पडा। इमी वीच उनका स्वास्थ्य कुछ खराब हो गया और डाक्टरो ने उपचार के अलावा कुछ दिन और भी यही विश्राम करने की राय दी। किन्तु अर्चनाकुमारी ने सप्ताह के अन्त मे अपनी वडी शिष्या सूर्यकुमारी को वुलाया और अगले दिन प्रस्थान करने के लिये तैयारी करने का आदेश दिया। सूर्यकुमारी तनिक चिंतित होकर वोली—

"भगवती! कुछ दिन और यहाँ ठहरे तो क्या हर्ज है?"

"क्यो? क्या जयपुर से कुछ मोह हो गया है सूर्या?" अर्चनाकुमारी मुस्कराई।

"यह वात नही है भगवती! आपका स्वास्थ्य कुछ नरम है, इसलिये सोचती हूँ, कुछ दिन और ठहर जाते। अन्यथा मार्ग मे आपको तकलीफ होगी।"

"तकलीफ किस बात की सूर्या ? और फिर तकलीफे क्या शरीर के बल पर झेली जा सकती है ? उसके लिये आत्मा का बल चाहिये। मेरे उस बल मे कमी नही है। समझी ?"

"जी !" कहकर सूर्यकुमारी चुप हो गई। वह जानती थी कि भगवती के आदेश के विरुद्ध कुछ भी कहा नही जा सकता। उनका निश्चय पत्थर की लकीर होता है। स्वय परमात्मा भी आकर उन्हे अपने निश्चय से नही डिगा सकता।

सूर्यकुमारी को चुप देखकर भगवती ने पुन: अपनी बात दोहराई—

"तुम तनिक भी चिन्ता मत करो सूर्या ! जो कुछ होगा शुभ ही होगा। जाओ कनक को भी तैयारी करने के लिये कह दो। और देखो, ठाकुर बजरग और रूपा को भी यह बता देना कि हमे कल यहाँ से प्रस्थान करना है।"

"पर भगवती ! इतनी शीघ्रता.. .....।"

"शीघ्रता तो करनी ही चाहिये सूर्या ! मै जल्दी से जल्दी उन हिमाचल प्रदेशो मे पहुँचना चाहती हूँ, जहाँ कभी कोई साधु-साध्वी जाने का कष्ट नही करते। फलस्वरूप वहाँ के जैन व्यक्ति भी भूल चुके है कि हम जैन है। बाल्यकाल मे ही अनार्यो की तरह रहने के कारण वे नही जानते कि आयत्व क्या है, जैनत्व क्या है, हमारा धर्म क्या है और हमारे गुरु कौन है ? उन्हे यह नही मालूम कि जैनधर्म के सिद्धान्त कितने महान है और उनका पालन करके आत्मा को किस प्रकार ऊँचा उठाया जा सकता है ?

"हमारी वही तो अधिक आवश्यकता है सूर्या ! जहाँ ज्ञान के अभाव मे और गरीबी के आधिक्य के कारण जैन कहलाने वाले व्यक्ति भी थोडे से पैसो के लोभ मे अपने धर्म को बेच डालते है। मास-मदिरा का व्यवसाय करके अपनी आत्मा को सदा के लिये पतन के गर्त मे धकेल देते है। इसमे दोष उनका नही, दोष हमारा ही है कि हम जैनियो के गुरु कहलाकर भी अपने अनुयायियो को अपने धर्म की महानता नही समझाते। उनके हृदय मे धर्म का बीज-वपन नही करते और उन्हे धर्म की पहचान नही कराते। अगर हम भी जयपुर और दिल्ली जैसे शहरो और गाँवो मे ही विचरण करते रहे, जहाँ सैकडो अन्य साधु-साध्वियाँ है तो हमारा साधुत्व निष्क्रिय ही है सूर्या, और हमारा गुरु-पद प्राप्त करना वृथा है। हमे वही जाना

चाहिये जहाँ हमारी आवश्यकता है। हमारा कर्तव्य तो यह कहता है कि हम ससार के प्रत्येक प्राणी को धर्म का बोध कराएँ। अगर इतना न कर सके तो कम से कम जैन कहलाने वाले प्राणियो मे तो धर्म-दीप प्रज्वलित करे ही।"

सूर्यकुमारी भगवती के कथन के प्रत्युत्तर मे एक शब्द भी न कहकर मौन सम्मति जताती हुई वहाँ से नि.शब्द उठ खडी हुई और जाकर प्रस्थान की तैयारी मे लग गई।

प्रात कालीन सूर्यरश्मियो के पृथ्वी पर गिरते ही, अर्चनाकुमारी ने जयपुर से प्रस्थान करने के लिये कदम उठाया। किन्तु उपाश्रय से बाहर आते ही उनकी दृष्टि तागे से उतरती हुई जानकी पर पडी।

अर्चनाकुमारी उसे देखकर स्तब्ध रह गई। उन्होने कल्पना भी नही की थी कि दो मास के अल्पकाल मे ही जानकी इतनी कृश हो जाएगी। यद्यपि उसका गौर-वर्ण चेहरा पीला पडकर सुवर्ण के समान सुन्दर लग रहा था, किन्तु शारीरिक दुर्बलता अत्यधिक बढ गई थी। अपने भाई ज्योतिप्रकाश का सहारा लेकर वह तागे से उतरी और धीरे-धीरे उनके समीप आई। उद्विग्न होकर उन्होने पूछा—

"तुम्हे क्या हुआ जानकी ?"

जानकी सिर्फ मुस्कराई, बोली नही। उत्तर ज्योति-प्रकाश ने दिया— दीदी तभी से रुग्ण है भगवती! जब से आपने प्रस्थान किया। इसका हृदय बहुत कमजोर हो गया है। कभी-कभी तो 'ब्लडप्रेसर' अत्यधिक गिर जाने मे हालत बहुत खराब हो जाती है। इलाज बराबर चल रहा है पर स्वास्थ्य हैं कि सुधरने मे ही नही आता। डॉक्टरो का कहना है कि इन्हे दवाइयो की अपेक्षा पूर्ण विश्राम और प्रसन्न रहने की अधिक आवश्यकता है। इसलिये बाबूजी ने इन्हे कुछ दिन आपके पास रखने का विचार किया है। जल-वायु का परिवर्तन भी हो जाएगा। किन्तु आप आज और अभी ही विहार कर रही है, तो मै इन्हे वापिस लिये जाता हूँ।"

"नही, नही, वापिस ले जाने की आवश्यकता नही है ज्योति बाबू! तुम जानकी को यही छोड जाओ। मै अब जयपुर से आज नही, परसो प्रस्थान करूँगी। जानकी मेरे साथ ही चलेगी।"

"आपके साथ दीदी कैसे चलेगी भगवती ?

"क्यो, पैदल चलेगी और कैसे ? अर्चनाकुमारी ने हँसते हुए कहा।

"पर यह बहुत कमजोर है, अभी तो बिना सहारे के अधिक नहीं चल पाती।"

"अरे भाई! नही चल पाती तो क्या हुआ? दो दिन में ठीक होकर चलेगी, और अवश्य चलेगी। मेरी बात पर विश्वास नही होता शायद?"

"धृष्टता के लिये क्षमा करे भगवती!" ज्योतिप्रकाश ने अप्रतिभ होते हुए कहा - "मुझे आपके वचनो पर पूर्ण विश्वास है।"

"तो ठीक है! अब तुम निश्चित होकर कुछ विश्राम करो। सफर करके आए हो।"

"जो आज्ञा" कहता हुआ ज्योतिप्रकाश वहाँ से चला गया।

अर्चनाकुमारी रवाना होने के लिये तैयार खडी हुई अपनी शिष्याओ की ओर उन्मुख होकर बोली—

"सूर्यकुमारी! अन्दर चलो। हम आज नही, परसो यहाँ से रवाना होगे।"

दोनो शिष्याएँ चुपचाप खडी थी। लगता था कि रवाना होने के लिये तैयार होकर रुक जाना उन्हे अच्छा नही लग रहा था। कनक छोटी थी, कुछ बोली नही, किन्तु सूर्यकुमारी ने अस्फुट स्वर मे तनिक विरोध किया—

"भगवती अब तैयारी कर लेने के बाद....।"

"अरे साधुओ की तैयारी क्या? कोई ट्रक बिस्तर है हमारे पास? कहते है न कि "बिच्छू का डेरा उसकी पीठ पर।" हमारा सामान भी तो हमारी पीठ और कन्धो पर ही है। रख दो उतार कर।"

आगे कुछ भी न कहकर सूर्यकुमारी कनककुमारी के साथ अन्दर चली गई और भगवती ने अपने हाथो मे लिये हुए पात्र तथा कन्धे पर लटके हुए थैले को नीचे रख दिया। पीठ पर बन्धे हुए वस्त्रो को खोल डाला। उसके बाद गुमसुम किन्तु शान्त बैठी हुई जानकी से पूछा—

"क्या बात है जानकी? तुम्हारा स्वास्थ्य इतना कैसे गिर गया?"

"यह भी कोई प्रश्न है भगवती!"

"वाह प्रश्न क्यो नही है...?" अर्चनाकुमारी साश्चर्य बोली।

"इसलिये कि आप मेरे स्वास्थ्य खराब होने के कारण को जानती है।" प्रच्छन्न मुस्कुराहट के साथ जानकी ने उत्तर दिया।

"लो और सुनो, मैं क्या जानूँ इस वात को ?"

"अच्छी वात है, आप नही जानती तो न सही। जानने की जरूरत भी नहीं है आपको।"

"क्यो नहीं है जरूरत ?"

"जानकर भी जो व्यक्ति अनजान वना रहना चाहे उसे वताने से क्या लाभ ?" जानकी रूठ गई।

"अरे, तुम्हारा स्वभाव तो जैसा का तैसा ही है अभी तक! गुस्सा करने की आदत मिटी नहीं तुम्हारी ?"

"क्या वीमार पड जाने से स्वभाव वदल जाता है भगवती ?"

"मैं क्या यह कह रही हूँ ? तुम तो मेरी हर वात पकड लेती हो।"

"पर आपको तो पकड कर नही रख पाती। आप तो मुझे छोड-छाडकर चल ही देती है।" कहती हुई जानकी हँस पडी। लगता था कि उसकी आधी वीमारी भगवती के समीप आकर ठीक हो गई है।

जानकी को अस्वस्थ देखकर अर्चनाकुमारी चिंतित हो रही थी पर रुग्णता के वावजूद भी उसे प्रफुल्लतापूर्वक वाते करते देखकर, अत्यन्त प्रसन्नता हुई। सस्नेह वोली—

"परसो हमारे साथ चलोगी न तुम ?"

"क्या मैं चल सकूँगी भगवती! कहीं ऐसा न हो कि मेरी वजह से आपका जाना भी स्थगित हो जाय। इससे तो अच्छा यही होता कि आप आज ही प्रस्थान कर देती। मेरा क्या ? वापिस लौट जाती।"

"जानकी! लगता है, तुम्हारा मन वडा कायर है। वीरो के कोप मे कही भी असम्भव शब्द नही होता। क्या तुम्हे अपनी आत्म-शक्ति पर विश्वास नही है ? दुर्वल वह व्यक्ति नही होता जो शरीर से दुर्वल होता है, वरन् वह होता है जो अपने आपको दुर्वल समझता है। आत्म-विश्वास के द्वारा तो दुर्गम से दुर्गम पथ भी सुगम हो जाता है। यह मत भूलो कि समस्त मानसिक और शारीरिक शक्तियाँ हमारे आत्म-विश्वास पर अवलंवित है। प्रत्येक कार्य मे सफलता प्राप्त करने का मुख्य रहस्य आत्म-विश्वास ही है। जिसे अपनी इस शक्ति पर विश्वास नही है वह व्यक्ति कितना ही हृष्ट-पुष्ट क्यो न हो, मेरी दृष्टि मे सवसे कमजोर है।"

इसलिये आत्मिक कमजोरी का त्याग कर दो जानकी, और हृदय मे इस विश्वास को जगाओ कि मैं तन और मन से पूर्ण स्वस्थ हूँ। यह सोचो कि मै प्रतिपल स्वस्थ हो रही हूँ। मै निश्चयपूर्वक कहती हूँ कि तुम्हारा यह प्रयत्न कदापि निष्फल नही जाएगा और तुम अवश्यमेव हमारे साथ चल सकोगी।"

जानकी कुछ बोली नही। वह अपनी मगलाकाक्षिणी को एकटक देख रही थी। उसे लग रहा था मानो उसके सामने कोई अलौकिक आत्मा सशरीर आकर भविष्यवाणी कर रही हो। भगवती के शब्द जैसे उनकी जबान से न निकलकर उनकी अन्तरात्मा की गहराई से निकल रहे थे जिनके असत्य होने की सम्भावना ही नही थी। जानकी को अपने मन और प्राणों मे एक अद्भुतशक्ति का सचार होता हुआ महसूस हो रहा था। उसे लगा जैसे वह अभी-अभी मीलो दौड सकती है। कृतज्ञता और श्रद्धा से उसकी आँखो मे आँसू उमड आए।

यह देखकर अर्चनाकुमारी ने परमस्नेह से जानकी के चिबुक को उठाकर आदेश दिया—

"उठो जानकी! भोजनादि से निवृत्त होओ जाकर। मुझे भी अभी बहुत से कार्य करने है।

एक क्षण का भी विलम्ब न कर जानकी उठ खड़ी हुई और धीरे-धीरे कमरे से बाहर चली गई।

४२

वनराजाओं के राज्य में

दो दिन का समय बात करते बीत गया। तीसरे दिन प्रातःकाल भगवान भास्कर ने ठीक समय पर उदित होकर जगत को जागरण का सन्देश दिया। संसार के समस्त प्राणी अपने-अपने कार्य में संलग्न हो गए। भगवती अर्चनाकुमारी भी अपनी यात्रा के लिये तैयार हो चुकी थी। किन्तु उनकी आँखें जानकी को खोज रही थी। वह जल्दी ही उठकर प्रातःकालीन क्रियाओं से निवृत्त होकर उपाश्रय के अन्य भाग में तैयार होने के लिये चली गई थी। अवेर होती देखकर उनका मन झुंझला उठा और इतनी देर तक भी उसके न आने के कारण वे नाराज हो गई। किन्तु उनका क्रोध सच्चा है या झूठा, यह वे स्वयं ही नही समझ सकी। इष्टदेव का स्मरण कर उन्होंने अपने वस्त्र-पात्रादि उठाने शुरु किये और इस कार्य में कुछ क्षणों के लिये उनकी पीठ कमरे के दरवाजे की ओर हो गई। ठीक उसी समय हर्षातिरेक में सने हुए शब्द उनके कानों में टकराए—

"भगवती! आप फिर मुझे छोड़कर चल दी क्या?"

"छोड़ूँगी नही तो क्या रोज-रोज तैयारी करके रुकती रहूँगी? कहाँ थी तू अब तक ......?" कृत्रिम क्रोध के कारण अर्चनाकुमारी को 'तू' और 'तुम' का फर्क याद नही रहा।

"और कहाँ जाती· ····?" यही तो थी उस कमरे मे।" जानकी ने आँखे फैलाकर कहा।

"यही थी उस कमरे मे······ अरे, यह तो मैं भी जानती हूँ। पर मैं पूछती हूँ कि तुझे चलना नही है क्या ?"

"चलना नही तो क्या मै यही रहूँगी भगवती ? पर अभी तो सवेरा हुआ ही है।"

"सबेरा हुआ है तो क्या हुआ ? इस समय नही चलेंगे तो क्या फिर भर-दोपहरी मे चला जाएगा ? तू तो चप्पलें पहनकर रवाना हो जाएगी, पर हमे तो नगे पैर चलना पडेगा ?" अर्चनाकुमारी ने जरा और गुस्से से उसे डॉटा।

"जानकी जरा भी हतप्रभ नही हुई वरन हँसती हुई वोली—"अरे, यह तो मैं भूल ही गई थी भगवती।" चलिये मै तैयार हूँ, पर एक वात कह दूँ जल्दी से ?"

अर्चनाकुमारी देर होती देख फिर गुस्सा हो पडी—

"कह न जो कुछ कहना हो जल्दी से, इतनी वडी भूमिका किसलिये वाँधी है ?"

"मैं यह कह रही हूँ भगवती ! कि अव आजसे आप मुझ तुम न कहा करे।" जानकी लाड से वोली।

"वडी अच्छी वात कही यह तो ! तुम नहीं कहूँ तो क्या अव मै तुझे आप कहा करू··· ? चल उठ अब ! लाड-प्यार करने का वक्त नही है। देर हो जाएगी ?"

जानकी तैयार होकर ही आई थी। आर्याओ की तरह उसे अपना सामान स्वय तो लेना नही था, वह बजरग ठाकुर ने अपनी साइकिल पर रख लिया था। अत शरीर और मन दोनो प्रकार की स्वस्थता का अनुभव करती हुई वह हरिणी के समान कुलाचे भरती हुई सबसे पहले सडक पर आ खडी हुई। अर्चनाकुमारी उसे स्वस्थ देखकर पूर्ण सतोष से आगे बढी।

जयपुर से अलवर का रास्ता बडा कठिन और खतरनाक था। मार्ग मे घने जगल थे, जिनमे शेर चीते तथा अन्य हिंस पशु निवास करते थे। किन्तु दिन का समय होने के कारण भय का अनुभव न करते हुए अर्चनाकुमारी

का छोटा सा काफिला प्रसन्नचित्त से आगे वढ रहा था। एक जानकी ही सहमी हुई थी।

छोटे छोटे गाँवो को पीछे छोडते हुए थाना गाजी से जव वे आगे सिरस्का की ओर चले तो मार्ग और भी वीहड आ गया। चारो ओर ऊँचे ऊँचे पहाड, सुनसान जगल और उनमे अत्यन्त घनी झाडियाँ। ऐसे मार्ग पर दिन को भी कोई अकेला व्यक्ति चले तो उसका हृदय दहल जाए। रात्रि मे आवागमन तो सभव ही नही था। राहगीरो से ज्ञात हुआ कि जगली जानवरो का भय इस प्रदेश मे वहुत है।

किन्तु कार्यक्रम के अनुसार दिन रहते ही भगवती अपने समुदाय सहित सिरस्का पहुँच गई। सिरस्का मे अलवर नरेश की वडी कोठी थी। उसे खुलवाकर उसी मे रात्रि निरापद विताने का निश्चय किया गया। रात होते ही कोठी के वृहत् द्वार वन्द कर दिये गए। पहरेदार ने वताया कि इधर रहने वाले स्त्री-पुरुष वडे निडर और वीर होते है। ममय आने पर पुरुष तो क्या, स्त्रियाँ भी शेरो का मुकावला कर लेती है।

ठाकुर वजरग रास्ते भर, सिरे पर पीतल से मढी अपनी मोटी लाठी कधे पर रखे सतर्कता पूर्वक सवसे आगे चलता आया था। रात्रि मे कोठी के अन्दर विशेप भय न होने पर भी उसे नीद नही आई और करीव करीव पूरी रात वह जागता रहा। कोठी के एक वडे कमरे मे तीनो आर्याएँ, जानकी और रूपा ठकुरानी सो रही थी। जानकी डरपोक थी। अर्धरात्रि मे जव चारो ओर भयकर सन्नाटा छाया हुआ था, सहसा ही किसी हिंस्र पशु की आवाज सुनकर वह उठ वैठी और पीपल के पत्ते की तरह कापने लगी। निद्रा भगवती अर्चनाकुमारी की भी खुल चुकी थी। जानकी को वैठी देखकर पूछा—

"क्या वात है जानकी! वैठी हो क्यो ?"

"डर लग रहा है भगवती! कोठी के आस-पास शायद कोई शेर घूम रहा है।"

"वाह, दिन को किसी ने वता दिया कि इधर शेर-चीते रहते हैं तो रात को इस कोठी मे भी तुम डर रही हो! डर किस वात का ? हम जंगल मे खुले मैदान मे तो है नही, कोठी के अन्दर है। इसकी दीवारो को फाद कर शेर नही आ सकता। निर्भय होकर सो जाओ, डरो मत्।

पर जानकी सोई नही, वैसी ही वैठी रही। देखकर अर्चनाकुमारी ने ममता-पूर्ण भर्त्सना करते हुए उसे अपने पास वुलाया। कहा—

"कितनी डरपोक हो तुम ? हम साधुओ को तो सैकडो वार ऐसे भयकर स्थानो पर ठहरना पडना है और वहाँ ऐसी कोठियाँ भी नही होती। तुम्हारी तरह डरने लगे तव तो हो चुका कल्याण। और तुम्हारे जैसी और दो-चार साथ मे हो फिर तो रात को घडी भर भी सो न सके। चलो, आओ मेरे पास ! यहाँ आकर सो जाओ।"

विना एक भी शव्द वोले जानकी अपने स्थान से उठी और अर्चनाकुमारी के पास आ उनसे सटकर छोटी वच्ची की तरह सो गई। उसका शरीर तव भी काँप रहा था। अर्चनाकुमारी ने लेटे लेटे ही उसे पुन. सान्त्वना दी और यात्रा की थकान से चूर तथा काफी समय से रुग्ण रहने के कारण कमजोर जानकी दो मिनट मे ही प्रगाढ निद्रा के वशीभूत हो गई। अर्चनाकुमारी को निद्रा तव भी नही आ रही थी। सोचा—जानकी की तरह कनक भी शायद डरती हो ! अत. धीरे मे उसे भी पुकारा—

'कनक ! जाग रही हो वेटी ?"

"जी, भगवती !"

"तुम्हे भी डर लग रहा है क्या ?"

"अधिक तो नही भगवती !" कनक ने भय को साधु जीवन का दोष मानते हुए सकुचित होकर उत्तर दिया।

"तव भी आओ, मेरे पास आकर सो जाओ !"

प्रसन्न होकर कनककुमारी उठी और भगवती के दूसरी ओर आकर सो रही।

कनक और जानकी दोनो के निद्रामग्न हो जाने पर भी अर्चनाकुमारी को नीद नही आई। अलवर नरेश की इस कोठी का प्रत्येक हिस्सा उन्होने शाम को देखा था। सुना था कि जव महाराज की शिकार करने की इच्छा होती है, वे इस कोठी मे आकर ठहरते है और कुछ जीव-जन्तुओ का शिकार का आनन्द उठाते है। कोठी का वीच वाला सवसे वडा कमरा उनके द्वारा मारे हुए शेर-चीतो तथा हरिण आदि वन्य पशुओ की खालो से सजाया हुआ था।

अर्चनाकुमारी का मन यह सब सोचकर चितन की गहराई मे गोते लगा रहा था। वे विचार कर रही थी कि नरराज और वनराज, दोनो ही राजा कहलाते है किन्तु दोनो के स्वभाव मे कितना अन्तर होता है। वनराज अपनी क्षुधा को शाँत करने के लिये प्राणियो को मारता है किन्तु नरराज करुणा, दया और प्रेम आदि अनेक गुणो का धनी होकर भी सिर्फ अपने मनोरजन के लिये, और अपनी वीरता का प्रदर्शन करने के लिए ही नाना प्राणियो को मार गिराता है। निहत्थे प्राणियो को धोखे से मार डालना क्या उसके पराक्रम का प्रमाण है? निरीह वनचरो के प्राणो मे खिलवाड करना तो क्रूरता और कायरता का चिह्न है। मानवता के नाम पर घोर कलक है। काश, मानव अपनी महान भूल को समझ ले और अपने से भिन्न समस्त जीवो से प्रेम करना सीख जाए।

भगवती का हृदय कराह उठा। अलवर नरेश की वह कोठी, जिसमे अनेक प्राणियो के अतिम चिह्न भरे पडे थे, उन्हे नरक के समान लग रही थी। उनकी कल्पना मे अनेक निष्पाप और निर्द्वन्द्व प्राणी कल्लोल करते हुए और अगले क्षण ही रक्त मे सनकर प्राण त्यागते हुए नजर आते थे। परिणामस्वरूप उनका सदा शात रहने वाला मन अशात हो उठा और निद्रा नेत्रो से कोसो दूर चली गई।

प्रात काल होने पर गाँव वालो ने भगवती को कुछ समय रुकने तथा आहार ग्रहण करने का अनुरोध किया, किन्तु उन्होने उस रक्तस्नात भवन मे एक बूद जल भी ग्रहण करना स्वीकार नही किया। वहाँ से खुशालगढ के लिये प्रस्थान कर दिया। खुशालगढ पहुँचकर उन्होने चैन की सास ली और लगभग चौबीस घटे पश्चात् आहार ग्रहण किया।

अगले दिन उन्हे अलवर पहुँचना था। उनके आने का समाचार पाकर अलवर के अनेक नर-नारी खुशालगढ आ पहुँचे थे। बडे समारोहपूर्वक अलवर निवासियो ने भगवती का स्वागत अपने नगर मे किया।

अपनी लम्बी यात्रा के दौरान कही भी अधिक रुकने का कार्यक्रम अर्चना-कुमारी का नही था। अलवर मे भी वे केवल दो दिन का विश्राम चाहती थी, किन्तु वहाँ के स्त्री-पुरुषो ने उन्हे कुछ अधिक रुकने को विवश कर दिया। अलवर की महिलाओ मे धर्म के प्रति अटट भक्ति थी पर धार्मिक-शिक्षण देने वाली कोई सस्था वहाँ नही थी। उसका अभाव उन्हे सदा

खुलता रहता था। अत. महिलाओ मे अग्रगण्य, कमलादेवी ने भगवती से इस अभाव की पूर्ति के लिये अत्यधिक व मार्मिक अनुरोध किया। कहा—

"भगवती! हमारे अलवर नगर मे जब आपकी चरण-धूलि पड गई है तो इसका उद्धार हो जाना चाहिये। आप हमारे धर्म शिक्षा के अभाव की पूर्ति करके पधारे। तभी हम आपको यहाँ से जाने भी देगी। कृपया इस विनम्र प्रार्थना को स्वीकार करे।"

अर्चनाकुमारी बडे पेशोपेश मे पडी। एक सस्था का निर्माण करना, और वह भी अतिशीघ्र सहज नही था। किन्तु महिलाओ के हार्दिक अनुरोध के आगे उन्हे झुकना पडा। अपने अगले दिन के प्रवचन मे ही उन्होने वृहत् जन समुदाय को सम्बोधित करते हुए कहा—

"बधुओ! आपके नगर मे आने का सुअवसर मुझे प्रथम बार ही मिला है। फिर भी आप सबके उल्लास, स्नेह और भक्ति को देखकर मेरा हृदय परम आह्लाद का अनुभव कर रहा है। खेद है तो केवल यह कि यहाँ धर्म-परायण महानुभावो के होते हुए भी वहनो एव बालिकाओ के लिये धार्मिक शिक्षा प्रदान करने वाली कोई सस्था नही है। आपको ज्ञात होना चाहिए कि धर्म की अमर-बेल पुरुषो की अपेक्षा नारियो द्वारा ही सुन्दरता से सिंचित और पालित-पोषित होकर फलती-फूलती है।"

"युगप्रवर्तक आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने अपने पुत्रो से भी पहले ब्राह्मी, सुन्दरी नामक पुत्रियो को सभी प्रकार की शिक्षा देकर हमारे सामने उच्च आदर्श उपस्थित किया है। वे जानते थे कि समाज व्यवस्था मे पुरुषो की अपेक्षा स्त्रियो का स्थान अधिक महत्वपूर्ण होता है। वे माताएँ, जिनकी गोद मे बालक पलते है, अगर सुसस्कारी तथा धर्म परायण न होगी तो बालको मे सत्सस्कारो का परिस्राव कहाँ से होगा? ससार मे जितने भी महापुरुष और धर्म के रक्षक हुए हैं, उनकी महत्ता का आदि स्रोत माताएँ ही रही है।"

"इसलिये आप लोगो से अनुरोध है कि आप आजसे ही नही, अपितु अभी से अपनी बालिकाओ को आदर्श कन्या, आदर्श पत्नी और आदर्श माता बनने मे सहायक हो। यह तभी होगा जब उनमे प्रारम्भ से ही धर्म के बीज बोए जायँ, और उनके लिये एक ऐसी सस्था का निर्माण किया जाय जो उन्हे अकुरित कर सके। क्या आप लोग इसके लिये तैयार है?" कहकर क्षण भर के लिये अर्चनाकुमारी ने अपनी प्रभावोत्पादक दृष्टि उस विशाल जनसमूह पर फैलाई।

उस दृष्टि का त्वरित गति से प्रभाव पडा और तत्क्षण ही श्रोताओ की अगली पक्ति मे बैठे हुए एक सज्जन ने उठकर मच के समीप विछे आसन पर अपनी कीमती घडी, हीरे की अगूठी और जेव मे जितने भी रुपयो के नोट थे निकालकर रख दिये। वे लौट कर अपने स्थान पर वैठ भी नही पाए थे कि दूसरे, तीसरे, चौथे और इसी प्रकार अनेक व्यक्तियो ने उस राशि को वढाना शुरू किया।

अर्चनाकुमारी शान्तभाव से उस अद्‌भुत दृश्य को देख रही थी। त्याग की भावना का ऐसा अनुपम रूप वहुत कम ही देखा जाता है। उस विशाल पडाल मे मुश्किल से ही कोई ऐसा वचा होगा जो उस धन-राशि मे विना कुछ भी समर्पण किये लौटा हो। अगूठियो, घडियो, गले की चेनो और नोटो का वहा ढेर लग गया। पुरुषो के वाद महिलाओ की वारी आई। चाँदी के विछुए से लेकर सोने के कडे, चूडी, लॉकेट, टॉप्स और नाक की कीलें तक उस स्थान पर जगमगाने लगीं। इतना ही नही, छोटी-वड़ी अनेक रकमें वाद मे भिजवा देने वालो की भी एक लम्वी सूची वन गई।

भगवती अर्चनाकुमारी ने श्रावक सघ के प्रमुख कार्यकर्ता श्री सोमचन्द्र को वुलाया और उस धनराशि को सुरक्षित रखने, तथा शीघ्रातिशीघ्र शुभ कार्य को प्रारभ करने का आदेश दिया। सवसे अत मे जानकी ने अपने हाथ की दो चूडियाँ भेट की। ठाकुर वजरग भी पीछे नही रहा। उसने चाँदी के वटन और चैन निकालकर रख दिये।

अर्चनाकुमारी यह देखकर हँस दी। वोली—"ठाकुर, तुम तो सचमुच ही साधु वने जा रहे हो !"

"वन तो जाऊ भगवती ! पर.........।"

'ठकुरानी इजाजत नही देती क्यो ?" भगवती ने परिहास किया। सुन कर सव हँस पडे और इस प्रकार हँसी-खुशी और उत्साह के वीच उस दिन का आयोजन समाप्त हुआ।

४३

धर्म के प्रभाव से

एक विशाल भवन के मुख्य द्वार पर एक वडा सा वोर्ड लगा हुआ था। उस पर सुन्दर और आकर्पक शब्दो मे लिखा था "ब्राह्मी महिला मदिर"।

वर्पो से चाहने और प्रयत्न करने पर भी जिस सस्था का निर्माण नही हो सका था, भगवती अर्चनाकुमारी की वाणी के प्रभाव से वह वात की वात मे खडी हो गई। आज उसका उद्‌घाटन-समारोह था और भगवती के द्वारा ही वालिकाओ को प्रथम पाठ पढाया जाने वाला था।

'ब्राह्मी महिला मदिर' का वृहत् प्रागण नर-नारियो से खचाखच भर गया था। ऊँचे आसन पर भगवती शिष्याओ सहित आसीन थी। आने वाले स्त्री-पुरुष कृतज्ञतापूर्ण हृदय से उन्हे नमस्कार करते हुए अपना अपना स्थान ग्रहण करते जा रहे थे। महिलाओ की प्रसन्नता का पार नही था। उनका वरसो का स्वप्न सत्य होने जा रहा था।

उद्‌घाटनममारोह प्रारम्भ हुआ। सर्व प्रथम वालिकाओ ने ईश-प्रार्थना की। उमके वाद मोमचन्द्र जी ने सस्था की जन्मदात्री भगवती अर्चनाकुमारी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट किया और ममय समय पर पुन. पधार कर उसे सम्हालते रहने की विनम्र प्रार्थना की। तत्पश्चात् आर्या अर्चनाकुमारी का सारगर्भित प्रवचन हुआ। उममे उन्होने कहा—

"सस्था का निर्माण आप करना चाहते थे और आप लोगो ने ही किया है। इस शुभ कार्य को सम्पन्न करने की इच्छा जब बलवती हुई, सयोग से उसी अवसर पर आ पहुँचने से यह श्रेय मुझे मिल गया है। वास्तव मे देखा जाए तो आप लोगो की लगन और श्रम को ही यह श्रेय मिलना चाहिये। हाँ, मै इतना अवश्य चाहती हूँ कि यह सस्था, जो आज जन्म ले रही है, किसी भी स्थिति मे नष्ट न होने पाए और निरंतर उन्नति करती चले।"

समस्त स्त्री-पुरुष भगवती के शब्दो को सुनकर गद्गद हो गए। वे जानते थे। कि महान आत्माएँ कभी भी अपनी प्रशसा को सुनकर प्रसन्न नही होती।

सबसे अत मे सस्था की मुख्य सचालिका कमलादेवी ने भगवती से अनुरोध किया कि वे कृपा करके बालिकाओ को धर्म का पहला पाठ पढाएँ। उनके आग्रह को न टालते हुए अर्चनाकुमारी ने बालिकाओ को नमोक्कार मत्र' का माहात्म्य समझाया। उपस्थित जनता मे प्रसन्नता की लहर दौड गई और जय जयकार की ध्वनि के साथ असीम हर्ष और उल्लासपूर्वक उद्घाटन समारोह समाप्त हुआ।

'ब्राह्मी महिला मदिर' के निर्माण का शुभ कार्य समाप्त होते ही अर्चना-कुमारी ने पुन. यात्रा का कार्यक्रम बनाया और माघशुक्ला अष्टमी को अलवर से प्रस्थान कर दिया। सैकडो नर-नारियो ने अश्रुपूर्ण नेत्रो से भगवती को भाव-भरी विदाई दी। उस दिन पन्द्रह मील चलकर वे रामगढ नामक गाँव मे ठहरी। सोमचन्द्र जी तथा कमलादेवी साथ ही आए थे। रामगढ से वे अलवर लौट गए। जानकी ने कुछ समय तक और भी भगवती के साथ रहने का निश्चय किया।

अगले दिन ही रामगढ से रवाना होना था किन्तु सूर्य-देवता ने ज्योही क्षितिज के छोर से झाका, ठीक उसी समय बजरग ठाकुर दौडता हुआ आया और घबराते हुए बोला—

"भगवती आज तो जाना नही हो सकता।"

"जाना नही हो सकता ? क्यो ठाकुर ?"

"हाँ, भगवती आप हम दिल्ली की ओर रवाना नही हो सकते।"

'पर क्यो ? क्या विपत्ति आपडी ऐसी ? हमने तो आज ही और अभी रवाना होने का निश्चय किया है।" अर्चनाकुमारी दृढतापूर्वक बोली।

"जिद न करे भगवती ! मुझे अभी अभी गाँव वालो ने वताया है कि इस असमय मे ही उस ओर वहुत अधिक वर्षा हुई है। इतनी अधिक कि यहाँ से एक-दो फर्लांग आगे ही सडक जगह-जगह से बुरी तरह कट गई है। वडे-वडे गढे हो गए है और उन पर सीमेट डालकर वडी कठिनाई से सकरा रास्ता बनाया गया है।"

"तो क्या हुआ ?"

"हुआ क्यो नही ? वही तो आपको वताने आया हूँ कि उस सँकरे रास्ते पर इधर से कोई नही जा सकता, सिर्फ उधर दिल्ली की ओर से ही ट्रैफिक चलकर आ रहा है। लाइन लगी हुई है बसो, मोटरो, ट्रको, वैलगाडियो ·!"

"और रेलगाडियो की भी। क्यो ठाकुर ? अर्चनाकुमारी ने जोर से हँसते हुए ठाकुर की बात काटी।

"आप तो मजाक कर रही है भगवती !" ठाकुर ने वच्चो जैसा मुँह बनाया।

"नही, मजाक नही करती ठाकुर ! पर सोचती हूँ कि काश्मीर तक की पद-यात्रा के लिये तैयार बजरग ठाकुर जरासा रास्ता पार करने मे कैसे घबरा गया ?"

ठाकुर आँखे फाडकर बोला—"घबराता क्या मैं अपने लिये हूँ भगवती ! मै सिपाही आदमी हूँ। जिन्दगी भर बन्दूक लिये ऊबड-खावड जगलो मे दौडता फिरा हूँ।"

"तब फिर क्या ठकुरानी के लिये डर रहे हो ?" अर्चनाकुमारी मजाक के मूड मे थी।

'भगवती, ठकुरानी क्या आपसे बढकर है ? मै तो आपके लिये डर रहा हूँ। उस सकीर्ण रास्ते को, जब ट्रके ही रोके हुए होगी, आप कैसे पार करेगी ? दोनो ओर तो पानी कीचड और बडे-बडे गड्ढे है।"

अर्चनाकुमारी ने क्षणभर विचार किया और उसके बाद ही, चल रहे विपय के विपरीत एक अजीव सा प्रश्न कर बैठी—

"क्यो ठाकुर, तुम भगवान को मानते हो ?"

"ठाकुर विचारा भौचक्का होकर भगवती का चेहरा देखने लगा। पल भर इतस्तत देखकर बोला—

"पहले तो नही मानता था भगवती ! पर आपके संपर्क मे आने के बाद मानने लगा हूँ ।"

"तो बस स्मरण रखो कि सकटकाल मे श्रद्धालु भक्तो की भगवान निश्चय ही सहायता करता है । अच्छा जाओ ! सूर्यकुमारी वगैरह से कहो कि तैयार हो जाएँ । हम रवाना हो रहे हैं । अन्यथा देर हो जाएगी ।"

"जो आज्ञा !" कहकर ठाकुर कठपुतली की भाँति मुडा और चल दिया। उस बेचारे को अभी भी समझ मे नही आ रहा था कि कई मील लम्बा और भारी भरकम ट्रको तथा बसो आदि से घिरा हुआ रास्ता भगवान कैसे पार करायेंगे । पर अब एक शब्द भी कहने की गु जाइश नही थी । भगवती की दृढ इच्छा शक्ति से वह काफी परिचित हो गया था । जान गया था कि उनका निश्चय पत्थर की लकीर के समान होता है जो कि लाख कोशिश करने पर भी बदला नही जा सकता ।

सब लोग चल पडे । अर्चनाकुमारी के हृदय मे चिन्ता या दुश्चिता का लेश भी नही था । वही प्रफुल्लता और मधुर मुस्कान उनके सौम्य चेहरे पर थिरक रही थी । किन्तु बाकी सभी के हृदय उद्विग्न थे । ठाकुर मु ह लटकाए चल रहा था । सोच रहा था—शायद वापिस लौटना पडेगा ।

दो फर्लाग तक सब चुपचाप चलते रहे । ठाकुर की सूचना सही थी । इधर से एक भी व्यक्ति जाने वाला नही दिखाई दिया, सिवाय उनके ! यह देखकर जानकी से नही रहा गया । सबसे ज्यादा डरपोक भी वही थी । बोली—

"भगवती !"

"कहो क्या बात है ?" चलते-चलते ही अर्चनाकुमारी बोली ।

"अगर आज हम वापिस लौट चले तो क्या हर्ज है ?" एक दो दिन बाद रवाना हो जायेंगे ।"

"एक दो दिन की क्या कोई कीमत नही है जानकी ?"

"यह मै कहाँ कह रही हूँ ? मैं तो सोच रही हूँ कि जानबूझकर आपत्ति मोल लेने मे क्या फायदा ? चारो ओर बाढ के कारण पानी ही पानी दिखाई दे रहा है । एक चिडिया भी तो इधर से जाती हुई दिखाई नही दे रही सिवाय हमारे ।"

"अरे, तो हम तो है इतने सब, घबराओ मत । चलो ! रास्ता अवश्य पार होगा ।"

और सचमुच ही महान आश्चर्य हुआ सबको तब, जबकि खतरे का वोर्ड लगा हुआ स्थान आया। सभी ने देखा अचरजभरी निगाहो से देखा कि दूर-दूर तक वह सँकरा और लम्बा रास्ता खाली पडा था। एक भी कार, बस, मोटर या ट्रक उस रास्ते से नही आ रहा था। तलाश करने पर मालूम हुआ कि दिल्ली से आने वाला एक लोहे के सामान से भरा हुआ ट्रक उस ओर के मुहाने पर खराब हो गया है, और उसके कारण पीछे आने वाली सभी गाडियाँ उधर ही वापिस लौटकर जा रही है। कुछ खडी भी है।

सुनकर सबके चेहरे पर रौनक आ गई। अर्चनाकुमारी ने कहा—"क्यो जानकी! अब तो कोई डर नही है न? देखो रास्ता विलकुल साफ और निरापद है। हम आसानी से इसे पार कर लेगे।"

वजरग ठाकुर हैरान था। उससे रहा नही गया। स्पर्श हो जाने के भय से उसने भगवती के चरणो के पास की धूलि को मस्तक पर चढाते हुए कहा—

"भगवती आपने क्या कोई सिद्धि प्राप्त कर ली है? या कि आपके वचनो मे जादू है?"

"अरे नही भाई, यह केवल सयोग की बात है कि ठीक हमारे आने के समय ही उधर ट्रक को खराब होना था। पर अब सब लोग शीघ्रतापूर्वक चलो। ट्रक के ठीक होते ही सारा जादू गायव हो जाएगा। चलो, व्यर्थ देर मत करो।"

सबके पैरो मे मानो पर लग गये। करीब पौन घटे लगातार चलने के वाद, खतरे का मार्ग खतम हुआ। देखा तो सचमुच ही उसके मुहाने पर एक वडा भारी ट्रक सारा रास्ता रोके हुए खडा था। पर अब वह ठीक होने जा रहा था।

जल्दी-जल्दी चलने के कारण सब बुरी तरह थक गए थे, अत' भगवती ने सबको कुछ देर वहाँ बैठकर विश्राम करने के लिये कहा। पाच दस मिनट वे सडक के एक ओर बैठे और ज्योही ट्रक के इजिन ने घर्र-घर्र करके चलना शुरू किया अर्चनाकुमारी ने भी उठकर अपने मार्ग पर बढने का उपक्रम किया।

चारो ओर फैले हुए पानी, और उसके वीच मे दिखाई देते हुए सर्पाकार रास्ते पर पुन एक निगाह डालकर सब अपनी मजिल की ओर बढ चले। ●

४४

कायापलट

इसी प्रकार अनेक कठिनाइयो का सामना करते हुए तथा भूख-प्यास के परीपह सहते हुए आर्या अर्चनाकुमारी का छोटा सा दल गुडगॉव, देहली, पानीपत, करनाल, अम्वाला तथा कालका आदि अनेक छोटे वडे नगरो को पीछे छोड गया। लोगो के लाख आग्रह करने पर भी आवश्यकता से अधिक विराम भगवती ने कही नही लिया। सवको लौटते समय ठहरने का आश्वासन देकर सतुष्ट किया।

जानकी देहली से लौट चुकी थी, और भगवती इस समय शिमले के रास्ते पर कालका और कसौली के वीच मे थी। कसौली पहुँचने के लिये अत्यन्त कठिन चढाई पडती थी। अम्वाला मे ही मालूम हो गया था कि कसौली की जवर्दस्त चढाई अगर पार कर ली तो फिर शिमला पहुँचना कठिन नही होगा।

यद्यपि अर्चनाकुमारी हृदय-रोग की मरीज थी और डॉक्टरो ने उन्हे अधिक चलने-फिरने और परिश्रम करने के लिये मना कर दिया था, किन्तु अपनी दृढ इच्छा शक्ति के आगे वे शरीर की कमजोरी को नगण्य मानती थी और उसी के वल पर अपनी कठिनतम यात्रा पर वढती चली जा रही थी। मजिल पर पहुँचे विना उन्हे विराम लेना नही था।

पूर्ण निर्द्वन्द्व होकर साहस के साथ उन्होने कसौली की ओर चढ़ना प्रारभ किया। ठाकुर छाया की तरह साथ रहता था। कहीं के लिये भी रवाना होने से पहले वह आगे के मार्ग की जानकारी प्राप्त कर लिया करता था। उसका भग का नशा छूट गया था पर उसका स्थान भक्ति के नशे ने ले लिया था।

चढाई पर सबके कदम बढ चले और एक-एक करके घाटियाँ पार होने लगी। अनुपम प्राकृतिक दृश्यो के अवलोकन से प्राप्त होने वाली प्रसन्नता मार्ग की थकावट को मिटाती जा रही थी। वसत का साम्राज्य स्थापित हो चुका था। रग-विरगे और विभिन्न जाति के खिले हुए पुष्प अपनी भीनी-भीनी सुगन्ध से मन और मस्तिष्क को तरो-ताजा वना रहे थे। शीतल और सुगधित वयार अठखेलियाँ करती हुई इधर से उधर वह रही थी। आँखे उस सौन्दर्यसुपमा का सतत पान करते हुए भी अघाती नही थी। ड्यूटी पर तैनात सैनिको की तरह कतारवन्द खडे हुए वृक्षो के वीच से गुजरते हुए भगवती ने वीहड घाटी पार कर कसौली मे प्रवेश किया। वहाँ एक गुरुद्वारे मे पहुँचकर कुछ समय विश्राम के लिये ठहरी।

पर वजरग ठाकुर वहाँ क्षण भर भी नही रुका। वह मालूम करके आया कि यहाँ पर एक जैन रहते है। जिन्हे सव 'जैन साहव' के नाम से जानते है।

ठाकुर के साथ आर्या सूर्यकुमारी और कनककुमारी जैन साहव का घर ढूढने, तथा हो सके तो कुछ समय ठहरने के लिये स्थान प्राप्त करने के उद्देश्य से निकली। घर मिल गया और जैन साहव ने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक ऊपर की मजिल का एक कमरा आर्याओ के लिये खोल दिया।

सभी अपने थोडे से सामान सहित जैन साहव के घर पर आ गए। पर वहाँ आकर अत्यन्त विस्मय मे पडे, जवकि तीव्र दुर्गन्ध के कारण सवके दिमाग फटने लगे। समझ मे नही आ रहा था कि इसका कारण क्या है? कसौली की चढाई चढते समय सुवासित गध से भरे हुए दिमाग अव नफरत से भर गए।

खिन्न मन से भगवती कमरे मे वैठी थी। सूझ नही रहा था कि क्या करे। ठीक उसी समय खिडकी से उन्होने वहुत सारे मुर्गे-मुर्गियो को आते हुए देखा। सोचा किसी पडौसी के होगे। किन्तु जव वे सवके सव जैन साहव के घर मे ही आ गए तो उनका माथा ठनका।

उन्होने निश्चय किया कि यहा से चल देना चाहिये । उसी समय जैन साहव और उनकी पत्नी ऊपर आए और आदरपूर्वक वोले—

"भगवती ! कृपा करके आहार लाने के लिये आर्याओ को आदेश दीजिये ।"

अर्चनाकुमारी ने आहार की वात पर ध्यान न देते हुए सीधा प्रश्न किया—

"ये मुर्गे, मुर्गियाँ किसके है जैन साहव ?"

"है तो हमारे ही ।"

"आप क्या व्यवसाय करते है ?"

"मैंने मास का ठेका ले रखा है ।" जैन साहव ने तनिक कु ठित होते हुए कहा ।

"पर आप तो जैन है ! जैन धर्म का पहला सिद्धान्त अहिंसा है । आप जैन होकर इन मूक पशुओ की गरदन पर छुरियाँ चलवाते है ?"

"भगवती ! हमारे पूर्वज यही करते आए, अत मैंने भी यही करना आरम्भ कर दिया था ।" मन ही मन दुखी होते हुए उन्होने उत्तर दिया ।

"क्या यहाँ के सभी जैन आमिपभोजी है ?"

"नही, यहाँ तीन घर शाकाहारी है ।

"ठीक, वापिस गुरुद्वारे जा रहे है ।"

"क्यो ? आप क्यो यहाँ से लौट जाना चाहती है भगवती ? आहार का वक्त हो गया है । कृपा करके आहार ग्रहण करिये ।"

"यह नही हो सकता जैन साहव ! जिस घर मे मासाहार होता है, वहाँ का अन्न ग्रहण करने के लिये हमारी आत्मा गवाही नही देती ।"

जैन साहव का चेहरा अत्यत दयनीय हो गया । उन्हे अपने कु-व्यवसाय और कु-खाद्य के लिये घोर पश्चात्ताप और ग्लानि होने लगी । क्षण मात्र मे ही उनका चेहरा विवर्ण हो गया । पत्नी की ओर देखकर वोले—

"जगवन्ती, चलो हाथ जोडो, और इसी समय मासाहार का त्याग करो । मै इस जघन्य व्यवमाय का भी आज से त्याग करता हूँ । उसके वाद वे डवडवाई आँखो से भगवती की ओर मुडकर वोले—

"मुझे माम वेचने का तथा हम दोनो को मास खाने का त्याग करा दीजिये ।"

"ईश्वर आपको सुबुद्धि प्रदान करे।" कहते हुए अर्चनाकुमारी ने दपती की इच्छानुसार त्याग करवा दिया और सूर्यकुमारी को सबोधन करके कहा—

"सूर्य ! चलो, हमे गुरुद्वारे मे चलना है बहुत देर हो गई।"

पर अब तो हमने मास मात्र का त्याग कर दिया है भगवती ! और आज वह रसोईघर मे लाया ही नही गया। अब तो आप आहार ग्रहण कर हमे कृतार्थ करे।"

"नही भाई ! अभी नही, हम आपके घर का भोजन तभी ले सकेंगे जब इस हिसामय कृत्य का एक भी चिन्ह शेप नही रहेगा।"

"पर अब चलो सूर्या ! कठिन यात्रा की थकावट और इतनी देर तक कुछ न ले पाने से कनक का चेहरा कितना कुम्हला गया है ? छोटी है न यह ! चलो, शीघ्रता करो। अर्चनाकुमारी ने पुनः आर्या सूर्यकुमारी को आदेश दिया।

भगवती को शिष्याओ सहित जाने का उपक्रम करते देखकर जैन-दपती धैर्य नही रख सके और बच्चो की तरह रो पडे।

अर्चनाकुमारी उनका रोना देखकर स्तभित रह गई। मृदु स्वर से बोली—

"यह क्या ! जैन साहब ? आप रो क्यो रहे है ? आपको तो प्रसन्नता होनी चाहिये कि मेरे आने से आपको सत्प्रेरणा मिली और आपने महान् त्याग का मार्ग अपनाया।"

"पर आप तो हमे त्याग रही है भगवती ! हमारा दिल टूट जायगा, आपके चले जाने से।" जैन साहब अत्यन्त दीन स्वर से बोले।

भगवती का कोमल हृदय द्रवित हो उठा ओर उनके बढते हुए चरण ठिठक गए। आर्द्र स्वर से बोली - "अच्छी बात है जैन साहब ! हम यही ठहरेंगे। पर आहार तो उन तीन घरो से ही लायेगे जो निरामिप भोजी है। अब तो आप सतुष्ट है न ?"

दपती के आँसू थम गये। हृदय तनिक आश्वस्त हुए। भीगे नेत्रो से गृहस्वामिनी ने भगवती के चरणो का स्पर्श किया। जैन साहब ने विनम्र होकर कहा—

"आपकी दया के लिये कृतज्ञ हूँ भगवती ! अब आप आर्याओ को मेरे

साथ चलने की अनुमति दीजिये। मैं उन्हे वे घर बता दूँ जहाँ से आपको आहार और जल लेना है।"

भगवती की आज्ञा लेकर दोनो आर्याएँ भिक्षा की गवेषणा के लिये चल दी।

अर्चनाकुमारी का विचार कसौली मे भी केवल एक दिन ठहरने का ही था, किन्तु उन्होने महसूस किया कि ऐसे स्थान पर उन्हे कुछ अधिक ठहरना चाहिये। फलस्वरूप वे पाच दिन वहा ठहरी। जैनसाहव ने घर-घर घूमकर जैन व अजैन सभी को भगवती के आने की सूचना दी और प्रतिदिन प्रवचन मे जनसख्या वढने लगी। उनके पाँच दिन के मार्मिक प्रवचनों का वहाँ के व्यक्तियो पर इतना असर हुआ कि आधे मे अधिक गांव शाका-हारी हो गया। उनके पहुँचने से पूर्व जिस कसौली गाँव मे सिर्फ [illegible] जैनियो के थे वहा अव पचास-साठ घर के व्यक्तियो ने जैनत्व अपना [illegible] अनेक ब्राह्मण परिवारो ने भी, जो मास, मदिरा और अडो का [illegible] प्रयोग करते थे, इन सवका त्याग कर दिया।

जैन साहव के घर की तो इन चार-छह दिनो मे कायापलट [illegible] थी। मुर्गे, मुर्गी, अडे या मास वगैरह का कही चिह्न भी न रहा। [illegible] कि उन्होने अपने सम्पूर्ण मकान को ही लिपवा-पुतवाकर पूर्ण[illegible] लिया। पति-पत्नी की प्रसन्नता का इन दिनो पार नही था। [illegible] मानो उनका घर मदिर वन गया है, और भगवती के रूप मे [illegible] ही आकर ठहरे हुए हैं।

इसके अलावा जिस दिन उन्होने अपने हाथो मे [illegible] प्रदान की, अपने को कृत-कृत्य माना। दोनो की आँखो [illegible] जन्म-जन्मान्तर के पापो को अपने साथ बहा ले गए।

४५

पत्नी को गिरवी रखा

"मैं नही जाऊँगी ।"

"जाएगी कैसे नही, जाना पडेगा ।"

"नही, नही, अव मैं नही जाऊँगी ।"

"क्यो, क्या हो गया है अव ?"

"अव मुझमे श्रम करने की शक्ति नही रही । वीमारी के कारण मेरा शरीर वहुत कमजोर हो गया है ।"

"यह सव कुछ नही चलेगा । चल, तैयारी कर ! रवाना होने की ।"

"मेरे ऊपर दया करो ! तुम मेरे पति हो, मालिक हो ।"

"मतवंती सीता जैसे नखरे मत कर, मालिक अव वह है जो तुझे ले जा रहा है ।"

"मेरा वच्चा सालभर का भी नही हुआ, वह मर जाएगा मेरे विना !" नारी कठ आक्रदन कर उठा ।

"मर जाएगा तो मरे, कौन-सी आफत आ जाएगी ?"

"तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ, ऐसा अन्याय मत करो । मै दिन भर मजदूरी करूँगी, वोझा ढोऊँगी, आधा पेट खाकर रह जाऊँगी पर अव मुझे मत

भेजो।" कहते हुए उस असहाय नारी ने पति के पैर पकड लिये। किन्तु अगले क्षण ही पदाघात से दूर जा गिरी और चीखकर रो उठी।

"यह नाटक अब नही चलेगा। निकलती है या नही ?" कहते हुए पति देवता ने पत्नी को घसीट कर दरवाजे की ओर ले जाना शुरू किया।

चीत्कार करती हुई अवला किसी तरह अपने को छुडाकर विना कुछ सोचे-विचारे पिछले दरवाजे से भाग निकली, और अन्य कोई रास्ता न पाकर वदहवास-सी, अपनी झोपडी के पास वाले छोटे से मकान मे घुस गई। आधी के झोके की तरह तेजी से आकर वह एक कमरे के दरवाजे पर खडी हुई मानव आकृति के समीप गिर पडी और उसके पैरो को मजवूती से पकड कर अनुनय भरे स्वर से प्रार्थना करने लगी—

"मुझे वचाओ, मुझे वचाओ, दया करके मुझे वचालो !"

इस आकस्मिक घटना से क्षणभर के लिये भगवती अर्चनाकुमारी दिग्मूढ हो गई। कसौली से रवाना होकर सोलन आदि गाँवो से होती हुई वे कल शाम को ही इस कुमारहट्टी ग्राम मे पहुँची थी। यात्रा की थकावट के कारण रात को सब जल्दी ही निद्राधीन हो गये थे और अभी तक जागे नही थे। किन्तु अर्चनाकुमारी अपनी आदत के अनुसार ब्राह्ममुहूर्त मे ही उठ बैठी और अपने स्वाध्याय, ध्यान, चिंतन-मनन आदि मे दत्त-चित्त हो गई।

किन्तु प्रात काल होते न होते पडौस की झोपडी मे से किसी स्त्री के भय-विह्वल स्वर मे रोने, चीखने और चिल्लाने की आवाजे आने लगी ' साथ ही पुरुप कठ के धमकाने और मारने-पीटने की ध्वनि भी स्पष्ट सुनाई देने लगी।

इस सब गडवड के कारण भगवती का चित्त उचट गया और वे खिन्न तथा परेशान-सी होकर इस झमेले का कारण जानने के लिये उठी। उठकर दरवाजे तक आई ही थी कि एक नारी शरीर उनके पैरो के पास आकर गिर पडा और वचाओ वचाओ, कहते हुए चीत्कार करने लगा।

कुछ क्षणो तक वे विस्मय विमूढ की स्थिति मे वैसे ही खडी रह गई पर वाद मे अत्यत कोमलतापूर्वक अपने पैरो को पकडे पडी हुई उस नारी को उन्होने उठाया और सान्त्वना दी—

"क्या वात है वहन ? उठो, घवराओ मत !"

"मुझे वचा लीजिये महादेवी ! वचाइये मुझे।" भयभीत स्त्री के मुँह से इसके अलावा और कोई शब्द नही निकला।

"बचाने वाला तो कोई और ही है, वह अवश्य बचाएगा। पर वात क्या है ? यह तो बताओ ? डरो मत !"

किन्तु वह स्त्री कुछ कह पाती, उससे पहले ही दो व्यक्ति वहाँ आ पहुँचे। उन्हे देखते ही स्त्री थर-थर कापने लगी और भगवती की ओर कायरतापूर्वक देखती हुई अपनी रक्षा के लिये मूक प्रार्थना करने लगी।

भगवती अर्चनाकुमारी ने क्षण भर उसकी ओर देखा और फिर आगन्तुको से प्रश्न किया—

"कौन हैं आप लोग ? यहा किसलिये आए है ?"

"मेरी स्त्री है यह, भागकर आपके पास आ गई है। इसे ले जाने आया हूँ।" दो व्यक्तियो मे से एक ने अधिकारपूर्वक उतर दिया। दूसरा व्यक्ति कोई पजाबी सरदार था। उसकी ओर इ गित कर भगवती ने फिर पूछा—

"और यह सरदार जी ? ये किसलिये तशरीफ लाए है ?"

"यह भी इसी के लिये आए है।"

"इसी के लिये आए है ? क्या मतलब ?" अर्चनाकुमारी मारे आश्चर्य के अभिभूत होकर बोली—

"ये ले जायेगे इसको।"

"पर क्यो ? तुम पति हो और पत्नी को ले जाने के लिये आए हो, यह वात तो समझ मे आ गई पर इन सरदार जी को क्या काम है इससे ?"

"इन्होने खरीद लिया है इसको !" अपने को पति बताने वाले उस दुर्दर्शन व्यक्ति ने उत्तर दिया।

अर्चनाकुमारी मानो आकाश से गिर पडी। उन्हे विश्वास नही हुआ, फिर पूछा—

"क्या वकते हो ? इन्होने खरीद लिया है, और तुमने बेच दिया है, अपनी स्त्री को ?"

"हमेशा के लिये नही वेचा, गिरवी रख दिया है। जब पैसे हो जाएँगे, छुडाकर ले आऊँगा।"

"वहुत खूव, वडा अच्छा काम किया है तुमने ! और क्यो सरदार जी ! आप क्या करेंगे इसे ले जाकर ?"

"जो इच्छा होगी, करूँगा। गिरवी रखा है तो मेरा पूरा अधिकार है। कुछ भी काम लूँ इससे।"

"हूँ ', कितने रुपयो मे इस स्त्री को बधक रखा है आपने ?"

"पन्द्रह रुपये मे ।" सरदार जी जरा सिटपिटा कर बोले ।

भगवती का दिल दहल गया । गॉव के मूर्ख और गरीब आदमियो की गरीबी का गैरकानूनी लाभ उठाने वाले ऐसे नीच व्यक्तियो के प्रति उनका हृदय नफरत से भर गया । अपनी प्रभावोत्पादक सतेज दृष्टि उस नृशंस मनुष्य के चेहरे पर जमाकर उन्होने पूछा—

"आप कहाँ रहते हैं सरदार जी ?"

"शिमले मे ।"

"कब जाती है आपकी गाडी ?"

"आठ बजे । आधा घटा और है । मुझे जल्दी जाना है ।" सरदार जी जरा प्रसन्न होकर बोले ।

"हाँ, आप जल्दी जाइये ! नही तो गाडी नही मिलेगी आपको !"

"पर मैं इस स्त्री को अपने साथ ले जाऊँगा महाराज जी ! इसके लिये मैंने पैसे दिये है ।" भगवती की दृष्टि मे और उनके शब्दो मे क्या है इसे न समझते हुए सरदार जी जल्दी से बोल पडे ।"

"यह नही होगा सरदार जी ! आपने मानवता का गला घोटकर अत्यत अमानुषीय कार्य किया है । चद पैसो का लालच देकर एक परिवार की शाति नष्ट करने की कोशिश की है । इस कुकृत्य का फल कभी आपको भोगना होगा । किन्तु अभी आपका भला इसी मे है कि आप फौरन यहाँ से चले जाएँ ।"

दृढ़ सयम की अग्नि से तप्त भगवती की दृष्टि ने दो लौह-शलाकाओ के समान सरदार जी की आँखो मे प्रवेश करते हुए उनके हृदय को वेध दिया । उस लम्बे-चौडे पहाड से डील-डौल मे स्थित उसका हृत्पिंड कॉप उठा और जबान तालू से चिपक गई । उस महिमामयी मूर्ति की आँखो से निकलती हुई चिनगारियो को वे सहन नही कर सके, और उनका मस्तक झुक गया । इसी बीच भगवती का आदेशपूर्ण स्वर फिर सुनाई दिया—

"ठाकुर ! जाओ, सरदार जी को कुशलपूर्वक इनकी गाडी मे बिठा आओ ।"

ठाकुर भरा बैठा था । उसका वीर-हृदय एक अबला नारी की इस अपमानपूर्ण स्थिति से उबल रहा था । वार्तालाप के बीच मे बोलने की

आवश्यकता नही थी, अत. वडी देर से वह सब कुछ सुनता हुआ चुपचाप बैठा रहा। अन्यथा उसके हाथ सरदार जी का गला घोट देने के लिये आतुर हो रहे थे। अव ज्योही उसे भगवती का आदेश मिला, उसी क्षण खडा होकर बोला—

"चलिये सरदार जी !"

"लेकिन !" सरदार जी हकलाते हुए कुछ कहने का प्रयत्न करने लगे।

"लेकिन-वेकिन कुछ नही।" ठाकुर गरम हो गया—"सीधी तरह चलो नही तो गोली मार दूँगा। याद रखना, मेरा नाम वजरग है।"

ज्योही ठाकुर सरदार जी को लेकर गया, अर्चनाकुमारी ने अपने को पति कहने वाले उस जघन्य प्राणी को सवाधित किया -

"अब तुम क्या चाहते हो ? मेरी समझ मे नही आता कि तुमने अपनी स्त्री को गिरवी रख देने जैसा घृणित कार्य कैसे किया ? क्या यह मेहनत मजदूरी नही करती ? तुम्हारी सेवा नही करती ? वच्चो का पालन-पोषण नही करती ?"

वह व्यक्ति किकर्तव्यविमूढ और स्पदनहीन मूर्ति के समान खडा था। भगवती के प्रश्नो को सुनकर कुछ कहने के लिये ज्योही उसने सिर उँचा किया, उसकी रोती हुई स्त्री वीच मे ही बोल पडी—

"भगवती ! मै दिन भर मजदूरी करके इसका और इसके बच्चों का पेट भरती हूँ। इसके अलावा जो कुछ वचता है उसे यह शराव और जूए मे उडा देता है। इसने मुझे अब तक एक बार नही, सोलह बार गिरवी रखा है।"

"क्या कहा ? सोलह बार गिरवी रखा है ?" आकाश फट पडता तो भी शायद भगवती को इतना आश्चर्य नही होता ! नारी जाति की ऐसी हीन दशा का खयाल करके उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। कुछ क्षणो तक वे मुँह से कुछ वोल ही नही पाई। पर ज्योही कुछ कहना चाहा, देखा कि उस व्यक्ति ने दौडकर अपनी स्त्री के पैर पकड लिये है। वह कह रहा है —

"मुझे माफ करदे ! मैने जिन्दगी भर तुझे दुख दिया है। भगवान मुझे इसकी सजा देगा। पर अव मै भगवती की साक्षी से कहता हूँ कि ऐसा कुकर्म कभी नही करूंगा। मैंने घोर पाप किये है पर आज मेरी आँखे खुल गई है।

मै आज से कभी शराब नही पीऊँगा, जुआ नही खेलूँगा और क्या कहूँ—जीवन भर तेरी जैसी देवी की पूजा करूँगा। पर अब मुझे माफ कर!"

बेचारी स्त्री पति को पश्चात्ताप के आँसू बहाते देखकर पानी-पानी हो गई। शीघ्रतापूर्वक अपने पैरो को छुडाकर वह स्वय भी आनन्दाश्रु बहाने लगी।

कुछ क्षणो बाद उस पुरुष ने भगवती के समीप आकर कहा—

'आपकी कृपा से आज मैने नया जीवन पाया है भगवती! जनम जनम तक भी मैं आपकी दया का ऋण नही चुका सकूँगा। अब मुझे आज्ञा दीजिये कि अपनी स्त्री को अपने घर ले जाऊँ।"

अर्चनाकुमारी गद्गद् होकर दपती के उस पुर्नमिलन को देख रही थी। उमडते हुए हृदय मे उन्होने अपना हाथ उठाकर दोनो को आशीर्वाद दिया और उनकी कल्याण कामना की।

४६

दुर्गम पथ पर

कुमारहट्टी से रवाना होकर ठीक महावीर जयन्ती के दिन भगवती अर्चनाकुमारी ने शिमला मे प्रवेश किया। उपाश्रय वहाँ की प्रसिद्ध सडक माल-रोड पर ही था। चहल-पहल से भरी हुई साफ-सुथरी सडक। शाम को तो उसकी रौनक मे चारचाँद लग जाया करते थे। अनेको फैशनेबिल जोडे उस पर चहलकदमी करते रहते। जगह-जगह शानदार होटल बने हुए थे। अग्रेजो का जमाना जा चुका था पर अग्रेजियत नही गई थी। होटलो मे वहुत रात गए तक इगलिश धुनो पर जोडे नाचा करते। किराये पर गर्ल फ्रेंड भी वही मिलती थी। पानी के समान शराब के दौर चलते।

आर्यसस्कृति का इस प्रकार दिवाला निकलता देखकर अर्चनाकुमारी का हृदय कचोट उठा। एक तरफ तो अमीरी के नशे मे चूर व्यक्ति होश-हवाश खोकर अपनी वहन-वेटियो की इज्जत पर डाका डालते और दूसरी ओर पैसे के अभाव मे सैकडो व्यक्ति अपनी सती-साध्वी पत्नियो अथवा बहन-वेटियो को गिरवी रखने पर मजबूर होते।

भारत के सुप्रसिद्ध शहर शिमला मे भी, जहाँ कि प्राकृतिक सुषमा विखरी पडी थी, अर्चनाकुमारी का मन अधिक नही लगा। शीघ्र ही

उन्होने वहा से विलासपुर के लिये प्रस्थान कर दिया। विलासपुर शिमला से करीव छप्पन मील था। सारा रास्ता पहाडी होने के कारण पत्थरो पर चलते-चलते सवके पैरो के तलवे घिस गए और उनसे खून टपकने लगा। रास्ते मे सिर्फ दो गाँव आए पर पूरा आहार वहाँ भी नही मिला। जो कुछ मिला थोडा-थोडा उसी को उदरस्थ कर सव उसी उत्साह और खुशी से रहे। आहार का अभाव मार्ग का अनुपम प्राकृतिक सौन्दर्य पूरा करता रहा। यात्रा मे उस अभिनव सौन्दर्य के पान से सवका मन भरा रहा, थकान महसूस नही हुई।

यत्र-तत्र ग्रामीण व्यक्ति मिलते थे। उनसे होने वाली वात-चीत से मालूम होता था कि यद्यपि उधर के लोग धर्म-कर्म से कोसो दूर थे, पूजा-पाठ, सध्या, वदन कुछ नही जानते थे किन्तु उनमे ईमानदारी और प्रामाणिकता सोलह आना थी। प्राय सभी मनुष्य दरिद्रता मे ही जीवन व्यतीत करते थे, पर अन्याय का एक पैसा लेना भी कवूल नही करते थे। कभी वहाँ चोरी नही होती थी, डाके नही पड़ते थे। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण भी अर्चनाकुमारी को मिला।

पहाडो मे से रास्ता होने के कारण एक वार उन्हे लगा कि वे रास्ता भूल रही है। अत सामने की ओर से आने वाले एक व्यक्ति से उन्होने विलासपुर की ओर जाने वाले मार्ग के विपय मे पूछा।

वह व्यक्ति अर्चनाकुमारी व अन्य आर्याओ को देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। वोला—

"चलिये मैं स्वय ही आपको एक दो मील चलकर पहुँचा आता हूँ। यह मार्ग वास्तव मे वडा दुरूह है। आप रास्ता भूल गई तो वडी तकलीफ होगी।" कहते हुए उसने अपने सिर पर रखी हुई गठरी और हाथ मे लिये हुए थले को वही सडक पर एक ओर रख दिया और भगवती के साथ चलने को तत्पर हो गया।

अर्चनाकुमारी यह देखकर विस्मित हुई वोली—

"भाई ! तुम हमारे साथ दो मील चलोगे और वापिस लौटोगे, तव तक तो काफी समय व्यतीत हो जाएगा।"

"जी हाँ, समय तो कुछ लगेगा ही पर इससे क्या ?" राहगीर अत्यन्त सरलता से वोला।

"मेरा मतलब यह है, कि तुम्हारा यह सामान क्या इसी तरह सड़क पर पडा रहेगा ? कोई इसे उठाकर ले जाएगा नही ?"

"इस वात की चिन्ता मत कीजिये महादेवी ! इसे कोई नही छुएगा, भले तीन दिन तक यह यही पडा रहे। पर अब आप चलिये अन्यथा आपको अगले गाँव तक पहुँचने से पहले रात हो जाएगी।"

"ओह, कितने अच्छे है यहाँ के लोग।" कहती हुई अर्चनाकुमारी चल पडी। उनका हृदय अत्यन्त सन्तोप से भर गया—यह सोचकर कि बडे-बडे तूफान आने पर भी अभी तक भारत से प्रामाणिकता का जनाजा नही निकला है। वे उस सरल ग्रामीण से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछती हुई वहाँ के लोगो के जीवन के विपय मे जानकारी कर रही थी और मार्गदर्शक व्यक्ति अपने सडक पर पडे हुए सामान की किंचित् मात्र भी चिन्ता न करते हुए निश्चिततता पूर्वक भगवती के प्रश्नो का उत्तर देता जा रहा था।

दो मील चल चुकने पर भी उसने लौटने की इच्छा प्रगट नही की। अर्चनाकुमारी के वार-वार मना करने पर भी करीव चार मील तक वह साथ साथ चला और अन्त मे अनमने भाव से वापिस लौटा।

पथ-प्रदर्शक मिल जाने के कारण सूर्य छिपने से पूर्व ही वह विलासपुर पहुँच गई। वहाँ पाँच-छ. दिन ठहरी। भगवती का प्रवचन प्रतिदिन रात मे होता। अत्यन्त आतुरता पूर्वक वहाँ के स्त्री-पुरुप उसे सुनते और सराहते। सातवे दिन वहाँ से भाखडा के लिये प्रस्थान कर दिया गया। यद्यपि विलास-पुर से भाखडा का एक सीधा और छोटा रास्ता भी था, किन्तु उस रास्ते मे सतलज नदी आती थी और उसे नाव से पार करना पडता था। अत भगवती ने कीर्तिपुर होकर जाने का निश्चय किया। इस रास्ते से भाखडा करीब सौ मील है, पर चलना तो उसी राह था। अत. विना विलम्ब किये यात्रा प्रारभ कर दी गई।

मार्ग वडा भयकर और निर्जन था। आठ दस मील चलते चलने पर भी यह समझ मे नही आया कि वे लोग किस रास्ते पर चल रहे है और वह रास्ता सही हे या नही।

आकाश को चूमते हुए ऊँचे पहाडो और उन ऊगे वृक्षो के अतिरिक्त वहाँ कुछ भी नजर नही आता था। पहाडो के किनारे-किनारे एकदम सँकरी पगडडी थी, उस पर होकर चलना वडी टेढी खीर थी। ऊपर की ओर आकाश को छूती हुई पहाडो की चोटियाँ और नीचे उफनती हुई सतलज

नदी। लगता था जैसे साक्षात् मृत्यु ही मुँह खोले प्रतिपल प्रतीक्षा कर रही है कि किस क्षण कोई प्राणी आए और वह उसे उदरस्थ कर ले। चलते समय किंचित् मात्र भी असावधानी हुई नही कि मानव शरीर सैकडो फीट नीचे लुढक कर सतलज की आशुवेग जलराशि मे विलीन हुआ नही। फिर पृथ्वी पर उसका चिन्ह मात्र भी कभी दिखाई न देता। ऊपर की ओर देखा नही जाता था और नीचे देखकर दिल दहल जाता था। आँखे चकराने लगती।

ठाकुर छाया की तरह साथ था। उसका जीवन ऐसे ही नदी नालो और पहाडो मे वीता था। उसने भगवती को सलाह दी कि सव लोग वैठ जाएँ और धीरे-धीरे सरकते हुए रास्ता पार करे।

अर्चनाकुमारी ने भी अन्य कोई उपाय न देखकर उस घोर भयानक रास्ते को रेगकर पार करने का निश्चय किया। अपनी शिष्याओ को उन्होने अपने से आगे किया और धीरे-धीरे सरकते हुए आगे वढने का आदेश दिया। ठाकुर ठकुरानी मवसे पीछे थे।

मन की दृढता और लगन के कारण वह मीलो लम्वा और भयावना रास्ता भी पार हो गया। प्रसन्नता से उछलते हुए हृदयो को लेकर सवने शिमला-पहाडपुर नामक छोटे से गाँव मे प्रवेश किया और शान्ति की सास ली।

पहाडो के हृदय मे स्थित उस गाँव के निवासियो ने जीवन मे प्रथम वार ही आर्याओ को देखा था। अतएव मारे आश्चर्य और खुशी के वे कोलाहल कर उठे। जब उन्होने जाना कि ये सव उस भयानक रास्ते को पार करके आई है जिस पर इने गिने जगलियो के अलावा कोई साधारण यात्री तो चल ही नही सकता, तव तो उन की आँखे कपाल पर चढ गई। वे सव आँखे फाड-फाडकर उन्हे मानवी के रूप मे किन्ही देवियो का अवतार समझकर देखने लगे। उन्हे विश्वास ही नही होता था कि कदम-कदम पर जहाँ मृत्यु का भय है, ऐसी मौत की घाटी को वे कैसे पार कर आई है। असीम श्रद्धा के साथ स्त्री-पुरुष उन्हे वार-वार प्रणाम करने लगे।

समीप ही एक प्राइमरी स्कूल था। वहाँ के हैडमास्टर ने भगवती अर्चनाकुमारी से अपने स्कूल मे ठहरने की प्रार्थना की। भगवती ने इसे स्वीकार किया और कठिन यात्रा से क्लान्त होने के कारण दो दिन वहाँ ठहरकर विश्राम लेने का निश्चय किया।

स्कूल के एक बडे कमरे मे अर्चनाकुमारी अपनी शिष्याओ सहित ठहर गई शेप कमरो मे उस दिन गॉव वालो मे से किसी की वरात ठहरी हुई थी। आर्या सूर्यकुमारी तथा कनककुमारी गाँव मे जाकर निर्दोप आहार लाई पर तव तक दोपहर हो गई थी अत उस दिन सवने एक वार ही आहार करने का निश्चय किया।

शाम होते-होते विवाह की धूम-धाम वढ़ गई। ढोल, ढपली और अन्य कई तरह के अजीव-अजीव से वाद्य वजने लगे। वरात लडकी वाले के घर की ओर जाने को तैयार हो गई। दूल्हा सिर्फ वारह वर्ष का था। देखकर अर्चनाकुमारी को आश्चर्य नही हुआ क्योकि राजस्थान मे भी वाल-विवाह होते थे। किन्तु जव वरात वधू को विदा कराके लौटी तव तो उनके आश्चर्य का पारावार न रहा। वारह वर्ष के लडके की वधू चालीस वर्प की अधेड औरत थी। उन्होने जीवन मे कभी ऐसा विवाह होते नही देखा था।

स्कूल के हैडमास्टर अर्जुनलाल से उन्होने इस विचित्र विवाह के विषय मे पूछा। मास्टर साहव ने वताया कि यहाँ अनमेल विवाह होना कोई आश्चर्य को वात नही है, अधिकतर विवाह यहाँ ऐसे ही होते है। पचास वर्प का वूढा अपनी पोती सी लडकी से विवाह कर लेता है और उसी प्रकार दस वर्प के वालक का अपनी भाभी या चाची से भी विवाह कर दिया जा सकता है।

अर्चनाकुमारी सुनकर हैरान रह गई। उन्होने कौतूहल वश नई व्याही वधू को वुलाया। वधू सहज ही आ खडी हुई। चालीस वर्ष की वहू के लिये लज्जा-शर्म की तो कोई वात ही नही थी। भगवती ने उससे पूछा—

"वहन! इतने छोटे से वालक से विवाह करने पर तुम्हे क्या लाभ होगा ?"

"वधू चटपट वोल उठी—"लाभ क्या लेना है माताजी, घर का घर मे ही व्याह हो गया वस! मै उसकी चाची लगती हूँ। उसका चाचा दो महीना! पहले मर गया था, सो मैंने इसके साथ विवाह कर लिया।"

"पर यह तुम्हे कमाकर कैसे खिलाएगा ? तुम्हारी सार-सभाल कैसे करेगा ?"

"इसे कमाकर क्या करना है ?" वधू साश्चर्य वोली—"मै ही तो कमा-कर इसका पेट भरूँगी। हमारे यहाँ आदमी नही कमाते। वे सिर्फ शराव पीते है, जुआ खेलते है, नाचते और गाते है। कमाई सिर्फ औरते करती हैं।

यहाँ औरते ही बाजार मे दुकान लगाती है या मजदूरी करती है । हम तीन-तीन मन वजन उठाकर पहाडो पर चढ जाती है । आदमियो को कोई तकलीफ नही होने देती ।

"वाह, यह तो बडी अच्छी बात है ।" कहती हुई अर्चनाकुमारी हँस पड़ी और हँसते-हँसते ही फिर पूछ बैठी—

"तो तुम इस व्याह से खुश हो ?"

"हाँ, खुश नही होती तो करनी क्यो ? मै इसलिये बहुत खुश हूँ कि मेरा यह पति छोटा है । कम से कम मुझे मारेगा तो नही । इसका चाचा तो शराब पीकर मारते-मारते मेरी हड्डियाँ तोड देता था । कभी-कभी मुझे गिरवी रख देता था और हमेशा बेच देने की धमकी देता रहता था ।

भगवती उस स्त्री की खुशी के कारणो को जानकर स्तब्ध रह गई । उन अशिक्षित, तथा सस्कारहीन ग्रामीण स्त्रियो की जिन्दगी के विषय मे यह सब जानकर उनका हृदय करुणा से भर गया । सोचने लगी, कितना अन्तर है शहरी और ग्रामीण जीवन मे । कैसी दयनीय स्थिति है इनकी । काश ! इन्हे अपने महत्व को समझने का अवसर मिलता ।

सहसा उनकी विचारधारा भग हुई और उस वधू के शब्द उनके कानो मे पडे—

"माताजी ! अब मैं जाऊँ ?"

"जाओगी ? अच्छा, प्रसन्न रहना । ईश्वर तुम्हे सुखी रखे ।"

"आपके आशीर्वाद से ऐसा ही हो । मेरा सुहाग अमर रहे" कहती हुई उस नव वधू ने भगवती के पैरो पर सिर रखकर प्रणाम किया और हँसती हुई चली गई ।

४७

आचार्य सम्राट के चरणों में

"विनोद मुनि !"

"आज्ञा कीजिये आचार्य !"

सम्पूर्ण श्रमणसघ के सिरमौर और आगम-ज्ञानवारिधि महापूज्य आचार्य श्री आत्मानद जी म० की पुकार सुनते ही, उसी क्षण उनके शिष्य आर्य विनोद मुनि करवद्ध होकर आज्ञा की प्रतीक्षा मे आ खडे हुए।

"मुनि प्रवोधकुमार और हेमन्तमुनि क्या किसी आवश्यक कार्य मे सलग्न है आयुष्मन् "

"पठन-पाठन मे व्यस्त है गुरुवर्य ! आपकी सेवा मे उपस्थित होने के लिये निवेदन करू !"

"हाँ, कहना मै स्मरण कर रहा हूँ।"

आज्ञा पाकर मुनि विनोदकुमार द्रुतगति से गए और अपने बडे गुरु वधुओ के साथ लौट आए।

"गुरुदेव की आकस्मिक वुलाहट के कारण सभी के हृदय मे कारण जानने की परम उत्कठा जागृत हुई। वडे शिष्य हेमन्त मुनि ने ही आचार्य को सवोधन किया—

"हम उपस्थित है गुरुदेव ! आज्ञा देकर अनुगृहीत कीजिये ।"

अत्यधिक वयोवृद्धता तथा शारीरिक शक्ति की अत्यन्त क्षीणता, साथ ही नेत्रो के ज्योतिविहीन होने के कारण पूज्यपाद आचार्य शिष्यो का आना जाना नही देख सके थे । किन्तु शिष्य का सबोधन सुनकर उन्होने आतरिक हर्षपूर्वक कहा—

"आर्य, ज्ञात हुआ है कि आज सती शिरोमणि और परमविदुषी साध्वी अर्चनाकुमारी अपनी शिष्याओ सहित हमारे यहाँ लुधियाने मे प्रवेश कर रही है । तुम उन्हे आदरपूर्वक लिवा लाना । देखो ! हमारे यहाँ उन्हे किसी प्रकार का कष्ट न होने पाए । आहा—राजस्थान से यहाँ तक आने मे उन्हे कितना कष्ट हुआ होगा ? कितनी परेशानियाँ उठानी पडी होगी ।"

अत्यन्त जर्जर तन मे सूर्य के सदृश तेजस्वी और विराट् आत्मा के इस ममतामय पहलू को देखकर उनका शिष्य वृन्द गद्गद् हो उठा । मन-ही-मन उनके मस्तक अपने महामना आचार्य के चरणो पर नत हो गए ।

अत्यन्त प्रसन्न होकर आर्य प्रवोध मुनि ने उत्तर दिया—

"आप चिन्ता न करे गुरुदेव ! आपकी आज्ञानुसार हम स्वय महासतीजी की अभ्यर्थना करने जाएँगे । उन्हे किसी प्रकार की असुविधा न होने पाएगी । उनका पदार्पण लुधियाने के लिये परम सौभाग्य की वात है ।"

"चिरजीव हो आर्य ! मुझे तुमसे ऐसी ही आशा थी ।" कहते हुए आचार्य सम्राट् ने परम सतुष्टि का अनुभव किया ।

आर्या अर्चनाकुमारी भारत के विशालतम भाखडा वाँध को देखकर कीरतपुर तथा रोपड़ होती हुई लुधियाना पहुँच रही थी । जिन आचार्य सम्राट की छत्र-छाया मे सम्पूर्ण श्रमण सघ पनप रहा था, उनके प्रथम वार दर्शन करने की उत्कट आकाक्षा उनके हृदय मे हिलोरे ले रही थी । लगता था कि आचार्य के दर्शन करने की उत्कट अभिलाषा ने अर्चनाकुमारी के उस सुदूर प्रवास की थकावट को विलुप्त कर दिया था । आज का दिन उन्हे अपने जीवन का सवसे अधिक शुभ दिन मालूम हो रहा था ।

असीम उल्लास भरे हृदय से ज्योही उन्होने नगर मे प्रवेश किया, देखकर चकित हुई कि आचार्य श्री के तेजस्वी शिष्य उनकी अभ्यर्थना के लिये स्वय ही आ रहे है ।

वन्दना-नमस्कार के उपरान्त भगवती ने अत्यन्त सकुचित होकर कहा—

"आपने क्यो कष्ट किया भन्ते ! हम तो स्वय ही आप सबके दर्शनार्थ पहुँच रही थी ।"

उत्तर प्रवोध मुनि ने दिया—"इसमे कष्ट की क्या वात है महादेवी ! आप इतना लम्वा प्रवास करके आ रही है । हमारा क्या इतना भी कर्तव्य नही था ? इसके अलावा आचार्य प्रवर का आदेश था कि हम आपको ससम्मान लिवा लाएँ और किसी प्रकार का कष्ट न होने दे ।"

"ओह, इतना अनुग्रह ! आचार्य चरण की उदारता उनके व्यक्तित्व और पद के अनुरूप ही है ।"कहती हुई भगवती ने परम श्रद्धापूर्वक परोक्ष मे ही आचार्य को हाथ जोड़कर प्रणाम किया । ठीक उसी समय विद्वद्वर्य मुनि हेमन्तकुमार ने कहा—

"अव विलम्व न करे भगवती ! दोपहर हो चुकी है । आप उपाश्रय मे पधार कर आहारादि ग्रहण करे और तत्पश्चात् गुरुदेव के दर्शन ।"

"पर हम तो उनके दर्शन करने के पश्चात् ही जलग्रहण करेगी आर्य ! आप कृपया मार्ग दर्शन करे ।" अर्चनाकुमारी के दृढ कठ स्वर का मुनि एक वार भी विरोध नही कर सके और मार्ग पर आगे वढ गए ।

वाह्य ज्योति के विना ही आन्तरिक ज्योति से जगमगाते हुए आचार्य को जव भगवती के आगमन का समाचार मिला, वे अत्यन्त व्यस्त हो उठे । आर्याओ ने असीम भक्ति पूर्वक आचार्य को वन्दन किया और पूछा—

"भगवन् ! सुख-शान्ति का अनुभव कर रहे है न ?"

"ओह, आर्या अर्चनाकुमारी ! तुम आ गई ? कुशल क्षेम है ? वृद्ध आचार्य ने हर्पातिरेक से होते हुए कण्ठावरोध सहित पूछा—

"आनन्द है गुरुदेव !"

"मार्ग मे वहुत कष्ट उठाए होगे ? कैसे इतना लम्वा प्रवास किया तुम सवने ?"

"कष्ट कुछ हो सकते है भगवन् ! किन्तु उन सवका कितना उत्कृष्ट और मधुर फल मिला है कि आपके दर्शन हो गए ।"

"काश, आज मै भी देख सकता कि मरुधर देश ने कैसे नारी-रत्न को पैदा किया है । पर·· न सही ऐसा, फिर भी मेरा आशीर्वाद है कि तुम

साध्वी-शिरोमणि होओ !" कहते हुए आचार्य का मुखमण्डल विकसित हो उठा ।

"केवल आपका वरद अनुग्रह चाहिये गुरुदेव ! मेरे लिये वही पाना सबसे बडा पाना है । यश-लाभ की आकाक्षा नही है ।"

"फिर भी वह तुम्हे अवश्य मिलेगा महादेवी ! मेरा मन यही कहता है । पर इतना समय हो गया, तुम लोगो ने अभी आहार-जल कुछ भी ग्रहण नही किया है । अब जाओ ! साधु को अपने लिये न सही, जगत् के कल्याण के लिये तो शरीर का ध्यान रखना आवश्यक है । जाओ अब ।"

अर्चनाकुमारी आचार्य श्री के प्रशसापूर्ण उद्‌गारो से अत्यन्त सकुचित हो रही थी । यह आदेश पाकर मानो मुक्त हुई ।

"जो आज्ञा" कहकर उन्हे पुन वन्दना की तथा अपने लिये नियत स्थान की ओर अग्रसर हुई ।

अगले दिन प्रात काल ही जब वे आचार्य के दर्शनार्थ उपस्थित हुई, आचार्य ने समीप ही बैठे हुए प्रबोध मुनि को आदेश दिया—

"आयुष्मन् ! तुम घोषणा करवा दो कि आज से आर्या अर्चनाकुमारी का प्रवचन प्रारम्भ होगा जिससे अधिक से अधिक सख्या मे जनता उसका लाभ उठा सके ।

"यह आप क्या फरमा रहे है भगवन् ! मैं तो अकिंचन हूँ, मुनिजनो के सम्मुख भला क्या बोल सकूँगी ?"

मन्द-स्मित के साथ आचार्य धीरे-धीरे बोले—"आर्या अर्चनाकुमारी ! तुम अवश्य ही कल यहाँ आई हो, पर तुम्हारी कीर्ति बहुत पहले ही मेरे पास आ चुकी है । इन्कार नही कर सकोगी, प्रवचन तुम्हे करना ही होगा । मैं वृद्ध हो चुका हूँ, कौन जाने फिर कभी तुम्हारी वाणी सुनने का अवसर मिले या नही । हाथ मे आए हुए समय को मैं खोना नही चाहता ।"

अर्चनाकुमारी प्रत्युत्तर नही दे सकी । अपने देश से इतनी दूरी पर भी, श्रमण समाज के गौरव आचार्य का ऐसा अकृत्रिम स्नेह पाकर उन्हे लगा मानो पिता जगन्नारायण ही आचार्य के चोले मे आज उपस्थित हुए है ।

प्रवचन प्रारम्भ हुआ, बाहर अधीर जनता थी और अन्दर की ओर के एक वातायन से महामना आचार्य उत्कठित हृदय से आसीन थे ।

प्रवचन के प्रारम्भ में कुछ क्षणों तक तो अर्चनाकुमारी का संकोच बना रहा। किन्तु उसके बाद वे भूल गईं कि जनता के अतिरिक्त अन्दर आचार्य सम्राट् और समीप ही अनेक मुनिजन भी उनके प्रवचन को अत्यन्त मनोयोग से श्रवण कर रहे हैं। 'साधक और साधना' पर उनका ओजस्वी और मर्म-स्पर्शी प्रवचन धाराप्रवाह चलता रहा। करीब एक घण्टे पश्चात उन्होंने विराम किया। जनता मन्त्रमुग्ध की तरह कुछ क्षण निस्तब्ध बैठी रही, पर अन्त में हर्ष-ध्वनि करती हुई तितर-बितर हुई।

ज्योंही अर्चनाकुमारी मंच पर से उतर कर आचार्य के समीप पहुँची, उन्होंने गद्गद् कण्ठ से कहा -

"तुम तो सचमुच ही राजस्थान का एक अमूल्य रत्न हो बेटी! धन्य है वह प्रदेश, जिसने तुम्हें पैदा किया। मुझे श्रमण-संघ पर गर्व है जिसमें तुम जैसी विदुषी साध्वियाँ हैं। इस उम्र में ही ऐसी मँजी हुई भाषा में इस प्रकार धाराप्रवाह बोलना और गहन विषय को भी इतने सरल ढंग से समझाना तुम्हारी अद्भुत प्रतिभा का लक्षण है। अपनी विद्वत्ता के अनमोल रत्नों के बल पर ही तो तुम इतना अच्छा प्रवचन कर सकी हो, अन्यथा यह सम्भव नहीं था।"

आचार्य के 'बेटी' संबोधन से भाव-विभोर हुई अर्चनाकुमारी ने अत्यन्त शर्मिन्दा होकर उन्हें टोका -

"बस करें गुरुदेव! आपके द्वारा प्रशंसा पाने योग्य मैं कहाँ हूँ, अभी तो मुझे आपके आगम-ज्ञान-रत्नाकर में से कुछ रत्न प्राप्त करने हैं। अगर दे सकें तो समझूँगी कि मैंने कुछ पाया है। कृपा करेंगे आप?"

"अवश्य बेटी! अवश्य, अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करूँगा, जो भी मुझसे बन सकेगा। तुम सी छात्रा पाकर मुझे अपार प्रसन्नता होगी।"

साध्वी अत्यन्त प्रसन्न हुईं। अगले दिन से ही उन्होंने आचार्य का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। वे नियमित रूप से जैन दर्शन और आगमादि पर आचार्य द्वारा की गई व्याख्या तथा गम्भीर विवेचना हृदयंगम करने लगीं।

वे दंग रह जाती थीं यह देखकर कि जर्जर और कृश-काय आचार्य के हृदय में एक ओर जहाँ असीम सरलता और मृदुता है, दूसरी ओर अद्भुत ज्ञान का कोष छिपा हुआ है। एक-एक आगम के भावों का स्पष्टीकरण करते हुए वे अन्य अनेक आगमों के उद्धरण दिया करते थे। फलस्वरूप एक साध्य

का अध्ययन करते हुए भी सहज ही अन्य अनेक वाक्यो का अध्ययन हो जाता था। नेत्रो मे ज्योति न होने पर भी लगता था कि उनकी दिव्य दृष्टि के सामने समग्र शास्त्र खुले हुए है। हृदय मे तनिक भी असमजस होने पर वे सिर्फ यही कहते—

"वेटी, अमुक शास्त्र मे अमुक पृष्ठ देखो !" और निश्चय ही पुस्तक के उसी पृष्ठ पर उल्लिखित विषय होता ही। उसमे कभी अन्तर न पडता, लगता था कि सरस्वती उनके जिह्वाग्र पर ही आसीन है। ज्ञान-साधना के वीच मे न तो ज्ञान-दाता को इस वात का पता चला और न ज्ञानार्थी को ही कि समय अनवरत वीतता चला जा रहा है। वर्षाकाल की समाप्ति ने अन्त मे इस ओर ध्यान वँटाया। अर्चनाकुमारी की मन्जिल अभी दूर थी, अत. उन्होने आचार्य से पुन प्रवास की आज्ञा मागी। सकोचपूर्वक कहा—

"गुरुदेव ! अत्यन्त अशक्त होते हुए भी आपने इन पाँच महीनो मे मुझे इतना कुछ दिया हे कि उसे मैं सम्हाल सकी तो वह जन्म-जन्म तक मेरा मार्ग दर्शन करेगा। आपकी इस महती कृपा का ऋण चुकाने का मुझ मे सामर्थ्य नही है। किन्तु अव आपकी छत्रछाया से दूर जाने का समय आ गया है। आज्ञा प्रदान कीजिये।"

वृद्ध आचार्य सुयोग्य शिष्या पाकर पूर्ण मनोयोग से अपनी ज्ञान-धारा उसके अन्तर मे उडेल रहे थे। अकस्मात् व्याघात पाकर उनका चित्त खिन्न हुआ।

"तो तुम अव मुझ वूढे को छोडकर चली जाना चाहती हो वेटी !"

"चाहती नही भगवन् ! किन्तु जाना तो होगा ही। चातुर्मास के पश्चात् साधुओ के लिये यही तो विधान है।"

"क्या पुन. राजस्थान की ओर प्रयाण करोगी ?"

"नही, आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो जम्मू होकर काश्मीर की ओर जाने का विचार रखती हूँ।"

"पर उस दुरूह प्रदेश मे पद-यात्रा करने का तो आज तक किसी साध्वी ने प्रयत्न नही किया। तुम कैसे जाओगी ?" मारे उत्कण्ठा के आचार्य कह उठे।

"आपका आशीर्वाद साथ रहने पर भी कोई कार्य असम्भव हो सकता है, मेरा मन इसे नही मानता भगवन् !"

प्रवचन के प्रारम्भ मे कुछ क्षणो तक तो अर्चनाकुमारी का सकोच बना रहा। किन्तु उसके बाद वे भूल गई कि जनता के अतिरिक्त अन्दर आचार्य सम्राट् और समीप ही अनेक मुनिजन भी उनके प्रवचन को अत्यन्त मनोयोग से श्रवण कर रहे है। 'साधक और साधना' पर उनका ओजस्वी और मर्म-स्पर्शी प्रवचन धाराप्रवाह चलता रहा। करीब एक घण्टे पश्चात् उन्होने विराम लिया। जनता मन्त्रमुग्ध की तरह कुछ क्षण निस्तब्ध बैठी रही, पर अन्त मे हर्ष-ध्वनि करती हुई तितर-बितर हुई।

ज्योही अर्चनाकुमारी मच पर से उतर कर आचार्य के समीप पहुँची, उन्होने गद्‌गद् कण्ठ से कहा—

"तुम तो सचमुच ही राजस्थान का एक अमूल्य रत्न हो बेटी! धन्य है वह प्रदेश, जिसने तुम्हे पैदा किया। मुझे श्रमण-सघ पर गर्व है जिसमे तुम जैसी विदुषी साध्वियाँ है। इस उम्र मे ही ऐसी मँजी हुई भाषा मे इस प्रकार धाराप्रवाह बोलना और गहन विषय को भी इतने सरल ढग से समझाना तुम्हारी अद्‌भुत प्रतिभा का लक्षण है। अपनी विद्वत्ता के अनमोल खजाने के बल पर ही तो तुम इतना लम्बा प्रवास कर सकी हो, अन्यथा यह सम्भव नही था।"

आचार्य के 'बेटी' सबोधन से भाव-विभोर हुई अर्चनाकुमारी ने अत्यन्त शर्मिन्दा होकर उन्हे टोका—

"बस करे गुरुदेव! आपके द्वारा प्रशसा पाने योग्य मै कहाँ हूँ, अभी तो मुझे आपके आगम-ज्ञान-रत्नाकर मे से कुछ रत्न प्राप्त करने है। अगर ले सकी तो समझूँगी कि मैने कुछ पाया है। कृपा करेगे आप?"

"अवश्य बेटी! अवश्य, अपनी शक्ति के अनुसार प्रयत्न करूँगा, जो भी मुझसे बन सकेगा। तुम सी छात्रा पाकर मुझे अपार प्रसन्नता होगी।"

भगवती अत्यन्त प्रसन्न हुई। अगले दिन मे ही उन्होने आचार्य का छात्रत्व ग्रहण कर लिया। वे नियमित रूप से जैन दर्शन और आगमादि पर आचार्य द्वारा की गई व्याख्या तथा गम्भीर विवेचना हृदयगम करने लगी।

वे दग रह जाती थी यह देखकर कि जर्जर और कृश-काय आचार्य के हृदय मे एक ओर जहाँ असीम सरलता और मृदुता है, दूसरी ओर अद्‌भुत ज्ञान का कोष छिपा हुआ है। एक-एक आगम के भावो का स्पष्टीकरण करते हुए वे अन्य अनेक आगमो के उद्धरण दिया करते थे। फलस्वरूप एक शास्त्र

का अध्ययन करते हुए भी सहज ही अन्य अनेक वाक्यो का अध्ययन हो जाता था। नेत्रो मे ज्योति न होने पर भी लगता था कि उनकी दिव्य दृष्टि के सामने समग्र शास्त्र खुले हुए है। हृदय मे तनिक भी असमजस होने पर वे सिर्फ यही कहते—

"वेटी, अमुक शास्त्र मे अमुक पृष्ठ देखो!" और निश्चय ही पुस्तक के उसी पृष्ठ पर उल्लिखित विपय होता ही। उसमे कभी अन्तर न पडता, लगता था कि सरस्वती उनके जिह्वाग्र पर ही आसीन है। ज्ञान-साधना के वीच मे न तो ज्ञान-दाता को इस वात का पता चला और न ज्ञानार्थी को ही कि समय अनवरत वीतता चला जा रहा है। वर्षाकाल की समाप्ति ने अन्त मे इस ओर ध्यान वँटाया। अर्चनाकुमारी की मन्जिल अभी दूर थी, अत. उन्होने आचार्य से पुन प्रवास की आज्ञा मागी। सकोचपूर्वक कहा—

"गुरुदेव! अत्यन्त अशक्त होते हुए भी आपने इन पाँच महीनो मे मुझे इतना कुछ दिया है कि उसे मैं सम्हाल सकी तो वह जन्म-जन्म तक मेरा मार्ग दर्शन करेगा। आपकी इस महती कृपा का ऋण चुकाने का मुझ मे सामर्थ्य नही है। किन्तु अव आपकी छत्रछाया से दूर जाने का समय आ गया है। आज्ञा प्रदान कीजिये।"

वृद्ध आचार्य सुयोग्य शिष्या पाकर पूर्ण मनोयोग से अपनी ज्ञान-धारा उसके अन्तर मे उडेल रहे थे। अकस्मात् व्याघात पाकर उनका चित्त खिन्न हुआ।

"तो तुम अव मुझ वूढे को छोडकर चली जाना चाहती हो वेटी!"

"चाहती नही भगवन्! किन्तु जाना तो होगा ही। चातुर्मास के पश्चात् साधुओ के लिये यही तो विधान है।"

"क्या पुन॰ राजस्थान की ओर प्रयाण करोगी?"

"नही, आपकी आज्ञा प्राप्त हो तो जम्मू होकर काश्मीर की ओर जाने का विचार रखती हूँ।"

"पर उस दुरूह प्रदेश मे पद-यात्रा करने का तो आज तक किसी साध्वी ने प्रयत्न नही किया। तुम कैसे जाओगी?" मारे उत्कण्ठा के आचार्य कह उठे।

"आपका आशीर्वाद साथ रहने पर भी कोई कार्य असम्भव हो सकता है, मेरा मन इसे नही मानता भगवन्!"

"किन्तु कदम-कदम पर जहाँ मृत्यु मुँह वाये खडी हो, ऐसे भयानक स्थानो पर जाने की मैं आज्ञा दे दूँगा, ऐसा तुम मानती हो ?" अपार ममता के कारण उद्विग्न होकर आचार्य ने पूछा।

"जब तक आप मुझे स्नेह के दृष्टिकोण से देखेंगे तब तक तो नही देंगे, किन्तु साधु के कर्तव्य को ध्यान मे रखकर जब मेरी ओर दृष्टिपात करेंगे तो अवश्य ही आज्ञा देंगे ऐसा मेरा मन कहता है।" अर्चनाकुमारी ने मुस्करा कर कहा।

"तुमसे जीत पाना कठिन है बेटी ! पर मुझे यह समझाओ कि तुम उन दुष्कर प्रदेशो मे आखिर क्यो जाना चाहती हो ?"

"मेरी चिर पोषित अभिलाषा है गुरुदेव ! कि मै ऐसे प्रदेशो मे जाऊँ जहाँ के व्यक्ति आर्यत्व को भूल गए है। आर्यकुल मे और आर्यक्षेत्र मे जन्म लेकर भी अपने आचरणो से जो अनार्य बने हुए है, मैं उनके बीच जाकर उन्हे आर्यत्व का भान कराना चाहती हूँ। ऐसे शुभ सकल्प को पूरा करने मे तो कदाचित् प्राण-हानि भी हो जाए तो क्या ? प्राण-भय से साधु को अपना कर्तव्य छोड देना चाहिये, आप ऐसा आदेश तो देंगे नही गुरुदेव ?"

आचार्य की वाक्शक्ति पर मानो तुषारापात हो गया। वे अर्चनाकुमारी को देख नही सकते थे किन्तु ऐसा लगा कि वे अपने काल्पनिक नेत्रो से उनकी प्रतिमा बनाकर उस पर छाई हुई दृढता को देखने लगे।

परिणामस्वरूप उनके बन्द नेत्रो से कुछ अश्रुकण ढुलक पडे।

यह देखकर भगवती का हृदय द्रवित हो उठा, और उन्होने अविलम्ब मौन भग किया। कहा—

"आप किंचित्मात्र भी चिन्ता न करे देव ! मुझे और अन्य आर्याओ को कुछ नही होगा। मैं विश्वासपूर्वक कहती हूँ कि आपका वरद-हस्त मस्तक पर रहा तो हम सभी सकुशल लौटकर पुन आपके दर्शन करेंगी।"

"यह तो सम्भव नही प्रतीत होता ''' पर हाँ तुम्हे अब रोकूँगा नही। ईश्वर की कृपा और मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। अपने उद्देश्य मे सफल होती हुई तुम निश्चय ही सकुशल लौटोगी।

आज्ञा पाकर प्रसन्नता का अनुभव करती हुई किन्तु आचार्य श्री के कथन के प्रथमाश पर उद्विग्न होती हुई अर्चनाकुमारी दुविधा मे पड गई कि वे

हर्ष मनाएँ या दुख । सोचने लगी—क्या मैं इस पुनीत आत्मा के पुन दर्शन नही कर सकूँगी ? पर फिर उनके कथन को ममता का अतिरेक मानकर वल-पूर्वक मुस्कराती हुई वोली—

"आज्ञा पाकर कृतज्ञ हूँ देव ! मेरा मार्ग सुगम हो गया ।"

"अवश्य महादेवी !"

"तो अव आज्ञा दीजिये ! आज मैंने आपका वहुत समय ले लिया । कहती हुई अर्चनाकुमारी उन्हे वन्दन कर अपने निवासस्थान की ओर रवाना हो गई ।

४८
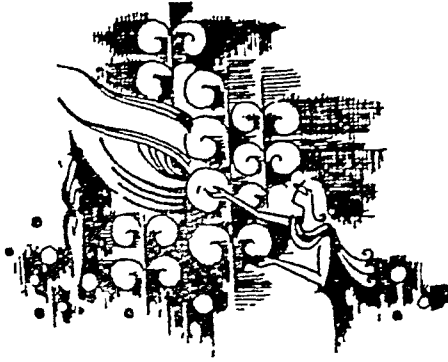
काश्मीर की ओर

अगहन मास के कृष्ण पक्ष मे प्रतिपदा को ही अर्चनाकुमारी ने जम्मू की ओर प्रस्थान किया और रास्ते मे होश्यारपुर, मुकेरियाँ, पठानकोट, माधोपुर तथा सतवारी आदि स्थानो पर थोडे-थोडे समय ठहरते हुए पौष कृष्णा द्वितीया को एक वजे जम्मू मे प्रवेश किया। पुन वर्षावास आने मे छ मास से भी अधिक समय था। इस बीच इनका काश्मीर की ओर हो आने का निश्चय था। किन्तु ज्योही अपने इस विचार को अर्चनाकुमारी ने वहाँ के जैनसघ के सम्मुख रखा, मानो वहाँ विस्फोट हो गया हो, ऐसा प्रतीत होने लगा। सघ के अध्यक्ष ने अपनी आँखे कपाल पर चढाकर बडे भयभीत स्वर मे रास्ते की भयकर कठिनाइयो की लम्बी-चौडी सूची उनके सामने उपस्थित करदी और अत्यन्त विनम्रतापूर्वक कहा—

"आप यह कैसा विचार कर रही है भगवती ? उस ओर जाने की तो साधुओ की भी हिम्मत नही होती। अगर किसी ने साहस किया भी है तो वे मार्ग मे ही रुग्ण हो गए है। उधर का जल वायु स्वास्थ्य के अनुकूल नही है। रास्ते मे जगह-जगह हिमपात और उनके कारण भयकर बर्फानी हवा के थपेडे क्या आप सबको वर्दाश्त हो सकते है ? आप न तो गरम कपडे ही पहन सकती है, न गद्दा-रजाई ओढने-बिछाने के काम मे ले सकती है। फिर किस प्रकार भयकर शीत से वचाव कर सकेंगी ?"

अर्चनाकुमारी यह सुनकर मृदुता पूर्वक हँस पडी। कहा—

"भाई साहब! पहाड़ी स्थानो के अतिरिक्त भी तो शीतकाल मे सभी जगह सर्दी पडती है। तब भी साधु इन सब चीजो की अपेक्षा नही रखते सर्दी-गर्मी का साधुओ को क्या भय ?"

"पर इसके अलावा और भी तो अनेक कारण है भगवती!" तनिक सकोचपूर्वक अध्यक्ष बोले।

"और कारण क्या ?" अर्चनाकुमारी की वाणी मे आश्चर्य मिश्रित कौतूहल था।

"रास्ते मे ऊँचे-ऊँचे पहाड, उन पर सीधी चढाइयाँ और जगह-जगह सैनिको के पडाव भी मिलते है। उनमे से अधिकाश दुश्चरित्र और बदमाश होते है। महिलाओ की हिम्मत उस ओर जाने की नही हो सकती।"

"बदमाश और गुण्डे कहाँ पर नही होते बन्धु! अर्चनाकुमारी ने सहज भाव से उत्तर दिया—वर्ष मे हम लोग आठ महीने भ्रमण करती है और उस बीच सभी तरह के व्यक्तियो का सामना होता है। पर कोई भी हमारा कुछ बिगाड नही सकता। साध्वियो की शक्ति से आपका परिचय नही है शायद! इस सबध मे आपका भय निर्मूल है। साध्वी-जीवन भय की नही; वरन् निर्भयता की नीव पर खडा होता है। जरा-जरा सी बातो से घबरा जाना हमारे स्वभाव के विपरीत है, और इसीलिये मैं समझती हूँ कि आपके बताए हुए ये सभी कारण निराधार है।"

"यह सही है कि मार्ग मे कठिनाइयाँ अवश्य है, और उन्हे पार करने मे कुछ कष्ट हो सकता है। पर इससे क्या ? यात्री मार्ग की रुकावटो से अपना मार्ग नही छोडता। आप चिन्ता न करे। त्याग, तपस्या और साधना मे अपूर्व बल होता है और उस पर मुझे पूर्ण विश्वास है।"

अर्चनाकुमारी की दृढता से सब नत-मस्तक हो गए। एक शब्द भी कहने का साहस अध्यक्ष महोदय को फिर नही हुआ। भगवती के आत्म-विश्वास पर सबका विश्वास हो चला और मूक समर्थन देकर उन्होने शुभ कामना की।

चैत्र कृष्णा पचमी का दिन काश्मीर यात्रा के लिये नियत किया गया। भगवती की दृढता और उत्साह देखकर जम्मू की महिलाएँ पहले ही विस्मय से अभिभूत हो गई थी और अब उन्हे प्रस्थान की तैयारी करते देखकर उनमे से कइयो की इच्छा भगवती के साथ यात्रा करने की हुई। फलस्वरूप

चौदह-पन्द्रह स्त्रियो ने उनके साथ यात्रा करने का कार्यक्रम बना लिया। यह देखकर अर्चनाकुमारी को अत्यन्त प्रसन्नता हुई और बहनो के इस इरादे का उन्होने हृदय से स्वागत किया।

किन्तु रवाना होने के ठीक एक दिन पहले देखते-देखते ही आकाश काली घटाओ से व्याप्त हो गया और घनघोर वर्षा आरभ हो गई। साथ ही ओले गिरते रहे। यह देखकर अर्चनाकुमारी के साथ चलने वाली बहने घबरा गई और उनका सारा उत्साह शिथिल होने लगा। यह देखकर अर्चनाकुमारी ने उन्हे मीठी झिडकी दी—

"यह क्या ? इस साहस पर ही क्या तुम काश्मीर की यात्रा करोगी ? तनिक-सी वर्षा होते तुम लोगो का उत्साह ठडा हो गया ? घबराओ मत, हम कल ही रवाना होगे। कोई शक्ति ऐसी नही जो हमे रोक सके।"

यह सुनकर स्त्रियो का गया हुआ साहस पुन लौट आया। वे यात्रा की तैयारी मे जुट गई और, वास्तव मे ही अगले दिन आसमान साफ हो गया तथा दिवाकर अपनी सहस्र रश्मियो के साथ भगवती के काफिले को प्रस्थान का सदेश देने लगा। आर्याओ की तरह ही साथ चलने वाली स्त्रियो ने एक-एक थैला हाथ मे लिया जिनमे पहनने की सिर्फ दो-दो पोशाके थी, और ओढने की शाले अपनी कमर से बाँध ली। अधिक सामान ले चलना सभव ही नही था।

विदाई का दृश्य अपूर्व था। जाने वालो के हृदय उत्साह से परिपूर्ण थे और विदा देने वालो के शुभ कामना से। ठाकुर अपनी भारी भरकम लाठी लिये सबसे आगे खडा था। उसका हृदय मारे खुशी और जोश से फटा पड रहा था। वह सोच रहा था, मेरा असली सेवा-कार्य तो अब शुरू हो रहा है। सहसा उसे ठकुरानी का ध्यान आया। देखा, वह अब तक नही आ पाई थी। यह देखकर वह उसे शीघ्र बुला लाने के लिये लपक कर भवन के अदर की ओर जाने लगा।

भगवती अर्चनाकुमारी ने यह देखा तो हँसते हुए टोक दिया—

"कहाँ भागे जा रहे हो ठाकुर ? काश्मीर चलने का इरादा छोड दिया क्या ?"

ठाकुर शर्मा गया। बोला—"यह कैसी बात कह रही है भगवती ! अभी तो ठाकुर जिन्दा है। अगर मर भी जाए तब भी आपके साथ काश्मीर तो चलेगा ही।"

"वाह, मरकर कैसे चलोगे ? क्या भूत वनकर ? तव तो हमे मार्ग मे और भी तकलीफ दोगे ।"

"आप तो हँसी कर रही है भगवती ! मै अभी आया, जरा ठकुरानी को वुला लाऊँ ।" कहकर वह अन्दर की ओर भाग गया। वृद्ध होने पर भी उसमे नवयुवक के समान स्फूर्ति थी। वातावरण भगवती के परिहास से मधुर हो उठा था।

ठाकुर ने अन्दर जाते ही पुकारा—

"ठकुरानी कहाँ हो तुम ?"

"मै इधर हूँ।" एक कमरे मे से आवाज आई।

"अभी तक क्या कर रही हो तुम ?" रवाना होने का तो समय हो गया।" ठाकुर ने कमरे के द्वार तक पहुँचते हुए कहा।

ठकुरानी वाल गूँथ रही थी। बोली—"वस अभी आई।"

"ओहो, कौन निरखेगा अभी तुम्हारे वालो को ?"

"क्यो ? क्या तुम साथ नही चल रहे हो ?" ठकुरानी ने मौका पाकर दवी हुई हँसी से पति की ओर देखा।

"ओपफोह, जव मै साथ हूँ तो फिर कही भी कघी कर लेना।" ठाकुर झुझलाया।

"वह तो करूँगी ही।" रूपा ने ठाकुर को फिर छेडा और साथ ही अपनी गठरी लेकर कमरे से वाहर आ गई।

"ठाकुर रूपा की वातो पर भन्ना रहा था किन्तु उसे तैयार होकर रवाना होते देख सब कुछ भूल गया और वाहर चल दिया। भगवती रवाना हो चुकी थी। बृहत्-जन-समूह उसके पीछे चल रहा था। ठाकुर दपती ने शीघ्रता पूर्वक कदम वढाए और वे शीघ्र ही सवके साथ हो लिये।

४९

देश के सजग प्रहरी

पहला पडाव जम्मू से नौ मील दूर नगरोटा मे पडा। करीब दो सौ नर-नारी वहाँ तक साथ आए। नौ मील का रास्ता सहज ही पार हो गया। जहाँ तक दृष्टि जाती थी, प्राकृतिक सुषमा का एक छत्र राज्य दिखाई देता था। किसी को थकावट महसूस नही हुई। नगरोटा निवासी आर्याओ के आगमन का समाचार सुनकर दर्शनार्थ उलट पडे। अब तक के समय मे उन्होने एक दो बार साधुओ के दर्शन अवश्य किये थे, किन्तु नारी जाति भी वैसा त्यागमय जीवन अपना सकती है, वे यह नही जानते थे। अत भगवती अर्चनाकुमारी और उनकी शिष्याओ के प्रति उनके हृदय मे श्रद्धा का पार न रहा। असीम-भक्ति पूर्वक उन्होने आर्याओ का स्वागत किया और उनके ठहरने की समुचित व्यवस्था की।

सूर्यकुमारी और कनक, आहार की गवेषणा के लिये निकली तथा समस्त सहयात्रियो ने अपने साथ लाया हुआ भोजन किया। घटे दो घटे विश्राम करने के बाद जम्मू निवासी अपनी शुभ कामनाएँ वही छोडकर सुविधानुसार लौट चले। ठीक उसी समय जम्मू से आए एक व्यक्ति ने डाक लाकर भगवती को दी। जगह-जगह से आए हुए सभी पत्र उनको यात्रा के लिये शुभ कामना से भरे थे। उन्ही मे एक पत्र आचार्यसम्राट का लुधियाने से आया हुआ

था, दूसरा आचार्य यशोभूषण का मारवाड से तीसरा जानकी का। कई दिनो से जानकी का पत्र न पाकर अर्चनाकुमारी का मन चिंतित था, पर आज उसके आ जाने से चिन्ता राहत मे वदल गई। उसने कुशल समाचारो के अलावा लिखा था कि—"मैं भी काश्मीर-प्रवास मे आपके साथ चलना चाहती हूँ।"

जानकी ने अर्चनाकुमारी के हृदय मे अपने सहज और मधुर व्यक्तित्व के कारण एक अमिट स्थान वना लिया था तथा उनके सयमनिष्ठ मन मे कुछ सरसता भर दी थी। उसका सम्पर्क उन्हे अति-प्रिय लगता था किन्तु इस प्रवास मे वह साथ रह सकेगी, इसकी उन्हे आशा नही थी। वे सोचती थी कि उसका शरीर उसके मन के समान ही कोमल है और वह यात्रा मे आने वाली कठिनाइयो को सहन नही कर सकती। अत. उन्होने लिख दिया—

"जानकी, अगर तुम अभी आ गई तब तो फिर हो चुकी हमारी यात्रा। न तुम चलोगी और न ही मुझे आगे वढने दोगी। तुम्हारा सुकुमार शरीर भयकर शीत, और पर्वतीय प्रदेशो के कष्ट वर्दास्त नही कर पाएगा।"

पत्र उसी समय रवाना कर दिया गया और अगले दिन प्रात काल ही अर्चनाकुमारी ने ऊधमपुर के लिये प्रस्थान किया। नगरोटा निवासियो ने उन्हे कुछ समय और रुकने का आग्रह किया किन्तु भगवती ने उन्हे वापसी मे लौटने का आश्वासन देकर सन्तुष्ट किया। जम्मू के स्त्री-पुरुष सव जा चुके थे। साथ मे चलने वाली दस-पन्द्रह महिलाएँ और ठाकुर ठकुरानी ही अव उनके साथ थे। स्त्रियाँ सभी आनन्दीस्वभाव की थी अत. मार्ग मनो-विनोद पूर्वक और प्रकृति के अनुपम दृश्यो को देखते हुए कटने लगा।

पाकिस्तान की सीमा वहाँ से निकट थी, और उसके आक्रमण का खतरा होने के कारण जगह-जगह सेना के कैम्प थे। साधारण लोगो का खयाल है कि मिलिटरी मे सिर्फ हैवान होते हैं, इन्सान नही। जम्मू के व्यक्तियो ने भी यही आशका व्यक्त की थी। किन्तु जव अर्चनाकुमारी इन लोगो के वीच से गुजरी तो यह देखकर दग रह गई कि देश की रक्षा के लिये जान हथेली पर लिये रहने वाले इन व्यक्तियो के हृदय मे अन्य व्यक्तियो की अपेक्षा अधिक स्नेह और श्रद्धा का स्रोत वहता है। उनके दिलो मे इन्सान के लिये आदर और प्रेम की जगमगाती हुई रौशनी है। भारतीय सेना के नौजवान सिर्फ युद्ध करने के लिये ही वहाँ नही पडे थे, अपितु देश के निर्माण कार्य मे भी सहायता देते थे। पर्वतीय प्रदेशो मे न पानी वरसते देर लगती है और न वाढ

आते । बाढ आते ही सडके टूट जाती, पुल गिर जाते और इसके कारण मार्ग अवरुद्ध हो जाते । लेकिन बहादुर सैनिक बात की बात मे पुलो का नव-निर्माण और सडको की मरम्मत कर देते ।

अर्चनाकुमारी ने देखा—मीलो दूर तक सैनिको की छावनिया थी । जब वे उधर से गुजरती, सैनिको के जत्थे के जत्थे उनके पास आते, प्रणाम करते और अपने पास का रूखा-सूखा खाद्य पदार्थ, डब्लरोटी, बिस्कुट, चने या मूँगफली जो कुछ भी होता उसे लेने के लिये बच्चो के समान जिद करते । ले लेने पर अत्यन्त खुश होते, मानो उन्हे स्वर्ग ही मिल गया हो । कभी-कभी तो वे भगवती को बिना थोड़ा बहुत उपदेश सुनाए जाने नही देते, आग्रह करते ही रहते । भगवती को उन पर बडी करुणा आती और आगे बढते समय उन्हे बहुत दुख होता । सुविधानुसार वे कही-कही प्रवचन देती और उससे प्रभावित होकर अनेक सैनिक छोटी-मोटी निभ सकने लायक प्रतिज्ञाएँ लेते । जिस स्थान से वे आगे बढती कई व्यक्ति मार्ग दर्शन के लिये साथ चलते । कभी-कभी तो साथ चलने के लिये वे प्रतिस्पर्द्धा करते ।

यह सब देखकर अर्चना कुमारी सोचती—"दुश्चरित्र और हैवान कहलाए जाने वाले क्या ये ही सरल और निष्पाप युवक है ?" माता-पिता, स्वजन-परिजनो से दूर, सर्दी, गर्मी, भूख और प्यास सहन करते हुए उन स्नेह-शील युवको को देखकर अर्चना कुमारी का हृदय करुणा से ओत-प्रोत हो उठता । यद्यपि साधुओ को वर्षाकाल के अतिरिक्त सदैव ही विचरण करना पडता है । अर्चना कुमारी भी विचरण करती चली आ रही थी । स्थान-स्थान पर नगरो और गावो के व्यक्ति उन्हे विदाई देते थे, किन्तु उनका वीतराग मन कभी ऐसे दुख का अनुभव नही करता था, जैसा उन्हे इन घर बार छोडकर इतनी दूर रहते हुए सैनिक युवको से विदा होते हुए होता था । मा की ममता और पिता के वात्सल्य से वचित उन पुत्रो के लिये साध्वी होने पर भी कभी-कभी उनके नेत्रो मे अश्रु छलक आते । वे सोचने लगती—इनमे से कौन जाने कितने भाग्यवान लौटकर अपने माता, पिता, पत्नी और पुत्र से मिल पाएँगे ।

ठाकुर बजरग इन दिनो अत्यन्त प्रसन्न था । पूरा जीवन जिन लोगो की तरह गुजार चुका था, उन्ही लोगो के बीच अपने को पाकर उसके हर्ष का पारावार न था । ज्यो ही वह सैनिको को अपना परिचय देता वे सभी ठाकुर को सम्मान की दृष्टि से देखते । ठाकुर भी मौका पाकर उन्हे लडाई के अनेक

'गुर' वताता। अपने सधे हुए हाथो से पेड पौधो को लक्ष्यकर निशाना कैसे लगाया जाता है, यह सिखाता। साथ ही अपने जीवन को नया मोड देने वाली भगवती अर्चनाकुमारी की महिमा का वडे गर्व से वखान करता। उनके त्याग और तपस्यामय जीवन का परिचय देता। उसके निष्कपट और गहरी श्रद्धा से कहे गए सत्य का विद्युत् के समान असर पडता और भगवती के प्रति सैनिक युवको का सम्मान सौ गुना वढ जाता। परिणाम स्वरूप उनके दर्शन, उपदेश, आशीर्वाद अथवा उनके मुँह से वोले हुए दो वोल भी जिस किसी को सुनने के लिये मिल जाते वही अपने को धन्य मानता। तीन दिन इसी प्रकार व्यतीत हुए और चौथे दिन सव लोग ऊधमपुर आ पहुँचे।

५०

बिन बुलाये

ऊधमपुर पहुँचने के वाद से ही जो वारिश शुरू हुई तो पाँच दिन तक रुकी ही नही। वीच-वीच मे ओले भी गिरते रहे। मालूम हुआ कि घोर वर्पा आँधी के कारण काश्मीर के रास्ते मे रामवन की पहाडी गिर पडी है और उसके कारण काश्मीर जाने का रास्ता छ सात दिन के लिये बन्द कर दिया गया है।

प्रवास मे वाधा आ जाने के कारण सभी के मन खिन्न हो उठे। ठाकुर तो वरावर वरामदे मे वैठा-वैठा वरसात को गोली मार देने की धमकी देता रहता था। वीच-वीच मे रूपा पति को चिढा आती। कहती—

"मार क्यो नही देते एकाध गोली ? गोली के नाम पर गाली ही तो दिये जा रहे हो!"

पत्नी के उपहास भरे शव्द और उनके पीछे दवी हुई मुस्कुराहट ठाकुर के क्रोध को और भी भडका देती। कहता—

"तुम भगवती के पास जाओ ठकुरानी, वोलो मत, नही तो ‥ …।"

"मुझे भी गोली मार दोगे ? वाप रे! मै तो चली, तुम देते रहो जी भर कर गालियाँ।" कहती हुई ठकुरानी हँस कर भाग जाती और ठाकुर हँडिया ना मुँह वनाए वही वैठा रहता।

पर ठाकुर की गालियाँ शायद व्यर्थ नही गई और पाँचवे दिन वर्षा वन्द हो गई। भगवती के काफिले मे भी नव-जीवन का सचार हुआ और पुन. यात्रा का कार्यक्रम वनने लगा। भगवती इस विषय मे आर्या सूर्यकुमारी को आवश्यक निर्देश दे ही रही थी कि एकाएक ठाकुर के साथ आती हुई जानकी पर उनकी दृष्टि पडी।

सामने भूत देखकर भी शायद अर्चनाकुमारी को उतना आश्चर्य न होता, जितना उस समय जानकी को देखकर हुआ। चकित होकर वोली—

"जानकी तुम ?"

"जी, मै ही हूँ, जानकी।"

"कैसे आ गई तुम · ?"

"पहले ट्रेन मे वैठी और उसके वाद वस मे।"

उत्तर सुनकर अर्चनाकुमारी हँस पडी। वोली—

"यह तो मैं भी जानती हूँ। पर पूछती हूँ कि अचानक कैसे आ गई तुम !"

"और क्या ढोल वजाकर आती मैं ?" हर्ष-विह्वल जानकी ने फिर टेढा जवाव दिया। भगवती मुस्कराने लगी। जानकी की खुशी का अनुमान उन्हे सहज ही लग रहा था। विषय वदलकर वोली—

"लम्वा सफर करके आई हो जानकी ! थक गई होओगी। कुछ विश्राम करो और जाकर खाना खाओ।

भोजनादि से निवृत्त होकर जव जानकी अर्चनाकुमारी के पास आकर वैठी तो उन्होने पूछा—

"मेरा पत्र मिल गया था तुम्हे ?"

"जी !"

"फिर ?

"फिर क्या····?"

"अरे, मेरा पत्र तुम्हे मिल गया था तव फिर अभी क्यो आई तुम ?"

"इच्छा हो गई आपके दर्शन करने की।"

"अच्छा तो दर्शन हो गए, अव कव लौटोगी ?

"जव इच्छा होगी लौट जाऊँगी, आप मेरी चिन्ता न करे। इसके अलावा मुझे मालूम नही था कि साधु-मत आने वाले का स्वागत इस प्रकार करते है, अन्यथा नही आती।"

"मेरा मतलव यह नही था," भगवती को लगा कि उनके वात करने का तरीका गलत हो गया है। वे मृदुतापूर्वक वोली—

"मेरे कहने का मतलव यह था कि तुम्हारा आगे का क्या कार्यक्रम है?

"कुछ नही।" जानकी नाराज हो रही थी।

"कुछ नही कैसे? हम तो कल यहाँ से प्रस्थान कर रहे है। तुम चलोगी न हमारे साथ?"

"नही।"

"नही? तो फिर क्या करोगी?

"मालूम नही ' ।" अर्चनाकुमारी ने हँसते हुए कहा—

"तुम्हे क्रोध कम तो नही आता जानकी?"

"क्यो नही आएगा क्रोध? सैकडो मील दूर से भागी आ रही हूँ क्या आपका 'चली जाओ' सुनने के लिये?"

"हमे तो खतरनाक जगल, पहाड और घाटियाँ पैरो से चलकर पार करनी है।"

"हॉ, मेरे तो जैसे पैर ही नही है।" जानकी ने रूठ कर उत्तर दिया। अर्चनाकुमारी को हँसी आ गई—

"अरी पगली! पैर तो दुध मुँहे वच्चे के भी होते है। पर उनसे क्या, वह पहाड पर चढ सकता है?"

"मैं दुधमुँही वच्ची नही हूँ भगवती! और ईश्वर के दिये हुए मेरे दोनो पैर भी सही सलामत है।"

"तो अव तुम लौटोगी नही अभी, यही वात है न?"

"जी हाँ, आपका अनुमान सत्य है। मैं लौट जाने के लिये नही आई।"

"तव तो लगता है कि हमारी यात्रा समाप्त हो चुकी।"

"समाप्त हो चुकी? कैसे? जानकी की आँखे फैल गई।

"और नही तो क्या? तुम साथ रहकर न स्वय चलोगी और न मुझे ही चलने दोगी। भूख, प्यास नीद या थकान इन सव वहानो के मारे परेशान करती रहोगी।"

"मैं जरा भी परेशान नही करूँगी, आप मुझे ले तो चलिये!" कहते हुए जानकी ने वच्चो की सी सरलता से अपनी दोनो वॉहे भगवती के गले मे डालदी।

"अरे, यह क्या वचपन करती हो ?" कहते हुए अर्चनाकुमारी ने उसके हाथो को अपने गले मे से हटाने का प्रयत्न किया। पर जानकी जिद करती हुई वोली—

"नही, पहले आप कहिये कि मुझे अपने साथ ले चलेगी। क्या मेरा मन पहाडो मे घूमने को नही करता ?"

'अच्छा वावा, ले चलूँगी वस ? परास्त होती हुई अर्चनाकुमारी ने कहा, और वलपूर्वक उसके हाथो को हटाती हुई वोली—"पर याद रखना ! रास्ते मे जरा भी गडवड की तो उसी दिन रवाना कर दूँगी।"

"मँजूर, मँजूर है भगवती ! आप कितनी अच्छी है ?"

"हाँ, अच्छी हूँ। तुम्हारा कहना मानती रहूँ तो अच्छी हूँ ?" अर्चनाकुमारी ने कृत्रिम क्रोध से कहा।

जानकी हँस पडी। वोली कुछ नही।

अगले दिन ज्योही सूर्य की किरणे धरती पर गिरी सवने उत्साह के साथ रामवन की ओर प्रयाण किया। अर्चनाकुमारी का हृदय अत्यन्त प्रफुल्ल था। प्रथम तो यात्रा पर आगे वढने की खुशी, दूसरे जानकी का आगमन, दोनो ही कारणो ने उनके मन को प्रसन्नता से भर दिया था। ऊपरी मन से वे जानकी से नाराज अवश्य हुई थी किन्तु उसके साहचर्य से उनकी आतरिक प्रसन्नता कई गुनी वढ गई थी। जानकी छाया की तरह साथ थी। उसका हृदय पहाडी सौन्दर्य देखने की खुशी मे वल्लियो उछल रहा था।

कुछ दूर चलकर ही उसका मन मुग्ध हो गया। भीड के वडे-वडे पेडो की कतारो के वीच चलते समय सुपारी, नारियल और मौलसिरी की सोना लुटाती हुई वयार उसे वडी भली लग रही थी। चारो ओर पर्वतमालाओ से घिरी हुई घाटी, जिसके ओर छोर पारिजात, मदार और कुद के फूलो की सुरभि से ऐसे सुवासित हो रहे थे जैसे कही पर चन्दन और अगरू की अगणित धूववत्तियाँ जल रही हो। सीढीनुमा छोटे-छोटे खेतो पर नई फसल का तारुण्य लहरा रहा था। कही-कही स्तूपाकार सूखी हुई सुनहरी घास के ढेरो पर सूर्य की मन्दरश्मियाँ उन्हे तपे हुए स्वर्ण के समान दमका रही थी। और कही-कही अलावो से उठती हुई गोवर के धुँए से मिली भीगी मिट्टी की सोधी सुगध यात्रियो का स्वागत कर रही थी।

पहाड की ऐसी सीधी चढाई से जानकी अनभिज्ञ थी। वह राजस्थान मे वडी हुई थी जहाँ चारो ओर जहा तक दृष्टि जाती है अधिकतर समतल

मैदान ही दिखाई देते है। पर आज यह विकट चढाई मानो उसे चुनौती दे रही थी। पहाडियो के बीच से पतली पगडडी किसी सूखी सरिता के क्षीण कलेवर की भांति टेढी-मेढी होकर चली जा रही थी, और उनपर सूखी और फिसलती हुई बॉज की पत्तियो की तहे जम गई थी। तीखी-तीखी पिरुल की सुइयॉ जानकी की साडी पर कीमती चप्पलो के इर्द-गिर्द लिपटकर उसकी एडियो को छेड रही थी। उन्हे निकालने पर कही-कही खून की कोई बूँद जमकर उसकी गोरी एडियो को और भी सुन्दरता प्रदान कर रही थी।

कॉटे निकालने के प्रयत्न मे उसे बार-बार पिछडते देखकर अर्चनाकुमारी ने कहा—

"जानकी! जल्दी जल्दी चलो, मार्ग मे ही अन्यथा रात्रि हो जाएगी। फिर हम ठहरेंगे कहाँ!"

"चल तो रही हूँ भगवती! क्या करूँ ये कॉटे जो नही चलने देते।" जानकी ने मुँह बनाया और धप से एक जगह बैठ गई।

"वाह! चप्पले पहने हो, फिर भी कॉटो को कोस रही हो? हमे देखो! हम तो नगे पैर ही चल रहे है।" कहते हुए उन्होने जानकी का हाथ थामा और सावधानी से आगे बढ चली।

शाम होने से पहले सब लोग 'कुद' पहुँच गए। 'कुद' एक छोटा सा पहाडी कस्बा था। सब थके हुए यात्रियो ने वही रात्रि विश्राम करने की योजना बनाई।

५१

वाल-वाल बचे

रात्रि विश्राम के पश्चात प्रात काल सव लोग नूतन स्फूर्ति का अनुभव करने लगे और उसी दिन 'पल्लीटाय' के लिये रवाना हो गए। सडक की राह जाने से कई मील का चक्कर पडता था अत. अर्चनाकुमारी ने पगडण्डी के रास्ते से चलने का विचार किया। मार्ग की जानकारी करके सव लोग चल पडे। मुश्किल से एक मील चले होगे कि आगे महाकाय पिशाच के समान रास्ता रोके हुए पहाड दिखाई दिया। पगडण्डी का कही पता न था। पहाड विलकुल सीधा और भयानक था। सब उसे देखकर घवरा गए, किन्तु भगवती के हृदय मे भय का लेश भी न था। उन्होने ठाकुर को आदेश दिया कि आसपास मे कोई जानकार व्यक्ति हो तो उसे ले आए ताकि मार्ग की सही जानकारी की जा सके।

पर ठीक उमी ममय उनकी निगाह पर्वत से उतरते हुए एक व्यक्ति पर पडी और उन्होने ठाकुर को जाने मे रोककर उम ग्रामीण से मार्ग के विषय मे पूछा। वह व्यक्ति पर्वत की उस तलहटी मे भगवती तथा अन्य महिलाओ को देखकर चौंक पडा और घवराकर बोला –

"आप रास्ता भूल गई है अम्बे! यद्यपि पहाड के उम ओर ही आपका

गन्तव्य स्थान है, पर इसे पार करना ही बडी टेढीखीर है। "अगर आप कहे तो मै आपको पुन लौटा ले चलूँ और सडक तक पहुँचा आऊँ।"

किन्तु जीवन भर अगारो के पथ पर साहसपूर्वक चलने वाला यात्री वापिस कैसे लौटता ? भगवती ने कहा—

"नही भाई ! अब वापिस लौटना और लम्बा मार्ग तय करना हमारे लिये सम्भव नही है। तुम हमे इस पहाडी पर से जाने वाला ही कोई मार्ग बताओ।"

यह सुनकर कुछ क्षणो तक वह पहाडी चिन्तापूर्वक कुछ मोचता रह गया। अन्त मे बोला—

"अच्छी बात है। मैं चलता हूँ। चढना कठिन अवश्य है पर असम्भव नही। आप घबराएं नही और मेरे पीछे-पीछे आने का प्रयत्न करें। पर सबको अपने दोनो हाथ खाली रखने होगे। कृपया अपनी सब चीजे आप किसी तरह अपनी पीठ पर बाँध ले।" यही किया गया। सबने अपने वस्त्र और थैले पीठ पर बाँध लिये।

जानकी के पास कुछ नही था। उसका मामान ठाकुर लिये चल रहा था। वह खाली हाथ थी। किन्तु मारे घबराहट के उस ठण्डे वातावरण मे भी उसके चेहरे पर पमीने की बूँदे झलक रही थी। यह देखकर अर्चनाकुमारी ने स्नेहसिक्त स्वर मे पूछा—

"क्यो डर लग रहा है क्या ?"

"डर तो नही लग रहा भगवती ! पर मोचती हूँ, चढेगे कैसे इस पहाड पर ? जानकी ने धीमे स्वर से उत्तर दिया।

"डरो नही ! मैं तो हूँ तुम्हारे साथ। इस तरह घबराओगी तो पहाड कैसे उलाघा जाएगा ? आओ चले।"

भगवती के शब्दो ने जानकी के हृदय मे साहस का सचार किया और वह उनके साथ आगे बढी। दोनो हाथो और पैरो के सहारे सब सावधानी पूर्वक ऊपर की ओर चढने लगे। कही-कही तो पेट के बल सर्प की तरह रेंगकर चढाई चढनी पडती थी। कोई भी एक दूसरे की ओर ध्यान नही दे मकता था। कही पर चिकनी चट्टाने थी और कही गीली मिट्टी जिसके कारण शरीर और वस्त्र चितकबरे हुए जा रहे थे। बीच-बीच मे अत्यन्त कँटीली झाडियाँ ऊगी हुई थी, और वे हथेलियो, पेट और पैरो को जख्मी

कर रही थी। किन्तु भगवती के अद्भुत साहस और उनके द्वारा दिलाए जाने वाले ढाढस के कारण सबने करीब साढे सात हजार फीट की उस चढाई को आखिर पार कर ही लिया। एक के बाद एक सभी पहाड के शिखर पर पहुँचकर चैन की सास लेने लगे। कमजोर मन और कमजोर शरीर वाली जानकी को अर्चनाकुमारी ने अपने आगे कर लिया था। वे कदम-कदम पर उसे धैर्य बन्धाती जा रही थी।

आखिर सब चढ चुके। तब भी विश्राम करने का समय नही था। जितना चढ़े थे उतना ही पुन उतरना था। और उतरना भी कैसा ? जैसे मौत के अथाह गर्त की ओर जाना हो। उस एकदम सीधे उतार पर कोई जरा-सा चूक जाए तो फिर उसकी हड्डी पसली का लाख खोजने पर भी पता न चले। नीचे की ओर दृष्टि जाने मात्र से ही आँखे चक्कर खा जाती थी। पर उतरना तो था ही। अर्चनाकुमारी ने सबको साहस बँधाया—

"घबराने की बात नही है। इष्टदेव का स्मरण करते हुए सब सावधानी से उतरो! कुछ भी नही होगा।"

सुनकर सब तुरन्त ही उतरने के प्रयास मे लग गए। पर जानकी खडी रही। उसकी हिम्मत उतरने की नही हो रही थी। नीचे की ओर देख-देखकर उसका दिल बैठा जा रहा था।

अर्चनाकुमारी ने यह देखा तो मुस्कुराती हुई उसके पास आकर बोली—

"क्या सोच रही हो जानकी ? उतरना नही है अब ?"

"कैसे उतरूँ ? मुझसे तो नही बनता।"

"तो फिर यही बैठो। मे नीचे जाकर गाँव के कुछ आदमियो को भेज देती हूँ। वे तुम्हे उठाकर ले आएँगे।"

"नही, नही, आप मुझे छोडकर मत जाइये!" कहती हुई जानकी ने मारे डर और घबराहट के भगवती को दोनो हाथो से कसकर पकड लिया। काँपती हुई बोली—

"मै अकेली नही रह सकूँगी।"

"अकेली नही रह सकोगी और चल भी नही सकोगी ? तब क्या करोगी ? मै तो तुम्हे उठाकर ले चल नही सकूँगी।" अर्चनाकुमारी ने परिहास का चिह्न अपने चेहरे तक नही आने दिया।

जानकी दुविधा मे पड गई। वह क्या करे, समझ नही पा रही थी। एम० ए० तक की सारी पढाई इस समय काम नही आ रही थी। उसका भोला मन भगवती के परिहास को भी नही समझ सका और भय तथा दुख के कारण उसकी आँखो मे आसू आ गए।

यह देखकर अर्चनाकुमारी ने परिहास तुरन्त समाप्त किया और वात्सल्य से उसकी ठोडी ऊँची करते हुए कहा—

"तुम तो सचमुच ही बहुत भोली हो जानकी! क्या मैं तुम्हे छोडकर जा सकती हूँ? पर देखो, इन्ही कठिनाइयो की आशका के कारण मैंने तुम्हे ऊधमपुर से वापिस लौट जाने के लिये कहा था। तुम नाराज हो गई थी। कहती थी—मै बच्ची नही हूँ। मेरे दोनो पैर भी सही सलामत है।' फिर अब चलती क्यो नही हो इन पैरो से?"

"मै क्या जानती थी कि आप मुझे ऐसे पहाड पर चढाएँगी।"

पर भगवती ने मानो इन शब्दो को सुना ही नही। अचानक ही जानकी का हाथ पकडकर उसे घसीटते हुए कहा—

"जानकी! जल्दी चलो, नही तो लगता है हम किसी विपत्ति मे पड जाएँगे। मेरा हाथ पकड लो और जल्दी उतरना शुरू करो। चलो जल्दी ·····।" ऐसा लगा मानो कोई अदृश्य भगवती के कानो मे कुछ कह गया।

सुनकर जानकी बिना एक भी शब्द बोले, अर्चनाकुमारी के हाथ का सहारा लेकर धीरे-धीरे उतरने लगी। पर तलहटी तक पहुँचने मे कुछ ही कदम शेष रहे होगे कि बर्फीला तूफान चलना शुरू हो गया। सब जल्दी-जल्दी उतर कर आगे बढे पर मुश्किल से एक फर्लांग ही चल पाए होगे कि तूफान ने भयकर रूप धारण कर लिया। हाथ को हाथ नही सूझ रहा था। आगे बढना असम्भव देखकर सब एक स्थान पर बैठ गए और इष्टदेव का स्मरण करने लगे। जानकी का मन घबराहट के कारण भगवान को स्मरण करने मे भी नही लगा। पहले तो वह भगवती की ओर टुकर-टुकर देखती रही और फिर तूफान के और भी तेज हो जाने पर उन्ही के निकट सरक कर दुबक गई।

दस-पन्द्रह मिनिट इसी अवस्था मे बीते, और फिर तूफान कम हुआ देखकर अर्चनाकुमारी ने सबको उठकर चलने का आदेश दिया। किन्तु ज्योही वे रवाना हुए कि एक तीव्र धमाके की आवाज से चौक पडे। हरहराकर

लुढकते हुए पत्थरो की आवाज से दिशाएँ गूँज उठी थी। सवकी विस्मित दृष्टि एक साथ पीछे की ओर घूमी और देखा, जिस पहाडी को वे अभी-अभी उलाघ कर आए है उसका एक वडा भारी हिस्सा गिर गया है और उस पर से पत्थर लुढक-लुढक कर तलहटी मे गिर रहे है।

जानकी का हृदय कॉप उठा। पलक झपकते ही उसे पहाडी पर कहा हुआ भगवती का कथन याद आ गया—"जानकी जल्दी चलो अन्यथा हम किसी विपत्ति मे पड जाएँगे।" अत्यन्त चकित होकर अर्चनाकुमारी के दोनो हाथ झकझोरते हुए वह पूछ वैठी—

"आपको कैसे मालूम हो रहा था कि हम पर कोई विपत्ति आ सकती है?"

"यह तो मुझे भी मालूम नही जानकी, वस मन को ऐसा लगा था और वही मैंने तुमसे कह दिया। पर अव वक्त वर्वाद मत करो, चलो! हमे वनिहाल पहुँचकर ही दम लेना है।"

भगवती की आज्ञा का तुरन्त पालन हुआ और मृत्यु-सकट से वाल-वाल वचे हुए सव यात्री हँसते गाते चल दिये। अव मार्ग मे कोई कठिनाई नही थी और वनिहाल पास ही था। सव समय रहते ही गाव मे पहुँच गए।

झुण्ड के झुण्ड ग्रामीण आर्याओ के समीप आ इकट्ठे हुए। वे असीम श्रद्धा सहित प्रणाम करने लगे। सवके हृदयो मे विस्मय और हर्ष का अद्भुत मिश्रण था। रात्रि को सत्सग हुआ, भगवती ने अत्यन्त सरल ढग से उन्हे उपदेश दिया। सहज तरीके से वताई गई वातो को उन व्यक्तियो ने समझा, और कई ने उसी समय खडे होकर जीव हिंसा, तथा मदिरा पान करने का त्याग कर दिया।

अर्चनाकुमारी को यह देखकर वडा आश्चर्य हुआ। उन्होने अनुभव किया कि एक तरफ तो शहरो के शिक्षित व्यक्ति है, जो वार-वार समझाने पर भी मास, मदिरा, जूआ और अन्य दुर्गुण किसी मूल्य पर भी नही छोड पाते, और दूसरी तरफ ये ग्रामीण है जो असस्कृत और अशिक्षित है, सहज ही इन दोपो को वुरा मानकर त्याग देते है। अल्पकालिक सत्सग से भी जव इन पर इतना प्रभाव पडता है तो साधु-सन्तो का अधिक समागम मिलने पर इनकी आत्मा कचन क्यो नही वन सकती!

उपदेश सुनते हुए वीच मे ही एक व्यक्ति खडा होकर पूछने लगा—

"महादेवी! हमारे इस छोटे से गाँव मे कोई मन्दिर नही है। साधु-सन्त भी यहाँ कभी नही आते। फिर हम धर्म कैसे कर सकते है ?

विचारो की इस सहज अभिव्यक्ति पर भगवती को अत्यन्त प्रसन्नता हुई। उन्होने कहा—

"भाई! धर्म करने के लिये मन्दिर जाना या साधु-सन्तो के पास पहुँचना अनिवार्य नहीं है। धर्म का स्थान हृदय मे है। हृदय मे सद्गुणो की स्थापना करना तथा मन, वाणी या शरीर के किसी भी व्यवहार से किसी अन्य प्राणी के मन को दुख न पहुँचाना ही सच्चा धर्म है। इस प्रकार तुम जहाँ भी रहो, घर मे, बाजार मे, खेत मे या अन्य किसी भी स्थान मे, सहज ही धर्म का पालन कर सकते हो।"

'सचमुच भगवती ? क्या हम इस तरह धर्म कर सकते है ?" उस व्यक्ति के नेत्र खुशी से चमक उठे।

"हा, धर्म का यही स्वरूप है। मन की पवित्रता और निर्मलता ही सबसे बडा धर्म है। वही व्यक्ति धर्मात्मा है जो किसी दूसरे के मन को चोट नही पहुँचाता।"

"आप धन्य है भगवती!" कहता हुआ वह व्यक्ति अपने स्थान पर बैठ गया और उसके कुछ देर बाद ही सत्सग समाप्त हुआ।

५२

पीर पंचाल के पहाड़ों में

समय की कमी के कारण अगले दिन ही वनिहाल छोड देना पडा। 'मगर कोट' तथा वनिहाल के खूनी नालो को पार करते हुए भगवती का काफिला तीसरे दिन 'पीर-पचाल' के पथ पर पहुँचा। जम्मू से जव भगवती रवाना हुई थी, लोगो ने सवसे ज्यादा भय 'पीर-पचाल' की चढाई का वताया था। लोग इमे 'माउन्ट-एवरेस्ट' की चढाई कहते थे।

चारो ओर गगनचुम्वी हिमाच्छादित शिखर थे। प्रकृति मानो श्वेत परिधान मे लिपटी हुई अपना अनन्त सौन्दर्य सजोए खडी थी। प्रकृति मुस्करा रही थी किन्तु उसकी गोद मे अनेक प्राणी कराह रहे थे। अगणित ट्रक विलविलाते हुए भेड वकरियो को लिये चले जा रहे थे, जिन्हे कुछ घटो या कुछ दिनो वाद ही मनुष्यो के उदर मे चला जाना था। भारत के स्वर्ग काश्मीर मे माम स्वर्गीय भोज्य-पदार्थ माना जाता था। शायद इसीलिये वहुत कम व्यक्ति उससे अछूते रहते है। पर उस स्वर्ग मे वेजवान पशु ही नही, रोने कराहने वाले मनुष्यो की भी कमी नही थी। अनेक अभागे व्यक्तियो की करुण कहानियाँ भगवती ने सुनी, जिनसे मालूम हुआ कि इस प्रदेश मे प्रतिवर्ष उनके अनेक प्रियजन, असह्य शीत के कारण या असीम सौन्दर्य विखेरने वाले इस वर्फ मे दव जाने के कारण मर जाते है। और इनसे बच

गए तो खूनी नालो की भेट चढते है । इस प्रकार उनका जीवन हमेशा दुख और उदासी के सागर मे डूबा रहता है ।

इसके अलावा काश्मीर के मुसलमानो की एक 'हापो' जाति के करुण-हृदय भी सामने आ रहे थे । प्रकृति ने उनके शरीरो को तो अनुपम सौन्दर्य प्रदान किया था किन्तु उन्हे ढकने के लिये वस्त्र और उदर-पूर्ति के लिये भोजन प्रदान करने की चिन्ता नही की थी । न पेट भर रोटी, और न तन ढकने को पूरे वस्त्र । ऐसा अनोखा स्वर्ग अर्चनाकुमारी के मन को व्यथित कर रहा था ।

ऐसी ही अन्यमनस्कता मे डूबी हुई भगवती 'पीर पचाल' की उस घुमावदार चढाई पर चल रही थी । मन की उद्विग्नता के कारण मार्ग की ओर उनका विशेप ध्यान नही था । सहसा ही एक मोड के उस ओर से हॉर्न की आवाज आई और चलने वाले शीघ्रता से सडक के दूसरी ओर हो गए । पर विचारमग्न भगवती ने शायद हॉर्न की आवाज नही सुनी । वे चलती रही । चक्करदार रास्ते मे एक मोड से दूसरी ओर का फासला चद गजो का ही मुश्किल से होता है । वे दो-तीन कदम भी नही चल पाई होगी कि एक विशाल वस उनकी ओर ही आती हुई दिखाई दी । क्षण मात्र मे ही क्या हो सकता है, इसकी कल्पना करके सव चीख पडे । पर कुछ पलो मे ही यह स्थिति इस प्रकार सामने आई थी कि चीखने-चिल्लाने के अलावा कोई कुछ नही कर सका । सवके प्राण आँखो मे आगए और मारे भय के आखे मुँद सी गई ।

पर अगले ही क्षण सवने देखा, भगवती शाति से खडी है और उनसे करीव वालिस्त भर की दूरी पर ही वस खडी है । सिक्ख ड्राइवर कूदकर नीचे आ गया है और घवराकर कह रहा है —

"आज तो गजव हो जाता महाराज जी ! क्या आपने हॉर्न की आवाज नही सुनी थी ? वह तो कहिये, न जाने कैसे मुझसे वस रुक गई ! नही तो ऐसे ढाल पर रुकना असभव हो जाता है । आपको चोट तो नही आई ? मुझे क्षमा करे ।"

"नही, मुझे जरा भी चोट नही आई, और फिर तुम्हारी क्या गलती थी भाई ! मैंने ही तो हॉर्न की आवाज पर ध्यान नही दिया ।"

आश्वस्त होकर ड्राइवर ने भगवती के पैरो के पास की रज को मस्तक

पर चढाया और वस पर चढा। घर्र-घर्र करती हुई वस आँखो से ओझल हो गई।

अव अर्चनाकुमारी ने अपने चारो ओर दृष्टि फैलाई। देखा, सव सहमे हुए खडे है। सूर्यकुमारी और कनककुमारी के नेत्र भरे हुए है। जानकी तो उनकी श्वेत चद्दर के कोने को अँगुली से लपेटे हुए थर-थर काँप रही है। यह देखकर उन्होने हँसते हुए कहा—

"अरे, सव घवरा क्यो रही हो ?"

"घवराहट कैसे न हो भगवती ! कैसा सकट टल गया आज, नही तो ... ...।" सूर्यकुमारी ने अस्फुट स्वर से कहा।

"तो अव तो टल चुका न संकट ? इसी खुशी मे जल्दी-जल्दी कदम वढाओ ! वडी कठिन चढाई पार करना है अभी। और जानकी ! तुम क्या यह मेरी चादर का छोर पकडे वच्चो की तरह रो रही हो ! चलो जल्दी जल्दी।"

जानकी के दिमाग मे से अभी तक भय का भूत निकला नही था ! विना उचित अनुचित का ख्याल किये रोती हुई वोल पडी—

"आपको क्या दिखाई नही देता था भगवती ?"

उसके शव्द-चयन और वोलने के ढग पर भगवती खिलखिलाकर हँस पडी।

"नाराज मत होओ जानकी ! अव ध्यान रखूँगी ?" कहकर उसे साथ लिये वे आगे वढ चली।

विना जरा भी विराम लिये लगातार चलकर आखिर सव लोगो ने 'एवरेस्ट' कही जाने वाली उस चढाई को पार कर ही लिया। पर उसके वाद जव दो मील लम्वी वनिहाल की सुरग (नेहरूटण्डल) आई तो फिर कठिनाई पैदा हो गई। सुरग घोर अन्धकार से व्याप्त थी। किन्तु उसमे थोडी-थोडी दूर पर विजली के वल्व लगे हुए थे। विना विशेष आज्ञा के कोई उसमे जा नही सकता था। वहुत-सा चक्कर और चढाई से वचने के लिये भगवती ने उसे ही पार करने का निश्चय किया, और वहाँ के अधिकारी से इस विषय मे वात की। उसने कहा—"आजकल सुरग मे कुछ काम चल रहा है इस कारण अन्दर खतरा है। इसके अतिरिक्त आधा घण्टे मे यहाँ से ट्रैफिक चालू होने वाला है। अगर कोई अप्रिय घटना हो जाए तो इसके लिये मैं जिम्मेदार नही हूँ।"

अर्चनाकुमारी का हृदय वज्र की सी दृढता और आत्मविश्वास से कूट-कूटकर भरा हुआ था। वे कब किसी खतरे की परवाह करने वाली थी ? उन्होने सुरग अधिकारी को सब जिम्मेदारियो से मुक्त करके भीतर की ओर पैर बढाए। पर चार कदम चलते ही जानकी घबरा गई और भगवती का हाथ पकडकर बोली—

"सडक के रास्ते से ही चलिये न भगवती !"

"क्यो ?"

"इस अन्धेरे मे कैसे चला जाएगा ? कोई पत्थर-वत्थर गिर पडा तो ?"

"अरे, पहाड गिरा था तब भी हमारा कुछ नही बिगडा तो फिर पत्थर से क्या होगा ? इसके अलावा अगर तुम इस प्रकार कदम-कदम पर डरोगी तो मैं तुम्हे 'वेरी नाग' चलकर वापिस भेज दूँगी।" देर होती देखकर अर्चनाकुमारी ने उसे झूठी धमकी दी।

"हाँ, भेज क्यो नही देगी ! मेरा साथ रहना तो आपको बुरा ही लगता है।" जानकी रुँआसी हो गई।

"साथ रहना बुरा नहीं लगता, पर तुम्हारा हर समय घबराना बुरा लगता है। तुम्ही बताओ अगर हम इस प्रकार जरा-जरा सी परेशानियो से डरते रहे तो यह लम्बी यात्रा कैसे पूरी कर पाएगे ?"

"दो मील लम्बी, ऊबड-खाबड और अन्धेरी सुरग पार करना कम परेशानी है ?"

"जानकी ! बातो मे समय बरबाद मत करो। फुर्ती से चलो। हमे सिर्फ आधा घण्टे मे इसे पार कर लेना है।" कहते हुए भगवती भयभीत जानकी को हाथ पकडकर घसीट ले चली। ठाकुर आगे चल रहा था। सुरग मे जगह-जगह ऊपर से पानी झर रहा था अत कीचड ही कीचड हो गया था। नुकीले पत्थर पैरो को क्षत-विक्षत कर रहे थे। इस सबके अलावा बडी भारी कठिनाई तब आई, जबकि बीच-बीच मे बिजली फेल हुई। किन्तु तब भी चलने वालो के कदम कही नही रुके और दो मील लम्बी वह सुरग सिर्फ चौबीस मिनिट मे ही पार हो गई।

सुरग से बाहर आते ही सबने चैन की सास ली और कुछ देर बैठकर विश्राम किया। कीचड, पानी और मिट्टी से लथ-पथ वस्त्रो और शरीरो की दशा उस समय देखते ही बनती थी। फिर भी सबके चेहरे खुशी के मारे

चमक रहे थे। चढाई खत्म हो गई थी और अव भयकर उतार सामने था। पर चढाई के समय जो घुटने नही टिके वे उतार पर कव टिकने वाले थे।

'पीर पचाल' के उत्तुग शिखरो से मूक विदाई लेकर काफिला चल दिया। थके हुए सभी थे, पर जानकी की हालत सवसे ज्यादा खराव थी। अर्चनाकुमारी उसका हाथ पकडे अत्यन्त स्नेह से उसे अपने साथ लिये चल रही थी। प्रकृति का अनन्त और अनुपम सौन्दर्य मार्ग की वहुत कुछ थकावट मिटाता जा रहा था। रास्ते मे वेरीनाग का चश्मा आया। कहा जाता है कि उसे सम्राट जहाँगीर ने वनवाया था। चश्मे पर आकर कुछ देर ठहरने का लोभ किसी से नही छोडा गया। अपने-अपने आसन विछाकर कुछ देर सव वहाँ वैठे, और जव अपने को कुछ तरोताजा समझने लगे तो फिर उठकर जो चले तो वेरीनाग पहुँचकर ही दम लिया।

रात को यद्यपि शरीर पूर्ण विश्राम चाहता था, किन्तु भगवती के आगमन का समाचार पाकर वहाँ के व्यक्ति तथा वहुत से सैनिक जवानो के जत्थे आ पहुँचे और भगवती से उपदेश देने का आग्रह करने लगे। अत. अत्यन्त थकी हुई होने के वावजूद भी भगवती ने उन्हे धर्म का स्वरूप तथा जैनत्व का सक्षिप्त परिचय दिया।

अगले दिन की यात्रा 'अनन्त नाग' की ओर थी। मार्ग मे लार्कपुर गाँव आया। यह गाव मुसलमानो का था। सडक के किनारे पर ही छोटा-सा स्कूल था। उसके हैडमास्टर अजीनखा ने भगवती को अपनी शिष्याओ सहित सडक पर जाते देखा तो वह दौडा हुआ आया और भगवती से कुछ समय वहाँ ठहरने का आग्रह करने लगा। यद्यपि लार्कपुर मे ठहरने का विचार अर्चनाकुमारी का नही था किन्तु अजीनखा का आग्रह देखकर उन्होने उस दिन वहाँ ठहरने का निश्चय किया।

भगवती के पहुँचते ही अजीनखा ने स्कूल की छुट्टी कर दी और गाव मे मुनादी करवा दी कि रात को आर्या अर्चनाकुमारी का प्रवचन होगा। शाम होते ही सारे गाव के स्त्री-पुरुप आकर स्कूल के वाहर मैदान मे वैठ गए और वडी आतुरता से प्रवचन शुरू होने की प्रतीक्षा करने लगे। उपस्थित व्यक्तियो मे दस-वारह हिन्दू स्त्री-पुरुपो के अतिरिक्त शेप सव मुसलमान थे।

मुसलमान होने पर भी उन लोगो की साधु-सन्तो के दर्शनो की उत्कठा

तथा उपदेश सुनने की व्यग्रता देखकर अर्चनाकुमारी विस्मित हो गई । एक हिन्दू से उन्होने पूछा—

"क्यो भाई ! मुसलमानो के इस गाँव मे तुम दस पाँच हिन्दुओ को रहने मे भय नही लगता ? कभी दगा फसाद हो जाए तो' '?"

"नही भगवती ! इस गाँव मे रहने मे भय नही लगता । भय इस गाव को छोड़ देने की कल्पना से लगता है । हम लार्कपुर मे पीढ़ी-दर-पीढियो से रहते चले आ रहे है । डर तो दूर की वात है हमे तो यह भी महसूस नही होता कि हम लोगो मे जातिभेद है । खान-पान के अलावा चौवीस घण्टो मे हमारा कोई कार्य-कलाप ऐसा नही होता जिसमे हमे अलगाव मालूम पडे । किसी भी प्रकार की मुसीवत मे ये मुसलमान सगे भाई की तरह हमारी सहायता करते है । कभी कोई विदेशी या अजनवी आकर अगर हमारी वहू-वेटी की ओर निगाह टेढी करे तो हमसे पहले ये उसकी आँख निकाल लेने को तैयार हो जाते है । एक घर की वेटी या वहू सारे गाँव की बेटी और बहू मानी जाती है ।"

गाँव के मुखिया यही स्कूल के हैडमास्टर अजीनखाँ हैं । इनके लिये जैसा मुसलमान है वैसा ही हिन्दू । कोई फर्क नही है । ये बालको को जिस तरह हजरत मोहम्मद की कथा सुनाते है उसी प्रकार राम और कृष्ण की भी सुनाया करते है । कहते-कहते उस व्यक्ति की आँखो मे कृतज्ञता और प्रेम के आँसू छलक आए ।

अर्चनाकुमारी यह सब सुनकर दग रह गई और सोचने लगी—काश्मीर मे अगर स्वर्ग है तो वह यही, सिर्फ इसी स्थान पर । यही सोचते-सोचते वे उठी और प्रवचन का समय हुआ देखकर स्कूल के वरामदे मे आकर तख्त पर वैठी । उनके वाहर आते ही उन मुसलमानो ने 'भगवती की जय' के नारो से उस स्थान को गुँजा दिया जिन्हे जम्मू के व्यक्ति खतरनाक कहा करते थे । वातावरण शांत होने पर अर्चनाकुमारी ने अपने प्रवचन मे उस दिन मानवता के विपय मे वताना शुरू किया । उन्होने कहा—

"मानवता का सवसे वडा तकाजा या इन्सान का सवसे पहला धर्म यही है कि वह प्रत्येक प्राणी पर रहम करे । सकट मे पडे हुए प्राणी को उससे मुक्त करने का प्रयत्न करे । किसी भी जीव को न सताए और सवको समान-दृष्टि से देखे । अहिसा के महत्व को समझाते हुए उन्होंने इस्लाम धर्म के महान उपासक मौलाना रूमी के विचार वताए—

हजार कुँजे इवादत, हजार गंजे करम,
हजार ताइद गव्ह, हजार वेदारी ।
हजार सिजदावहर, सिजदा हजार नमाज,
कबूल नेस्त मर ताडद ब्याजारी ।

अर्थात् मानव ! यदि तू हजारो लोगो के साथ वैठकर प्रार्थना करता है, हजारो रुपया देकर अपना खजाना खाली करता है, भक्ति के साथ खुदा का गुण-गान करने मे हजारो राते पूरी कर देता है, हजार सिजदे और प्रत्येक सिजदे के साथ नमाज पढता है, किन्तु इस कठिन साधना के वावजूद भी अगर तू किसी प्राणी के प्राण हरण करता है तो खुदा के दरवार मे तेरी एक भी इवादत मन्जूर नही की जाएगी ।" भगवती कहती गई —

"वास्तव मे खुदा की सच्ची इवादत यही है कि मानव प्रत्येक अन्य प्राणी की रक्षा करे । किसी को कष्ट न पहुँचाए । मानव-मानव मे प्यार-मुहब्वत और विश्वास का व्यवहार हो । यही मानवता है और मानव का पहला धर्म है । सच्चा इन्सान वही है जो इन्सानियत सीख ले । 'प्रेम और अहिंसा' को अपना ले । महावीर, बुद्ध, ईसा मोहम्मद और गुरुनानक आदि सभी धर्म प्रवर्तको ने इसी को सच्चा धर्म वताया है ।"

प्रवचन ज्योही समाप्त हुआ, वाह, वाह, की ध्वनियाँ गूँज उठी । अनेक मुसलमानो ने मास खाने का, परस्त्रीगमन का, या जैसा जिससे हो सका त्याग किया । स्त्रियो मे तो अधिकाश ने अण्डे, मास व मदिरा का त्याग कर दिया ।

लार्कपुर मे ठहरने का कार्य-क्रम तो भगवती का था ही नही, सिर्फ अजीनखा के आग्रह से एक दिन ठहरना तय किया था । किन्तु उनके प्रवचन का इतना गहरा प्रभाव पडा कि सारे गांव के लोग उन्हे और रुकने का आग्रह करने लगे । परिणाम स्वरूप भगवती दो दिन और वहाँ ठहरी । अजीनखा ने उनके प्रत्येक दिन के प्रवचन का उर्दू, अग्रेजी और काश्मीरी भाषा मे अनुवाद किया ।

लार्कपुर से चलते समय स्त्री-पुरुषो की भाव-भरी विदाई ग्रहण करते हुए अर्चनाकुमारी का हृदय भर आया । उन्हे लगा काश, सारे भारत के हिन्दू और मुसलमान लार्कपुर के हिन्दू और मुसलमानो जैसे होते ... । ●

५३

स्वर्ग या नरक?

लार्कपुर छोडने के वाद भगवती अर्चना कुमारी अनन्तनाग और अवन्ती-पुर होती हुई पम्पापुर आई। श्रीनगर वहाँ से आठ मील रह गया था।

जिस दिन उन्हे श्रीनगर पहुँचना था, उसके प्रात.काल ही श्रीनगर के अनेक प्रमुख व्यक्ति तथा विद्वान् पडित भगवती के स्वागतार्थ पम्पापुर आ पहुँचे। सवने अपार खुशी और श्रद्धा से आर्याओ के दर्शन किये तथा गद्गद् होते हुए कहा—

"आपका स्वागत है भगवती! आज का दिन काश्मीर और श्रीनगर के इतिहास मे स्वर्णाक्षरो से अकित करने योग्य है। इस भूमि ने आज प्रथम वार जैन साध्वियो के पावन चरणो का स्पर्श किया है। मुसीवत और कठि-नाइयो से भरे हुए इस प्रदेश मे पद-यात्रा करने का साहस विरले ही कर सकते है। कभी कोई साध्वी इन कठिनाइयो को पार करके इधर रुख कर सकेगी, यह हमने स्वप्न मे भी नही सोचा था। आज आप सी महामहिम और परमविदुपी आर्या को अपने वीच पाकर हम कृतार्थ हुए है।"

"इस प्रकार मुझे शर्मिन्दा मत कीजिये बन्धुवर! दृढ इच्छा शक्ति के साथ किया जाने पर ससार मे कोई भी कार्य असभव नही रहता। हमने भी

इधर आने का अडिग निश्चय कर लिया था। फिर सफलता क्यो नही मिलती ?'' अर्चनाकुमारी ने अपनी प्रशसा से अत्यन्त सकुचित होते हुए कहा। तत्पश्चात् उन्होने पम्पापुर से प्रस्थान कर दिया।

श्रीनगर ज्यो-ज्यो पास आता जा रहा था, प्रकृति अपने सौन्दर्य को उत्तरोत्तर वढाकर भगवती का अभिनन्दन कर रही थी। एक ओर हिमाच्छादित पर्वतमालाए थी और दूसरी ओर सजग प्रहरियो के समान कतारवन्द चिनार के वृक्ष सुशोभित हो रहे थे। जगह-जगह केसर की क्यारियाँ मलयगिरि के समान अपने समीप से वहनेवाली हवा को सुगधित वनाती जा रही थी। कही-कही गिरती हुई वर्फ ऐसी दिखाई देती थी जैसे सुकोमल रुई के गुच्छे आकाश से धीरे-धीरे उतरते आ रहे हो। सैकडो प्रकार के पुष्प अपनी प्रदर्शिनी लगाए झूम रहे थे।

आन्तरिक प्रसन्नता लिये भगवती सव लोगो के साथ वढ रही थी। मार्ग मे सैनिको की छावनियाँ आई और उसके वाद आया शकराचार्य का पहाड। कहा जाता है कि इसी पर्वत पर आचार्य शकर ने तप किया था। पहाड के नीचे दुर्गानाग का मन्दिर था। कुछ देर वहाँ रुककर प्रकृति का अवलोकन किया और पुन सव चल पडे। श्रीनगर वहाँ से दो-तीन मील दूर था पर वहाँ के नर-नारी कतार पर कतार वनाकर आर्याओ के दर्शनार्थ चले आ रहे थे। उनकी तृषातुर भावना का अनुभव कर भगवती का हृदय गद्‌गद हो उठा। काश्मीर के सुरम्य पहाड साध्वियो के स्पर्श से अछूते न रहे, उनका यह स्वप्न भी साकार हो गया। यात्रा का अन्तिम पडाव अव आ पहुँचा था।

आने वाले स्त्री-पुरुप वावलो के समान अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे थे। स्त्रियाँ तो आर्याओ के उन नगे पैरो को पकड कर छोडना ही नही चाहती थी, जिन्होने उघाडे रहकर मीलो लम्वी पर्वतमालाओ को, खतरनाक घाटियो को और स्थान-स्थान पर नुकीले पत्थरो और शूलो से भरे हुए ऊवड-खावड रास्तो को पार किया था। हर्प के मारे वहते हुए उनके आँसुओ से भगवती के चरण भीग गए। उनके पदार्पण से आज काश्मीर के धार्मिक इतिहास मे एक नया अध्याय जुड गया था।

श्रीनगर मे दीवान विष्णुदास जी की कोठी भगवती के ठहरने के लिये नियत की गई थी। वृहत् जनसमुदाय सहित उन्होने उसमे प्रवेश किया। सयोग वश उनके पहुँचने के वाद ही वर्पा शुरू हो गई, अत प्रवचन नित्य-कोठी मे ही होता रहा। प्रवचन के समय वहाँ स्त्री-पुरुप समाते नही थे।

वरसते हुए पानी और पत्थरो की तरह गिरते हुए ओलो की भी परवाह न कर जनता वरसाती नदी की तरह उमडकर चली आती और अपने भाग्य को सराहती हुई लौटती। पूरे श्रीनगर मे अर्चनाकुमारी के सारगर्भित प्रवचनो की धूम मच गई।

आठ दस दिन वाद जव वर्षा थमी तो लोगो के अत्यधिक आग्रह पर भगवती को 'रामवन' 'रयणावारी' 'आर्य समाज मन्दिर' सनातनधर्म कॉलेज आदि अन्य अनेक स्थानो पर प्रवचन करने जाना पडा। श्रीनगर के प्रसिद्ध विद्वानो और विचारको से भी समय-समय पर धर्म-चर्चा होती रहती थी। वहाँ के सुप्रसिद्ध निरजनी सन्त नित्यानन्द जी तो भगवती के विचारों से इतने प्रभावित हुए कि प्राय नित्य ही आकर विचारो का आदान-प्रदान करते रहे। परिणाम यह हुआ कि उनकी विद्वत्ता और व्यक्तित्व की महत्ता से प्रभावित होकर जैन और जैनेतर भगवती से श्रीनगर मे वर्षावास करने का आग्रह करने लगे। किन्तु प्रकृति साथ नही दे सकती थी। कातिक से ही वहाँ वर्फ गिरनी शुरू हो जाती और आवागमन वन्द हो जाने के कारण पुन. लौटना सम्भव नही होता। अत. अर्चनाकुमारी ने वर्षावास करना स्वीकार नही किया।

किन्तु निराश लोगो ने भगवती का वहा अधिक रुकना सम्भव न समझकर उनके आगमन की स्मृति को स्थायी रखने के लिये अन्य मार्ग अपनाया। एक वृहत् पुस्तकालय स्थापित करने की योजना बनाई। शीघ्र ही यह योजना कार्यान्वित हो गई और पुस्तकालय के उद्‌घाटन समारोह का शुभ दिन भी आ गया।

जिस समय भगवती ने 'अर्चना पुस्तकालय' का उद्‌घाटन किया, समस्त जनसमुदाय मे खुशी की लहर दौड गई। विद्वानो ने भगवती के श्रीनगर-आगमन पर आभार प्रदर्शित किया तथा भविष्य मे पुन दर्शन देने की और 'अर्चना पुस्तकालय' को सम्हालते रहने की प्रार्थना की। अन्त मे भगवती ने कुछ शब्द कहे—

"मेरे श्रीनगर आगमन पर आप लोगो ने जो प्रमोद व्यक्त किया इसके लिये मुझे हार्दिक सन्तोष और प्रसन्नता है। यद्यपि मेरा अधिक रुकना अभी सम्भव नही है, किन्तु आपके इस नवनिर्मित पुस्तकालय के रूप मे मैं सदा आप लोगो के वीच मे रहूँगी। पुस्तकालय के अर्चना शब्द को आप सिर्फ मुझे स्मरण करने के लिये ही न समझे वरन् इसके सही अर्थ को भी ग्रहण करे।

अर्चना और साधना मे विशेष अन्तर नही है । एक ही सिक्के के ये दो पहलू है । अगर आप इसके द्वारा अपनी आत्मा को उत्तरोत्तर उन्नत बना सकेगे तो आपका यह पुस्तकालय, और इसका 'अर्चना' नाम सार्थक होगा ।

हर्षपूर्ण ध्वनि के साथ भगवती ने अपना सक्षिप्त कथन समाप्त किया । शर्मीली जानकी मच के समीप ही चुपचाप बैठी थी । पर अब तक लोगो ने एक कवयित्री के रूप मे उसका परिचय पा लिया था अत· उसे कविता-पाठ करने के लिये विवश कर दिया ।

बचने का मार्ग न होने पर वह उठी और सद्य-रचित एक कविता सुनाने लगी—

श्रीनगर के ये सुहाने क्षण कभी विस्मृत न होगे ।
हृदय पट पर हुए अकित, अब कभी ये मृत न होगे ।

कविता लम्बी थी और इतने मधुर स्वर तथा लय से पढी गई थी कि उसके समाप्त हो जाने पर भी कुछ क्षणो तक जनता मुग्ध और नीरव बैठी रही ।

आयोजन समाप्त हुआ और समस्त स्त्री-पुरुष अपने-अपने स्थान के लिये रवाना हुए ।

श्रीनगर मे अर्चनाकुमारी ने अनेक विरोधी बाते पाई । प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से काश्मीर भारत का स्वर्ग कहलाता है । उसके सौन्दर्य का वर्णन करने मे पुस्तको और अखबारो के अगणित पृष्ठ भी कम पड जाते है । मुगल बादशाहो के बनवाए हुए शालीमार' और निशातबाग, शहर के मध्य से बहने वाली झेलम नदी पर बने हुए आठ पुल तथा 'डलझील' जिसमे रग बिरगी रोशनियो सहित सैकडो 'हाउस बोट' पडी रहती है, आदि सभी स्थान और वस्तुएँ सिर्फ भारत के ही नही, वरन अन्य देशो के पर्यटको को भी वहाँ खीच लाती है ।

दूसरी ओर शहर की गलियाँ अत्यन्त सँकरी और दुर्गन्धयुक्त है । प्रत्येक बाजार मे बिकते हुए अडे, मास और मछलियाँ मन को ग्लानि से भर देते है । काश्मीरी स्त्री-पुरुष अत्यन्त सुन्दर होते है किन्तु तन के सौन्दर्य को उनके गदे वस्त्रो और शरीर की गदगी दुदर्शन बना देती है । उस काश्मीर मैं, जहाँ दुकानदार एक काष्ठ के डिब्बे को, जो मुश्किल से पाँच-सात रुपये का होता है, किसी विदेशी को डेढ़ हजार रुपये तक मे बेच देता है । उसी काश्मीर

ओर उसकी राजधानी श्रीनगर मे लोग अपनी सुन्दर लडकियो को सिर्फ पाँच रुपये मे हाउस वोटो के लिये वेच देते है जहाँ उन्हे वेश्यावृत्ति करने के लिये विवश होना पडता है। वडे-वडे होटलो मे, जिन्हे व्यभिचार के अड्डे कहा जा सकता है, सैकडो लडकियाँ काम करती है और उन्हे ग्राहक के पेट की ज्वाला वुझाने के साथ-साथ उनकी काम-पिपासा को भी शात करना पडता है। भारत के स्वर्ग, काश्मीर के निवासियो को पेट भरने के लिये अन्न और तन ढकने के लिये पूरे वस्त्र भी नसीव नही होते।

गरीवी का यह नग्न रूप देखकर अर्चनाकुमारी का कोमल दिल कराह उठा। अपने प्रवचनो मे उन्होने इसी वात पर अधिक जोर दिया कि मनुष्य भूख वर्दाश्त करले, किन्तु बहन-वेटियो की पवित्रता को वेचकर लाए हुए अन्न से एक वक्त भी पेट न भरे। जहाँ भी और जिस तरह भी अवसर मिला, उन्होने काश्मीरियो के दिलो मे इस प्रकार की रोजी व रोटी पैदा करने के प्रति नफरत पैदा की। जीवन मे जिन्हे कभी भी, पवित्रता क्या है, यह समझने का अवसर नही मिला था, उनके हृदयो मे भी भगवती के शब्दो ने जादू का-सा असर किया और अनेको व्यक्तियो ने भविष्य मे ऐसे घृणित व्यापार न करने का निश्चय किया।

५५

साहब बेचारा....!

श्रीनगर मे कुछ दिन ठहरने के पश्चात् जब मौसम साफ हुआ, अर्चना-कुमारी ने 'हरिपर्वत' तथा 'विचारनाग' होते हुए वैष्णवो के पवित्र तीर्थ खीर-भवानी की यात्रा की। वैसे काश्मीर के प्रत्येक मन्दिर मे मास-मदिरा चढाई जाती है और वलिदान होता है, किन्तु खीर-भवानी का मन्दिर ही एक ऐसा मन्दिर है जहा मास-मदिरा का चढना तो दूर, इन्हे सेवन करके आने वाला व्यक्ति भी प्रवेश नही कर सकता। जिस दिन अर्चनाकुमारी वहाँ पहुँची, देखकर दग रह गई कि एक बस यात्रियो से भरी हुई वहाँ आई, पर उनमे से एक वृद्धा ही, जो निरामिप भोजी थी, अन्दर प्रवेश कर सकी। शेप सब यात्री मन्दिर के चारो ओर चक्कर लगाते रहे।

'खीर-भवानी' से लौटते समय 'सरिका देवी' का मन्दिर मिला। जहाँ माँस और मछलियो के अवार चढावे के रूप मे लगे थे और बडे-बडे मटको मे शराब भरी हुई थी। ऐसा लगा जैसे एक देवी है और दूसरी दानवी। खिन्न मन से सब वापिस लौटे और अगले दिन गुलमर्ग की ओर रवाना हुए।

आठ हजार, सात सौ फीट की ऊँचाई पर बसा हुआ गुलमर्ग अपने असीम सौन्दर्य के कारण रईसो का क्रीडा-स्थल कहलाता है। यह अत्यन्त

साफ सुथरा स्थान है । कही भी गन्दगी नजर नही आती । भगवती अर्चना-कुमारी को अन्य कोई सुविधाजनक स्थान न मिलने से वहा के डाक वँगले मे ठहरना पडा ।

डाक वगले से काश्मीर की पूरी घाटी के सौन्दर्य का अवलोकन किया जा सकता था । रजतपट से ढका हुआ-सा हिमाच्छादित हरमुखपर्वत, लहराती हुई वुलाझील और उसमे नाचती हुई सूर्य रश्मियाँ अनोखा ही सौन्दर्य प्रदर्शित कर रही थी । किन्तु डाक वँगले मे पहुँचते-पहुँचते दोपहर के वारह वज गए थे और प्रकृति के सौन्दर्य का पान करने से भूख मिट नही सकती थी । अत साथ मे रही हुई वहने, ठाकुर और ठकुरानी की सहायता से अपने खाने पीने का आयोजन करने लगी और आर्या सूर्यकुमारी कनक के साथ भिक्षा लाने चली गई ।

भगवती वाहर आई और डाक वगले के पास एक शान्त-स्थान पर आसन विछाकर वैठ गई । जानकी उनके साथ ही थी । उससे उन्होने अपनी एक पुस्तक लाने के लिये कहा । सुनकर वह उठी और अन्दर की ओर चली, किन्तु कुछ कदम जाते ही वह लौट आई । देखकर भगवती विस्मित हुई और प्रश्न सूचक दृष्टि से उन्होने जानकी की ओर देखा ।

"भगवती ! कई अग्रेज वैठे है उधर, मुझे उनके पास से जाना अच्छा नही लगता ।"

अर्चनाकुमारी उसके भीरु स्वभाव को जानती थी अत हँस पडी और वोली—

"अच्छी वात है मत जाओ, वैठ जाओ मेरे पास आकर । थोडी देर वाद मेरे साथ चलना ।" कहते हुए उन्होने अपने पास के थैले मे से एक डायरी निकाली और उसमे कुछ लिखने लगी । कुछ मिनिटो के वाद ही उनके कानो मे आवाज आई—

"व्यूटीफुल लेडी ! क्या मै आने सकटा हूँ ?"

"आइये !" कहते हुए भगवती ने अपनी गौरवपूर्ण निगाहे ऊपर उठाई और आने वाले अग्रेज की ओर देखा ।

"कहिये क्या वात है....?"

"हम इसी डाक वँगले मे ठहरा है । अवी टुमको देखा, वौत लवली

लगा। ऐमा व्यूटी हमको कही नही पाया। काश्मीर मे वी नई । टुम हमारे साथ इगलैड चलेगा ?"

अर्चनाकुमारी उसकी मूर्खता पूर्ण वाते सुनकर खिलखिला पडी। वोली—

"क्या कीजियेगा मुझे इ गलैड ले जाकर ?"

"हम वोत अच्छी तरह रखेगा। वहाँ कोई डिफिकल्टी टुमको नही होने सकटा। हमारा वौत वडा कम्पनी है मोटर वनाने का। चलना माँगटा टुम··· ·· ? वहुट आराम से ले चलेगा एरोप्लेन से।"

"पर मैं तो साध्वी हूँ, एरोप्लेन मे वैठ नही सकती।"

"साध्वी ? वॉट साध्वी ?"

"साध्वी यानी 'सेन्ट' समझ गए आप ?"

सतेज दृष्टि उसके चेहरे पर जमाते हुए अर्चनाकुमारी ने उत्तर दिया।

"ओह, यू 'सेन्ट' ·? टो और कोई वी लेडी चल सकटा।"

"अच्छा· ? यह चल सकती है ?" कहते हुए अर्चनाकुमारी ने जानकी की ओर सकेत किया तथा पुनः जोर से हँस पडी। जानकी वैसे ही घवरा रही थी, यह सुनकर क्रुद्ध नेत्रो से भगवती की ओर देखने लगी।

"वेरी गुड, शी इज ऑल्सो वडरफुल !" वहुट सुन्दर ! हम इसको गुमाने ले जाना मागटा।"

"घुमाने ? कहाँ ?"

"झील मे वोटिंग का वास्टे।"

"पर इसने अभी खाना नही खाया, भूखी है।"

"खाना भी उदर खिलायेगा हम। आमलेट, चिकन, फिश और वी अच्चा-अच्चा चीज ड्रिंक वी करायेगा।"

मारे क्रोध के जानकी की घवराहट हवा हो गई। उसने चीख कर कहा—

"कमीने, कुत्ते ! चले जाओ यहाँ से · · ।"

कमीने और कुत्ते का अर्थ साहव समझा नही, खुश होकर वोला—

"गुस्सा मे ओर वी खुवसूरट लगटा। हम जरुर ले जाएगा गुमाने। गुस्मा वी शान्त कर डेगा। ऐसा लेडी हम कही नई देखा।"

उवलती हुई जानकी उठकर खडी हो गई और मार्ग की ओर इगित करती हुई गरजी—

"जाते हो या नही…… ?"

"जाटा, जाटा। मगर फिर आना मागटा आफ्टर सम टाइम। नाउ यू आर इन एगर। अवी टुमको गुस्सा आया। फिर ये नई रएगा विद मी।"

"विद मी के वच्चे · · !" इस वार जानकी ने आवेश मे आकर हाथ मे वडा सा नुकीला पत्थर उटा लिया और फेकने के करीव ही थी कि अर्चना कुमारी ने हँसते हुए उसका हाथ पकड लिया और साहव से कहा—

"मिस्टर, वहुत हो गया। अव जाओ यहाँ से !"

"अच्चा, अच्चा फिर आएगा।" कहता हुआ शरीफो की खाल मे लिपटा हुआ शैतान चल दिया। पर उसके पीठ फेरते ही जानकी अर्चनाकुमारी के सिर हो गई—

"यह क्या मजाक है भगवती ! आपने क्यो किया ऐसा ? क्यो किया वताइये ??"

"पर तुम वैठो तो सही।" हँसमुख चेहरे से अर्चनाकुमारी ने उसे हाथ पकडकर वैठाना चाहा, पर वह वैठी नही और नाराज होकर वोली—

"नही, नही वैठूँगी। पहले आप वताइये ! क्यो ऐसा मजाक किया आपने ?"

"अरे, मैं तो तुम्हारी कायरता भगाना चाहती थी। विल्ली के वच्चे की तरह हर समय मेरे पीछे-पीछे घूमती रहती हो। आज मौका मिला तो जरा तुम्हारी परीक्षा ले ली।"

"वाह रे, आपकी परीक्षा ! मेरी जान निकल गई जो कुछ नही ?"

"नही तुम्हारी वहादुरी का परिचय मिल गया कि कभी ऐसा अवसर आ जाए तो तुम किसी भी दुष्ट व्यक्ति को अच्छी-अच्छी गालियाँ दे सकती हो और पत्थर से उसका सिर भी फोड सकती हो।" अर्चनाकुमारी ने जानकी को हँसाना चाहा पर वह गुम होकर वैठी रही। यह देखकर उन्होने वात का रुख मोडा—

"अच्छा अव खाना खाओ चलकर, भूख लगी होगी।"

"नही मैं आज कुछ नही खाऊँगी।"

"तो क्या साहव के साथ घूमने जाओगी वहाँ वढिया वढिया खाना

खाओगी ? आमलेट, चिकन, फिश   ।" और फिर उस वदर की शकल जैसे साहब का ध्यान आते ही अर्चनाकुमारी जोर से हँस पडी ।

"भगवती आज हो क्या गया है आपको ? जो जी मे आता है वही कहे जा रही हैं, बस करिये ।" कहती हुई जानकी ने उनके मुँह पर अपना हाथ रख दिया ।

"हुआ तो कुछ नही जानकी ! आज वचपन याद आ गया । उस समय मै वहुत शैतान थी । हर समय किसी न किसी को चिढाने या परेशान करने की उधेडवुन मे रहती थी । हर सुवह मुहल्ले वाले ही नही, गाँव वाले भी मेरी किसी न किसी नई करामात को देखने की प्रतीक्षा करने लगते थे । वहुत वडी होने तक भी मेरी वह आदत मिटी नही थी । लगता है, वरसो वाद आज थोडा सा वचपन लौट आया ।

"अपने वचपन की वाते वताइये न भगवती ?" जानकी ने अर्चनाकुमारी की गोद मे अपनी दोनो कोहनियाँ टिकाते हुए आग्रह किया । उसका क्रोध गायव हो चुका था ।

"फिर कभी कहूँगी । आज काफी देर हो चुकी है । अव चलो ! अन्दर चले ।"

आज्ञाकारी शिशु की भाति जानकी उठ खडी, हुई पर कुछ याद आते ही पूछ वैठी—"भगवती ! कही वह वापिस आ गया तो ?"

"कौन   ?" भूतकाल मे विचरण करती हुई अर्चनाकुमारी ने अन्यमनस्कतापूर्वक बिना विशेप ध्यान दिये पूछा ।

"वही सूअर, जो अभी आया था ।"

'ओह, भगवती हँस पडी—"वह तो अव नही आएगा । क्षितिज की ओर दृष्टि जमाए हुए ही उन्होने उत्तर दिया ।

सुनकर जानकी वुरी तरह चौक पडी—"यह कैसे जाना आपने भगवती ? क्या उधर आकाश मे लिखा है यह ? जल्दी वताइये !"

"पगली ! कही आकाश मे भी कुछ लिखा हुआ होता है ?"

"तव फिर कैसे कहा आपने ? वह तो फिर आने को कह गया था ।"

"हाँ कह तो गया था पर आएगा कैसे वेचारा ?" अर्चनाकुमारी ने खिन्न और उदास होते हुए उसी भावपूर्ण स्वर से कहा ।

जानकी भगवती की बातो मे उलझी हुई दिग्मूढ की तरह चली आई। किन्तु उसका भय समाप्त नही हुआ। अगले दिन जब सुबह होते ही उसने डाक बगले के उस कमरे मे, जिसमे वह अग्रेज ठहरा था, काफी हल-चल देखी डॉक्टर को भी आते देखा तब उसका कुतूहल बढ गया।

बँगले के एक बैरे से उसने पूछ लिया—"यह डॉक्टर किसलिये आया है ?"

"कल रात साहब ज्यादा शराब पीकर मोटर चला रहा था अत एक्सीडेट हो गया बहन जी ! दिमाग मे चोट आई है। अभी बेहोश पडा है।" कहता हुआ बैरा शीघ्रता से चला गया। पर जानकी भगवती की पिछले दिन की बातो का स्मरण कर विस्मय से हतबुद्धि की तरह वही खडी रह गई। कुछ क्षणो बाद ही वह तेजी से, लगभग दौडती हुई सी भगवती के समीप आकर बोली—

"भगवती ! कल वाला अग्रेज साहब मोटर चलाते हुए एक्सीडेट का शिकार हो गया। कैसे हुआ यह ?"

"कैसे क्या ? तुम्ही तो कह रही हो कि मोटर चलाते हुए हुआ।"

"हाँ, मोटर चलाते हुए तो हुआ पर ·····पर ··· कुछ समझ मे ही नही आता ! आप समझाती क्यो नही ?"

"अपनी आत्मा की शक्ति को जगाओ जानकी ! धीरे-धीरे सब समझ मे आने लगेगा। अभी तो इतना ही समझ लो, कि कर्मफल सबको भोगने पडते है। कभी जल्दी और कभी देर से।"

५५

उत्तुंग शिखर से प्रेरणा

गुलमर्ग की अनुपम और नयनाभिराम सुषमा को देखकर पुन श्रीनगर होते हुए भगवती ने 'पहलगाँव' की ओर प्रस्थान किया। 'पहलगाँव' समुद्र की सतह से करीब सात हजार फीट की ऊँचाई पर लिद्दर घाटी के मध्य बसा हुआ अत्यन्त सुरम्य और सुन्दरतम स्थान है। जिधर भी दृष्टि ऊठती है, प्रकृति का अवर्णनीय सौन्दर्य दृष्टिगोचर होता है।

पहलगाँव मे अत्यधिक वर्फ गिरती है। वर्ष मे तीन-चार महीने मौसम कुछ साफ रहता है। बाकी आठ-नौ महीनो तक पूरा पर्वत वर्फ से ढँका रहता है। जिन दिनो मौसम ठीक होता है उन तीन-चार महीनो मे ही यहाँ के निवासी अपनी दुकाने लगाकर या अन्य कोई काम करके पैसा इकट्ठा करते है और शेष नौ महीने घर मे बैठकर खाते है।

'हाथो' जाति के लोग यहाँ अधिक रहते है। इनका पहनावा बडा अजीब होता है। औरते केवल एक फिरन ही पहनती है, जो योगी महात्माओं के चोगे जैसा बना हुआ होता है। इस जाति के व्यक्तियो के शरीर और वस्त्र अत्यन्त मैले और दुर्गन्ध पूर्ण होते है। नहाते तो ये छ महीने मे सिर्फ एक बार ही है। इनका कथन है, कि अगर वे इससे पहले स्नान करले तो बीमार पड जाते है। इसके अलावा अत्यधिक शीत के कारण उन्हे हर समय

एक अगीठी, जिसे 'कागडी' कहते है, अपनी छाती के पास रखनी पडती हे। शरीर का वह भाग जलकर काला पड जाता है।

अर्चनाकुमारी जब पहलगॉव पहुँची दिन के तीन बज चुके थे। एक साफ-सुथरे छोटे से मकान मे इन्हे ठहरने को स्थान मिल गया। कमरा एक ही था पर बाहर का बरामदा काफी बडा और एक कमरा जितना सुविधा-जनक था। सब भूखे थे। जल्दी ही भोजन से निवृत्त होकर बाहर बरामदे मे आकर प्रकृति का अवलोकन करने लगे। दो-तीन मकान पडौस मे और थे, जिनके बाहर कुछ लोग आपस मे जोर-जोर से बोल रहे थे। तू-तू मैं-मैं के बाद उन्होने अपनी भाषा मे गालियॉ देना शुरू किया और उसके बाद हाथा-पाई की नौबत आ गई। झगडा भयानक रूप से बढा और लगा कि अभी दो-चार व्यक्तियो के सिर फूटेगे या हाथ पैर टूट जाऐगे। किन्तु उसी समय सध्या होने के साथ ही एक व्यक्ति ने आकर उन सब घरो के सामने रखी हुई दो-तीन टोकरियॉ उलटकर रख दी।

अत्यन्त विस्मय के साथ अर्चनाकुमारी तथा उनके सभी सहयात्रियो ने देखा कि टोकरियो के उलटते ही झगडा एक दम शान्त हो गया, जैसे ठण्डे पानी के छीटे देते ही दूध का उफान। पॉच सात मिनिट बाद ही वे सब, जो एक दूसरे का सिर फोडने को तैयार थे, एक दूसरे का हाथ पकडे गोल घेरा बनाकर नाचने और गाने लग गए।

इस विचित्र घटना के विषय मे पूछने पर मालूम हुआ कि यहॉ प्रत्येक घर के बाहर बॉस की बनी एक टोकरी रखी रहती है। सुबह उसे सीधी करके रख देते है और शाम को उलटी। जब तक वह सीधी पडी रहती है, लोग आपस मे जितना चाहे झगड सकते है, पर टोकरी को उलटते ही सारा सघर्ष समाप्त हो जाता है। लडाई का कोई भी चिन्ह बाकी नही रहता।

इस विचित्र रिवाज के पीछे रही हुई ग्रामीणो की सरलता भगवती को अत्यन्त भली लगी। कितना कम कषाय होता है उन लोगो के दिलो मे। साधारणतया मनुष्य किसी से झगड बैठता है तो उससे पैदा हुआ वैर-विरोध वर्षो तक, और कभी-कभी तो जीवन के अन्त तक भी चलता रहता है। लाख मिटाने का प्रयत्न करने पर भी मेल नही होता। किन्तु बिना पढे-लिखे उन ग्रामीणो के हृदयो मे से टोकरी उलटते ही सारा क्रोध-कषाय छू-मन्तर हो जाता है। कितनी सरल और भोली आत्मा है इनकी!

यही विचार भगवती के मस्तिष्क मे घूम रहे थे कि रात्रि के आठ वज गए। लोग नाचना-गाना वन्द करके भगवती के समीप आ, उनसे उपदेश देने का आग्रह करने लगे। उन मे हिन्दू कम थे, मुसलमान अधिक। एक सरीखी लगन और उत्साह से सवने भगवती की वताई हुई वाते सुनी और पुन जाकर नाच-गान मे मशगूल हो गए।

अगला दिन 'चन्दनवाडी' जाने के लिये नियत किया गया था। प्रात काल होते ही सवने जाने की तैयारी शुरु कर दी। चन्दनवाडी जाने का मार्ग विकट था और अधिकतर यात्री वहाँ घोडो से जाया करते थे। भगवती अर्चनाकुमारी भी सिर्फ अपनी शिष्याओ सहित ठाकुर को साथ लेकर पैदल जाने वाली थी और वाकी सभी का घोडो पर जाने का कार्यक्रम था। किन्तु जानकी मानी नही और वह भगवती के साथ पैदल ही चली। वाकी सभी स्त्रियाँ घोडो पर रवाना हो गई।

सारा रास्ता नदी की एक सकरी घाटी मे से था। कही ऊँचा और कही नीचा। कही कच्ची सडक और कही पथरीली पगडडिया पैरो को वार-वार आघात पहुँचा रही थी। किन्तु मार्ग के दोनो ओर देवदास के वृक्ष और सौन्दर्य लुटाते हुए श्री-युक्त पहाड मार्ग की थकावट और कष्ट को तनिक भी महसूस नही होने देते थे। दोपहर तक सव लोग समुद्र की सतह से करीव नौ हजार फीट की ऊँचाई पर स्थित चन्दनवाडी पहुँच गए। घोडो पर जाने वाली महिलाएँ काफी देर पहले ही वही पहुँच चुकी थी और भगवती के आने की प्रतीक्षा कर रही थी। हर्ष-पूर्वक सवने पैदल आने वाले यात्रियो का स्वागत किया।

चदनवाडी मे विशेप चहल-पहल नही थी। एक दो चाय की छोटी-छोटी दुकाने और एक दो वैसे ही होटल वहाँ थे। प्राकृतिक दृश्य वहाँ का अत्यन्त मनोरम था। चारो ओर विछे हुए वर्फ पर निगाह हटाने की इच्छा नही होती थी। एक ओर 'शेपनाग' नाला चट्टानो से टकराता हुआ, और सम्पूर्ण वातावरण को अपनी ध्वनि से मुखरित करता हुआ तीव्रगति से वह रहा था तथा दूसरी ओर एक और नाला—जिसे 'खूनी-नाला' कहा जाता है, शेपनाग से मिलने के लिये उछलता हुआ प्रवाहित हो रहा था। यद्यपि काश्मीर मे प्राकृतिकसौन्दर्य जगह-जगह विखरा पडा है किन्तु चदनवाडी तो उसका खजाना

ही है, ऐसा लगता था। वहाँ का अनूठा सौन्दर्य यात्रियो को मुग्ध किये विना नही रहता।

चदनवाडी की यात्रा करने वाले यात्री प्राय. भोर मे वहाँ जाकर साझ तक पुन पहलगाव लौट आया करते है। वहाँ ठहरने के लिये कोई सुविधा जनक स्थान नही हे। इसके अलावा अत्यधिक ऊँचाई पर होने के कारण शीत का सबसे अधिक प्रकोप भी वही पाया जाता है। किन्तु भगवती को आर्याओ सहित ग्यारह मील पैदल चलकर आना पडा था और शाम तक पुन उतना ही चलकर पहलगाँव पहुँचना सभव नही था, अत एक दुकानदार से कहकर थोडा-सा स्थान उन्होने प्राप्त किया। पर उस थोडी सी जगह मे रात्रि को सब नही रह सकते थे, और घोडे भी साथ थे। अत भगवती ने सब स्त्रियो को शाम को पहलगाँव लौट जाने का आदेश दिया। जानकी से कहा—

"तुम भी इन लोगो के साथ लौट जाओ जानकी !"

"नही भगवती !"

"नही भगवती क्या....? यहाँ कैसे रहोगी ?"

"जैसे आप रहेगी।"

"पर हम तो चाहे जितनी सर्दी हो, वर्दास्त कर लेते है, तुम से नही होगी।"

"नही होगी तो न सही।" जानकी ने सक्षिप्त उत्तर दिया।

"कहना सरल है पर रात होगी तव पता चलेगा ! फिर क्या होगा ?"

"अब यह मै क्या जानू कि क्या होगा ?"

"यह क्या उलटी-सीधी बातें कर रही हो ?" भगवती नाराज हुई।

"उलटी वात मै कर रही हूँ या आप भगवती ? आप जानती है कि मै आपको छोडकर एक कदम भी नही जाऊँगी। फिर क्यो वार-वार जाने को कह रही है ?" जानको ने अर्चनाकुमारी की सफेद चद्दर के छोर को अपनी अँगुली पर लपेटते हुए उत्तर दिया।

"और यात्रा समाप्त होने पर अपने घर जाओगी तव ?" अर्चनाकुमारी ने मुस्कुराते हुए पूछा।

"जाना ही किसको है जो फिक्र की जाए।" जानकी ने गम्भीरता और दृढता से कहा।

"क्या कहा, जाओगी नही ?" भगवती ने चकित होकर पूछा।

"नही।"

"तव क्या करोगी ?"

"आत्मा का कल्याण करूँगी।"

"क्या मतलव ?"

"मतलव यही कि मै आपसे दीक्षा लूँगी, साध्वी वनूँगी।"

'भावुकता के प्रवाह मे वहकर कोई वात कहना कुछ अर्थ नही रखता जानकी ! तुम जैसी हो, ठीक हो। साधु के प्रति स्नेह होने से ही साधु हो जाना चाहिये, यह शिक्षा तुम्हे किसने दी ?"

"किसी ने नही। मै इसलिये साध्वी नही वनना चाहती भगवती, कि मुझे आपसे स्नेह है। हाँ, अव तक इतना अवश्य समझ लिया है कि किसी अनन्त सुख और शातिमय लोक मे जाने के लिये अगर कोई मार्ग है तो वह सयम का ही। साधु जीवन अधिक से अधिक त्याग और अनासक्त भावो से भरा हुआ जीवन है और ऐसा जीवन विताकर ही आत्मा इस ससार मे वार-वार जन्म लेने और वार-वार मरने के दुखो से वच सकती है।"

"यह सव सही है, पर सचमुच ही अगर तुम्हारी भावना विरक्तिमय है तो फिर दीक्षा ग्रहण कर मेरे पास रहने का आग्रह क्यो ?"

"मैं वहुत कमजोर हूँ भगवती ! आप तो जानती हैं कि एक साधारण मार्ग पर चलने वाला व्यक्ति भी सुगमता से रास्ता काटने के लिये कोई साथी खोजता है। फिर साधना के इस कठिन राजमार्ग पर चलने के लिये अगर मैंने किसी अत्यन्त सशक्त और महान आत्मा की खोज की, और उसके साथ चलना चाहा तो यह गलत हुआ क्या ? मुझे विश्वास है कि आपका सहारा पाकर मै इस कठिनतम पथ पर चल सकूँगी। कभी मेरे कदम लडखडा गए तो आप मुझे सम्हाल लेगी।

"यह ठीक है जानकी ! पर तुम जानती तो हो कि साधु जीवन कितना कष्टप्रद है। अनेको वार निर्दोष आहार न मिलने पर फाके करने पडते है, असह्य शीत और ताप सहन करना पडता है, कटकाकीर्ण मार्ग पर भी नगे पैर चलना होता हे। तुम तो अभी दो कदम भी विना चप्पलो के ।"

भगवती अपनी वात पूरी भी न कर पाई थी कि उनकी विस्मित दृष्टि

ने देखा कि जानकी ने अपनी दोनो चप्पले उछालकर कई सौ फीट गहरे खड्डे की ओर फेक दी है। वे हैरान होकर बोली—

"यह क्या किया ?"

"नए जीवन का प्रारम्भ।"

"तुम्हारी सभी बाते अनोखी होती है जानकी ! कोई भी गम्भीर काम ऐसी जल्दबाजी मे नही उठाया जाता।"

"यह तो इच्छाशक्ति पर निर्भर है भगवती ! इच्छाशक्ति निर्बल होने पर सरल कदम भी जल्दी नही उठाया जाता और उसके सबल होने पर कठिन से कठिन कदम भी मनुष्य क्षण मात्र मे उठा सकता है।"

"पर तुम्हारे माता-पिता, स्वजन परिजन क्या कहेगे ? एक बार तुम उनके पास जाओ तो सही !"

"मुझे एक बात बताइये भगवती ! आज अगर मेरा हार्टफेल हो जाए या कि इस पर्वतीय प्रदेश की यात्रा मे मेरा पैर फिसल जाए तो हजारो फीट नीचे लुढकने से पहले मैं माता-पिता से मिलने का समय पा सकूँगी ? क्या इसी समय उनसे मेरा इहलौकिक नाता समाप्त नही हो जाएगा ? माता-पिता के लिये मेरे हृदय मे अपार श्रद्धा और आदर है। किन्तु इस नश्वर-शरीर से तो उनका संबध सिर्फ इसी जन्म का है। अत मैं जन्म-जन्म के दुखो से छुटकारा पाने का प्रयत्न करने मे विलम्ब क्यो करू ?"

"मेरी समझ मे तो कुछ भी नही आता जानकी। मैं क्या करू।"

"कहने की आवश्यकता ही क्या है भगवती ? अबतक आपने मेरे निर्बल मन और ऐसे ही शरीर को देखा है अत मेरी बाते आपकी समझ मे नही आती, विश्वास भी नही होता होगा। किन्तु मेरी समझ मे अब तक कुछ आ गया है और ससार की अनेकानेक दूषित मनोवृत्तियो से हजारो फीट ऊपर प्रकृति की यह पावन और प्रेरणाप्रद भूमि चदनवाडी इसकी साक्षी है। आज आप मुझे आशीर्वाद दीजिये।" कहते हुए जानकी ने झुककर भगवती अर्चनाकुमारी के चरणो पर अपना मस्तक रख दिया।

"यह क्या जानकी ! इस प्रकार निर्जन मे ।"

"मैं समझ गई भगवती ! समाज की साक्षी से होने वाला समारोह आप जब इच्छा हो कर लीजियेगा। पर मेरी भाव-दीक्षा तो आज हो चुकी।

महिमामयी भगवती गिरिजाकुमारी जिस समय साधना के शिखर पर थी, आपने उनका सहारा लेकर इस पथ पर चलना प्रारम्भ किया था। और आज जब कि आप इस पर्वतीय प्रदेश की ऊंचाई के समान ही आत्मोत्कर्ष की ऊंचाई पर है, मैं आपके सहारे से इस अग्निपथ पर चलना आरंभ कर रही हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिये !"

अगणित मानव हृदयो मे गौरवपूर्ण स्थान, उच्च स्थान प्राप्त परम यशस्विनी भगवती अर्चनाकुमारी भावनाओ के वेग मे वह चली। बिना कुछ कहे उन्होंने शात भाव से जानकी के झुके हुए मस्तक पर अपना वरद हस्त रख दिया।

ds of the Divine will in a manner constantly adapted to the needs of the age, in all the life and vigor of a message ever newly coming forth from God In second respect, it was to *cast a light on the future of the people*, and to disclose hem the Divine counsels, whether for their warning or comfort (comp Amos), and thus to initiate them in the ways of the Divine government In this icular also it might be regarded as continuing the testimony of the law, which only revealed God's requirements to His people, but also manifested the law is procedure toward them, and the end of His government, Lev. xxvi , Deut iii -xxx , xxxii (2) God's witness to elf among heathen nations is more atter of the past, a subject nce , in p v, on the contrary, a ng and lively intercourse is twee e covenant people, which account the silence si has withdrawn His people, an viii 12, Lam ii 's lxxiv 9) n prophecy will be fully dis *with the Spirit* ch c proph